ISSN 2277-5587
Impact Factor 3.725
Indexed in ULRICH, ISIFI, SJIF & DOJI

Shodh Shree

(A Peer Reviewed International Refereed Journal)

शोध श्री

Volume-28 Issue-3 July-September 2018 RNI No. RAJHIN/2011/40531

CHIEF EDITOR
Virendra Sharma

EDITOR
Dr. Ravindra Tailor

shodhshree@gmail.com
www.shodhshree.com

Shodh Shree Volume-28 Issue-3 July-September 2018

Shodh Shree

(A Peer Reviewed International Refereed Journal)

Virendra Sharma
Chief Editor
Government Girls P.G. College,
Ajmer

Dr. Ravindra Tailor
Editor
Shodh Shree,
Jaipur

Editorial Board

Prof. H.S. Sharma (Retd.)
University Of Rajasthan, **Jaipur**

Prof. T.K. Mathur (Retd.)
M.D.S. University, **Ajmer**

Prof. Ravindra Kumar Sharma
Kurukshetra University, Kurukshetra **(Haryana)**

Sarah Eloy
Museum The House of Alijn, **Belgium**

Prof. B.P. Saraswat
Dean of Commerce, M.D.S. University, **Ajmer**

Prof. Pushpa Sharma
Kurukshetra University, Kurukshetra **(Haryana)**

Dr. Manorama Upadhayay
Principal, Mahila P.G. Mahavidyalaya, **Jodhpur**

Dr. Rajesh Choudhary
Director (Research), Indian Council of Historical Research, **New Delhi**

Dr. Pankaj Gupta
Assistant Professor, Department of College Education, **Jaipur**

Dr. Rajendra Singh
Archivist, Rajasthan State Archives, **Jodhpur Division**

Dr. Avdhesh Kumar Sharma
Assistant Professor, Department of College Education, **Jaipur**

Advisory Board

Prof. S.N. Tailor (Retd.)
S.D. Government P.G. College, **Beawar**

Prof. S.P. Vyas
Jainarain Vyas University, **Jodhpur**

Dr. Kate Boehme
University of Leicester, **United Kingdom**

Dr. Mahesh Narayan
Archivist (Retd.)
National Archives of India, **New Delhi**

Shodh Shree

(A Peer Reviewed International Refereed Journal)

Contents

Volume-28 **Issue-3** **July-September 2018**

1. **समावेशी शिक्षा और उसका प्रबन्धन** 1–7
   डॉ. सुभाष सिंह, अमेठी (उत्तरप्रदेश)
2. **संगीत चिकित्सा एवं अंतरम सुकून** 8–11
   हितेष गन्धर्व, उदयपुर
3. **वैश्वीकरण एवं भारतीय श्रमिक परिवार** 12–15
   डॉ. दिनेश गुप्ता, बीकानेर
4. **राजस्थान के सुल्ताना गाँव में नशा उपयोग पर सरकारी नीति, नशा सामग्री की उपलब्धता, यौन भिन्नता व सामाजिक उस्तव के प्रभावों का अध्ययन** 16–21
   आरसी प्रसाद झा, उदयपुर
5. **बौद्ध संस्कृत साहित्य की अमूल्य निधि 'महावस्तु' : ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक अध्ययन** 22–25
   डॉ. ममता यादव, जयपुर
6. **मरुस्थलीय कृषक सामाजिक संरचना एवं सामाजिक न्याय** 26–31
   डॉ. हरदयाल भाटी, जोधपुर
7. **जॉन रॉल्स एवं सामाजिक न्याय** 32–35
   महेन्द्र कुमार शर्मा, जयपुर
8. **भारत के विभिन्न भागों में क्षेत्रवाद** 36–41
   पूनम अग्रवाल, जयपुर
9. **ध्यान योग के साथ संगीत का अविभाज्य सम्बधं** 42–45
   शिवांगी श्रीमाली, उदयपुर
10. **दादू साहित्य : हिन्दू मुस्लिम एकता का प्रतिरूप** 46–48
    भगवान सहाय शर्मा, अजमेर
11. **महिलाओं की परिवर्तित प्रस्थिति में इलेक्ट्रॉनिक मीडिया की भूमिका : एक समाजशास्त्रीय अध्ययन (रानीखेत तहसील के चिलियानौला क्षेत्र के विशेष संदर्भ में)** 49–55
    डॉ. आनन्द प्रकाश सिंह एवं ज्योति जोशी, हल्द्वानी (उत्तराखण्ड)
12. **मृणाल पाण्डे के साहित्य में नारी भावना** 56–58
    भारती, जोधपुर
13. **राजस्थानी लोक साहित्य मांय पंखेरूआं रा सुगन विचार** 59–62
    जितेन्द्र सिंह 'साठीका', जोधपुर
14. **प्राचीन भारत में कानून एवं न्याय की अवधारणा** 63–70
    महेश कुमार दायमा, जयपुर
15. **मानव संसाधन लेखांकनः भारत हैवी इलैक्ट्रीकल्स लिमिटेड के संदर्भ में** 71–74
    संजय कुमार, कालाडेरा

16. **रघुनंदन त्रिवेदी की कहानियों में चिकित्सा संस्थान और मानवीय संघर्ष** 75–77
निधि देवड़ा, जोधपुर

17. **रामसनेही सम्प्रदायाद्याचार्य संतकवि दरिया साहब की परंपरा में प्रयुक्त साधना पद्धति** 78–84
डॉ. सतीश कुमार, पानीपत (हरियाणा)

18. **विष्णु प्रभाकर की साहित्यिक यात्रा–एक विहंगावलोकन** 85–89
खुशबू भार्गव, जोधपुर

19. **हिंदी दलित कहानी : देह–उत्पीड़न बनाम स्त्री** 90–95
डॉ. नितीन गायकवाड, पुणे (महाराष्ट्र)

20. **राजस्थानी बातां मांय चित्रित लोकोत्सव : अेक दीठ** 96–98
मांगीलाल, जोधपुर

21. **छायावादी कवियों मे महादेवी वर्मा के काव्य की तुलनात्मक स्थिति (प्रेम और प्रकृति के सम्बंध में)** 99–106
अलका जैन, किशनगढ़

22. **नारी जीवन के द्वन्द्व और संघर्ष डॉ. मधु संधु की कहानियों के सन्दर्भ में** 107–111
डॉ. दीप्ति, अमृतसर (पंजाब)

23. **Nazir as Builders of Water Reservoirs** 112-115
Prof. S. P. Vyas, ICHR, New Delhi

24. **Signs and Symbols in Rock Art** 116-119
Virendra Sharma, Ajmer

25. **Climate Change and Gender Equality: Women's Vulnerability and Adaptation towards Climate Change** 120-129
Dr. Shalini Chaturvedi & Rahul Verma, Jaipur

26. **Rural Development in Global Discourse** 130-134
Dr. Gaurav Gothwal, Jaipur

27. **Attrition : The War for Talent** 135-140
Ruchika, Charkhi- Dadri (Haryana)

28. **Word Accent in Punjabi** 141-146
Mansi Bajaj, Delhi

29. **Political History of Mandi State During The British Raj (1846A.D.-1947A.D.)** 147-150
Bhisham Gupta, Shimla (Uttrakhand)

30. **Peace Education In Schools : A Need For Sustainable Development** 151-154
Dr. Shubhra P. Kandpal, Haldwani (Uttrakhand)

31. **Administrative and Political Structure of Pakistan** 155-161
Surya Prakash Sharma, Kaladera

32. **Demonitazation In India : 2016** 162-167
Dr. Pooja Metha, Jodhpur

समावेशी शिक्षा और उसका प्रबन्धन

डॉ. सुभाष सिंह
सह–आचार्य, रणवीर रणन्जय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, अमेठी (उत्तरप्रदेश)

www.shodhshree.com

शोध सारांश

आज हम जिस वर्तमान समय में रह रहें है वह हर दृष्टिकोण से काफी उन्नत है और यही कारण है कि आज की पीढ़ी अपने अधिकारों के प्रति काफी सजग है। यदि हम अधिकार आधारित प्रतिरूप की संकल्पना को इस निरन्तर परिवर्तनशील और गतिशील समय की देन माने तो इसमें कोई अतिशयोक्ति नहीं होनी चाहिये। अधिकार आधारित प्रतिरूप में निर्भरता से आत्मनिर्भरता पर पूर्ण जोर दिया गया है। यह प्रतिरूप पूर्ण रूप से अक्षम अथवा विकलांग व्यक्तियों के वास्तविक व्यक्तिगत और सामाजिक अधिकारों पर आधारित है, जिसके लिये वे लगातार प्रयत्नशील है। इस शोध पत्र में अक्षम व सक्षम व्यक्तियों हेतु समान रूप से अपनायी जाने वाली समावेशित शिक्षा पर विचार किया गया है। जिससे बगैर हीन भावना के अक्षम व्यक्ति भी सक्षम व्यक्तियों के साथ प्रतिद्वन्द्विता व अपना विकास कर सकें।

संकेताक्षर : *विश्व स्वास्थ्य संगठन (W.H.O), समावेशन, प्रबन्धन, अधिगम की गति।*

विश्व स्वास्थ्य संगठन (W.H.O) की सभी के लिए शिक्षा नीति संबंधी निर्णय (1991) को लागू करने के लिए यह आवश्यक है कि सदस्य देशों शैक्षणिक व्यवस्था के अंतर्निहित अंग के रूप में सभी श्रेणियों के अक्षमता से प्रभावित व्यक्तियों को समान शैक्षणिक सुगम्यता प्रदान करने के लिए आवश्यक कदम उठाए। अक्षम व्यक्तियों हेतु समान अवसरों को उपलब्ध कराने संबंधी संयुक्त राष्ट्र के मानक नियमों (The UN Standard Rules of the Equalization of Opportunities for Persons with Disabilities - 1993) के अनुसार ''सभी देश समानता के सिद्धांतों को समझे.... अक्षमता से प्रभावित बच्चों, किशोरों तथा वयस्कों की समाकलित परिवेशों में शैक्षणिक अवसर प्रदान करें। वे सभी अक्षमताग्रस्त बच्चों के लिए शिक्षा के मानक को सुनिश्चित करें।'' प्रत्येक विद्यालय को कानूनी प्रावधानों को पूरा करने के लिए समाकलित/समावेशित विद्यालय बनाया जाना चाहिए। सलमांका कथन (Salamanca Statement) के अनुसार प्रत्येक बच्चे को शिक्षा का मौलिक अधिकार है तथा शैक्षणिक व्यवस्था को इस प्रकार तैयार किया जाना चाहिए तथा शैक्षणिक कार्यक्रमों को इस प्रकार कार्यान्वित किया जाना चाहिए जिससे रूचियों, योग्यताओं तथा अधिगम आवश्यकताओं वृहद् भिन्नताओं को पूरा किया जा सके। इसके आगे इसमें कहा गया है कि विशिष्ट शैक्षणिक आवश्यकताओं वाले बच्चों को नियमित विद्यालयों में सुगम्यता प्राप्त होनी चाहिए जोकि उन्हें बाल केंद्रित शिक्षण विधि के माध्यम से उनकी आवश्यकताओं को पूरा करते हुए उन्हें समायोजित कर सके। अतः सलमांका कथन ने 1994 में समावेशित शिक्षा के सिद्धांतों का निर्धारण स्पष्ट रूप से किया। संयुक्त राष्ट्र महासभा ने वर्ष 2001 को एक प्रस्ताव पारित करके अक्षमता से प्रभावित व्यक्तियों के अधिकारों तथा सम्मान के संरक्षण एवं प्रोत्साहन को विकसित करने के लिए एक अस्थाई समिति गठित की। काफी विचार–विमर्श के बाद संयुक्त राष्ट्र महासभा ने 13 दिसंबर 2006 को सर्वसम्मति से समझौते का अंतिम प्रारूप पारित

किया। भारत ने 30 मार्च 2007 को इस समझौते पर पहले दिन ही हस्ताक्षर किए। इस समझौते का उद्देश्य सभी विकलांग व्यक्तियों द्वारा उनके सभी मानवाधिकारों को पूर्ण एवं समान रूप से प्राप्त करने हेतु इन अधिकारों को प्रोत्साहित, संरक्षित एवं सुनिश्चित करना। इसे अक्षमताग्रस्त व्यक्तियों के जन्मसिद्ध अधिकारों के प्रति सम्मान को प्रोत्साहित करके प्राप्त किया जा सकता है यह समझौता अक्षमताग्रस्त व्यक्तियों के प्रति दृष्टिकोण में प्रतिमान परिवर्तन को दर्शाता है। अक्षमताग्रस्त व्यक्तियों को दया, चिकित्सीय उपचार एवं सामाजिक सुरक्षा की वस्तु के रूप में नहीं देखा जाना चाहिए अपितु उन्हें संपूर्ण अधिकार प्राप्त व्यक्ति के रूप में देखा जाना चाहिए जो कि अपने मर्जी के अनुसार अपने अधिकारों की मांग कर सकता है एवं निर्णय ले सकता है तथा इसके साथ-साथ समाज के सक्रिय सदस्य के रूप में कार्य कर सकता है। यू.एन.सी.आर.पी.डी के अनुसार ''अक्षमताग्रस्त व्यक्तियों को उनकी अक्षमता के आधार पर सामान्य शैक्षणिक व्यवस्था से अलग नहीं किया जा सकता। वे समुदाय में रह रहे अन्य व्यक्तियों के समान ही समावेशित, गुणवत्तायुक्त एवं निःशुल्क प्राथमिक एवं माध्यमिक शिक्षा प्राप्त कर सकते हैं। उन्हें उनकी व्यक्तिगत आव यकताओं को पूरा करने हेतु तर्क-संगत समायोजन प्रदान किया जाना चाहिए। अक्षमताग्रस्त व्यक्तियों को प्रभावी शिक्षा प्रदान करने हेतु सामान्य शिक्षण व्यवस्था के अंतर्गत आवश्यक सहायता उपलब्ध कराई जानी चाहिए। प्रभावी व्यक्तिगत सहायता को उनकी शैक्षणिक तथा सामाजिक विकास को बढ़ाने हेतु उनके वातावरण में उपलब्ध कराई जानी चाहिए।''

भारतीय संविधान के नीति निर्देशक सिद्धांत, राष्ट्रीय शिक्षा नीति (1986,1992) तथा सर्वशिक्षा अभियान परियोजना के साथ-साथ सभी के लिए शिक्षा (2015) के अंतर्राष्ट्रीय लक्ष्य तथा ह्योगों फ्रेमवर्क ऑफ एक्शन (2015), कार्यदायी संस्थाओं जैसे-मानव संसाधन एवं विकास मंत्रालय एवं सर्वशिक्षा अभियान के राज्यस्तरीय संस्थाओं को सशक्तिकरण प्रदान करते हैं जिसके माध्यम से देश में विशिष्ट आवश्यकताओं वाले बच्चों के प्रवेश स्थायित्व एवं शिक्षा को सुनिश्चित किया जा सके। देश में कोई भी नियमित विद्यालय विशिष्ट आवश्यकता वाले बच्चों को प्रवेश देने से मना नहीं कर सकते। इस संदर्भ में वर्तमान समय के सभी विद्यालय समाकलित/ समावेशित विद्यालय बन गए हैं। अतः अब यह अनिवार्य हो गया है कि प्रत्येक प्राथमिक तथा माध्यमिक विद्यालय को कम से कम एक शिक्षक को एफ.सी.एस.ई.डी.ई कार्यक्रम के अंतर्गत प्रशिक्षित किया जाए जिससे वे कक्षा के भीतर विशिष्ट आवश्यकता वाले बच्चों की विशिष्ट शैक्षणिक जरूरतों को पूरा कर सके।

समावेशित कक्षाओं के प्रबंधन के लिए समावेशित शिक्षा के सिद्धांतों की स्पष्ट समझ होनी आवश्यक है। 40-60 बच्चों (कभी-कभी इससे ज्यादा भी) की कक्षा में हम विभिन्न आवश्यकताओं वाले बच्चों को देखते हैं। प्रत्येक बच्चा विशिष्ट होता है एवं वह अपनी गति के अनुसार अधिगम करता है। उनकी क्षमताएँ भी अत्यधिक भिन्न होती है। हम सभी इससे सहमत है कि एक कक्षा में भिन्नताएँ बहुत सामान्य हैं एवं क्षमताओं में समानता बहुत कम देखने को मिलती हैं। उपरोक्त चुनौतियों के अतिरिक्त हम यह भी पाते हैं कि भारत में अधिसंख्य विद्यालय बहु-स्तरीय विद्यालयों (Multi Grade Schools -MGS) की श्रेणी में आते हैं। बहु-स्तरीय विद्यालयों में एक शिक्षक विभिन्न स्तर के बच्चों को सहायता उपलब्ध कराने के लिए होता है। हम ऐसे भी विद्यालय देखते हैं जहाँ पर एक शिक्षक अकेले की विभिन्न विषयों को पढ़ाता है। अतः हम एक कक्षा को किस प्रकार विकसित करेंगें जिसमें विषय-वस्तु, विधि, सामग्रियों तथा मूल्यांकन विशिष्ट आव यकता वाले बच्चों समेत सभी के लिए अनुकूल हो तथा उनकी आवश्यकताओं को पूरा करता हो। समावेशित शिक्षा के सिद्धांत के अनुसार कक्षा के भीतर नियमित शिक्षक द्वारा सभी बच्चें के अधिगम के लिए सुविधाएँ उपलब्ध कराई जानी चाहिए। यह जिम्मेदारी केवल कक्षा तक ही सीमित नहीं होनी चाहिए अपितु इससे कहीं अधिक होनी चाहिए। समावेशित शिक्षा के अनुसार नियमित विद्यालय को कक्षा के भीतर प्रत्येक बच्चे की आव यकता के अनुसार अनुकूलित किया जाना चाहिए। यूनेस्को संसाधन सामग्री सभी बच्चों को लाभांवित करने के लिए कक्षा नीतियाँ तैयार करने की दिशा में पहला कदम था। वैश्विक स्तर पर समावेशित अधिगम वातावरण के विकास के संदर्भ में लोगों में अत्याधिक जागरूकता है। हम जानते हैं कि ''जो व्यक्ति साथ अधिगम करते हैं वे साथ रहते हैं''।

समावेशित शिक्षा की परिभाषा

समावेशन का अर्थ है, ''सभी विद्यार्थियों जिनमें विशिष्ट अक्षमताओं वाले विद्यार्थी भी शामिल है, को उनके आस-पड़ोस के विद्यालय में आयु के अनुसार उपयुक्त

कक्षाओं में आवश्यक अतिरिक्त उपकरणों तथा सहायक सेवाओं के द्वारा प्रभावी शैक्षणिक सेवाएं प्राप्त करने को समाज के पूर्ण सदस्य के रूप में उत्पादक जीवन हेतु तैयार किया जा सके।''

नेशनल सेंटर ऑन एड्यूकेशनल रीस्ट्रक्चरिंग एण्ड इवेलुएशन

यूनेस्को के अनुसार,''समावेशित शिक्षा अधिगम, संस्कृति तथा समुदाय में सहभागिता को बढ़ाते हुए एवं शिक्षा के भीतर तथा उससे पृथकीकरण को हटाते हुए सभी अध्ययनकर्ताओं की विभिन्न आवश्यकताओं का पता लगाने एवं उन्हें पूरा करने की एक प्रक्रिया है।'' सलामांका कथन के अनुसार, ''विद्यालयों द्वारा सभी बच्चों को उनकी शारीरिक, बौद्धिक, भाषायी तथा अन्य स्थितियों के बावजूद उन्हें शामिल करना चाहिए। इनमें अक्षमता से प्रभावित बच्चे तथा विशिष्ट योग्यता वाले बच्चे, सड़कों पर रहने वाले तथा मजदूरी करने वाले बच्चे, दूर–दराज़ इलाकों में रहने वाले तथा घुमंतू जनसमूह वाले बच्चे, भाषायी, जन–जातीय अथवा सांस्कृतिक अल्पसंख्यक समुदायों के बच्चे तथा अन्य अलाभकारी अथवा उपेक्षित क्षेत्रों तथा समूहों से आने वाले बच्चे शामिल है।''

समावेशित कक्षाओं को प्रभावित करने वाले कारक

सभी कक्षाओं में विभिन्न योग्यताओं तथा अभिवृत्तियों वाले बच्चे होते हैं। कक्षाओं के भीतर इस विविधता की पहचान करना महत्वपूर्ण है। हम सभी ने अपने विद्यालय/महाविद्यालय की अवधि के दौरान कुछ विशेष आवश्यकताओं का अनुभव किया है। विशेष आवश्यकता कुछ और नहीं अपितु किसी अवधारणा को समझने अथवा क्रिया को निष्पादित करने में अतिरिक्त सहायता की आवश्यकता है। कोई भी पूर्ण नहीं है। कोई भी समस्या चाहे वह सामाजिक, बौद्धिक, संवेदी, प्रेरक अथवा बीमारी हो वह अधिगम के लिए एक समस्या के रूप में प्रकट होगी।

विशिष्ट आवश्यकताएँ

विशिष्ट आवश्यकताएँ हो सकती हैं – अल्प अवधि के लिए और दीर्घ अवधि के लिए। अल्प अवधि वाली विशिष्ट आवश्यकताओं के उदाहरण – राज तीसरी कक्षा में पढ़ता है। वर्ष के मध्य में उसे टाइफाइड हुआ जिसके कारण वह 02 महीने तक विद्यालय नहीं जा सका। जब वह विद्यालय वापस आया तो उसे गणित तथा विज्ञान में एक शब्द भी समझ में नहीं आ रहा था। उसके कई भाग छूट गए थे। कक्षा में अन्य बच्चे उसकी बीमारी के दौरान पढ़ाए गए पाठ का उपयोग कर रहे थे। उसके अभिभावक ने उसके शिक्षक से अनुरोध किया कि जो पाठ उससे छूट गए हैं उसे सिखाने के लिए विद्यालय शुरू होने से पहले प्रतिदिन आधा घण्टा अतिरिक्त समय उसे प्रदान करे। शिक्षक तथा मित्रों की सहायता से राज को अब पढ़ने में कोई समस्या नहीं है।

दीर्घ अवधि वाली विशिष्ट आवश्यकताओं के उदाहरण –रानी कक्षा चार में पढ़ती है। वह ब्लैकबोर्ड पर लिखा हुआ एक भी शब्द नहीं देख सकती। बोर्ड से नकल करते समय वह कई गलतियॉ करती है। उसे अपनी पाठ्य पुस्तकों को पढ़ने में भी कठिनाई होती है। शिक्षक ने उसे अधिक ध्यान देने के लिए कहा। किन्तु समस्या यह है कि उसे बोर्ड पर लिखी हुई कोई भी चीज़ दिखाई नहीं देती। उसके अभिभावकों ने उसकी दृष्टि की जॉच कराई। उसे अल्प दृष्टि दोष था। अभिभावकों ने शिक्षक से अनुरोध किया कि वे कम से कम चमक वाले बोर्ड का प्रयोग करें तथा रानी को बड़े अक्षरों वाले नोट्स व पुस्तकें दें। शिक्षक ने एक अलग बोर्ड की व्यवस्था की जो बहुत ज्यादा चिकना नहीं था। अतः कक्षा की दूसरी दीवार पर रोशनी को परावर्तित नहीं करता था। उन्होने जूट के बोरियों से खिड़कियों को ढककर यह सुनिश्चित किया की बोर्ड पर सीधा प्रकाश न पड़े। अब रानी को अधिगम करने में कोई समस्या नहीं है।

अधिगम की गति

हमें यह समझना बहुत जरूरी है कि प्रत्येक बच्चा विशिष्ट होता है तथा अपनी गति के अनुसार अधिगम करता है। 40 विद्यार्थियों की कक्षा में प्रत्येक बच्चा अपनी गति का अनुसरण करता है। अतः शिक्षक किस बच्चे की गति का अनुसरण करें ? शिक्षक केंद्रित कक्षा में शिक्षक बच्चों की गति का अनुसरण करने का प्रयास करते हैं लेकिन कुछ ही समय में वे ये अनुभव करते हैं कि प्रत्येक बच्चे की अधिगम की एक अपनी गति है। इसके बाद वे अपनी गति के निर्धारित करते हैं जो कि हो सकता है कि बच्चे की गति से मेल ना खाती हो। इस प्रकार का शिक्षण शिक्षक एवं विद्यार्थियों दोनों में हताशा उत्पन्न करता है। अतः बाल केन्द्रित वातावरण तैयार करना सर्वोत्तम विकल्प है। यद्यपि इसके लिए कक्षा संगठन में कुछ बदलाव करने की आवश्यकता पड़ेगी। शिक्षको द्वारा कुछ सामान्य वाक्यांशों का उपयोग किया जाता है, जैसे – 'पुस्तक के

भाग को पूरा कर रहे है'', ''पाठ्यक्रम समाप्त कर रहे हैं'', ''कक्षा ले रहे हैं'', आदि। इस सभी के स्थान पर बाल केंद्रित वाक्यांशों का उपयोग किया जाना चाहिए, जैसे– ''बच्चे का वर्तमान अधिगम स्तर'', ''बच्चे की आधारभूत सूचना की तुलना में उसकी उपलब्धियाँ'', ''अधिगम को सुविधाजनक बनाना'', आदि। सुविधा प्रदान करने वाले व्यक्ति के रूप में शिक्षक के लिए यह आवश्यक है कि वह पाठ्यक्रम को विस्तार प्रदान करें। 'विद्यालयी अवधि के दौरान किसी भी बच्चे को अधिगम आवश्यकता का अनुभव हो सकता है।'

हम सभी ने विद्यालयीय वर्षो के दौरान किसी न किसी विशिष्ट आवश्यकता का अनुभव किया है। क्या आपको याद है कि आपको कैसा महसूस हुआ था जब आपके पास बैठे हुए मित्र ने गणित के प्रश्न को कुछ सेकेण्ड में हल कर दिया जबकि उसी कार्य के लिए आपको अपने दिमाग पर ज़ारे देना पड़ा। इस धरती पर कोई ऐसा व्यक्ति नहीं है जिसे उसके विद्यालयी वर्षो के दौरान इस प्रकार की समस्या का अनुभव ना हुआ हो। कोई भी अपने आप में पूर्ण नहीं है। अधिगम से समस्याएँ विभिन्न कारकों के परिणाम स्वरूप प्रकट होती है। यदि किसी बच्चे में एक अक्षमता है, जैसे– सुनने, चलने, संप्रेषण करने, अधिगम करने, देखने, आदि तो इसका अर्थ यह नहीं है कि उस बच्चे को सभी विषयों के संपूर्ण पाठ्यक्रम में विशिष्ट आवश्यकताएँ होंगी। वास्तविकता यह है कि अक्षमताग्रस्त व्यक्तियों के विषय में लोगों में बहुत कम जागरूकता है। एक व्यक्ति जिन्हें देखने में समस्या है वे एक बार हवाई यात्रा कर रहे थे। उन्हें तब आश्चर्य हुआ जब उन्होंने पाया कि प्रवेशद्वार पर एक व्हीलचेयर उनका इंतज़ार कर रही है। जब उन्होंने पूछा कि व्हीलचेयर की व्यवस्था क्यों की गई है तो हवाई जहाज के क्रू के सदस्य ने जवाब दिया की उन्हें यह सूचना दी गई थी कि अक्षमता से प्रभावित एक व्यक्ति यात्रा करने वाला है, जिसका अर्थ है कि उसे एक व्हील चेयर की आवश्यकता होगी। सभी कक्षाओं में असमानता देखी जाती है। उनमें विभिन्न योग्यताओं, सामाजिक, सांस्कृतिक पृष्ठभूमि वाले बच्चे होते है। प्रत्येक बच्चा स्वयं में विशिष्ट होता है। कोई भी दो बच्चे एक समान नहीं होते हैं। अतः यदि यह विशिष्टता सामान्य रूप से देखी जाती है तो अक्षमता से प्रभावित बच्चों को ''असामान्य'' क्यों कहा जाता है ? 40–50 बच्चों की कक्षा में हम पाते हैं कि प्रत्येक बच्चा विशिष्ट है। जब तक शिक्षक इस विशिष्टता को सम्मान नहीं देगा एवं स्वीकार नहीं करेगा तब तक कोई अधिगम नहीं हो सकता।

पारंपरिक तथा समावेशित उपागमों में अंतर

पारंपरिक शैक्षणिक अभ्यासों द्वारा खराब शिक्षक तथा विद्यार्थी अनुपात वाली कक्षाओं में बड़ी मुश्किल से ही बच्चों को लाभ मिल पाता था। पारंपरिक शिक्षण विधियाँ अक्षमताग्रस्त बच्चों पर विपरीत प्रभाव डालती थी क्योंकि उन्हें बाल केन्द्रित उपागम की आवश्यकता होती है। सभी के लिए अवसरों की समानता के सिद्धान्त का अनुपालन यहाँ अतिआवश्यक है।

एक पाठ्यचर्या दृष्टिकोण – बाल केन्द्रित विधि

प्रत्येक देश की पाठ्यक्रम विकास के संदर्भ में अपनी शिक्षा नीति होती है। भारत में हमारे पास एक पाठ्यक्रम ढ़ाँचा है जिसे केन्द्रीय स्तर पर एन.सी.ई.आर.टी. द्वारा विकसित किया गया है। एन.सी.ई.आर.टी पाठ्यक्रम के आधार पर सामग्रियों के व्यापक उपयोग के लिए मापदण्ड संदर्भित आंकड़े (Criterion Reference Data) विकसित करना आवश्यक है, जिसका उपयोग विभिन्न राज्यों द्वारा किया जाता है। यद्यपि राज्यों की यह जिम्मेदारी होती है कि वे अपने राज्य की आवश्यकताओं के अनुरूप पाठ्यक्रम में सुधार करें। इस प्रकार के बड़े स्तर पर किए गए सुधार ही पर्याप्त नहीं होते। पाठ्यक्रम में आगे कक्षा के स्तर पर भी सुधार किया जाना चाहिए। समावेशित शिक्षा के अंतर्गत ऐसे पाठ्यक्रम के विकास पर अत्याधिक बल दिया जाता है जो कि कक्षा में सभी बच्चों के लिए अर्थपूर्ण हो।

समावेशन में शैक्षणिक विधियों से जुड़े मुद्दे

(Pedagogical issues in Inclusion)

सभी के लिए पाठ्यक्रम का अर्थ एक ऐसे पाठ्यक्रम से है जिसका उपयोग विभिन्न योग्यताओं के साथ सभी बच्चों द्वारा किया जा सके इस तथ्य को जानना जरूरी है कि प्रत्येक बच्चा विशिष्ट होता है जो कि उनकी भिन्न योग्यताओं के रूप में प्रदर्शित होता है। प्रत्येक कक्षा में भिन्न योग्यताओं वाले बच्चों का एक समूह होता है। भिन्न योग्यताओं के लिए कई कारक जिम्मेदार होते हैं – घरेलू वातावरण, अधिगम, देखने, संप्रेषण करने एवं सुनने संबंधी समस्याएँ तथा बीमारी। ये सभी कारक क्षमता के स्तर में भिन्नता प्रदान करते हैं। पाठ्यक्रम का निर्माण आदर्श स्थितियों में किया जाना चाहिए जिसमें प्रत्येक बच्चे पर ध्यान दिया जाना चाहिए अर्थात

सामाजिक, सांस्कृतिक तथा व्यक्तिगत कारक। जैसा कि हम पहले ही बता चुके हैं पाठ्यक्रम का संबंध जीवन से होता है। अतः बच्चे के जीवन की स्थितियों से संबंध अपेक्षित ज्ञान तथा कौशलों के उपयोग को आधार प्रदान करता है।

सोमा लक्षण (SOMA)

अब हम यह समझने का प्रयास करेंगे कि किस प्रकार के सुधारों की आवश्यकता पड़ती है। कुछ महत्वपूर्ण सुधार जिनकी हमें आवश्यकता पड़ेगी निम्नलिखित हैं।

1. विशिष्ट (Specific)– त्रृटिहीन एव यर्थाथवादी शिक्षण।
2. अवलोकन करने योग्य (Observable)–अधिगम अवलोकन करने योग्य होना चाहिए।
3. मापन योग्य (Measurable)–क्रमबद्ध अधिगम परिणाम बच्चे द्वारा स्तरीय सहायता के माध्यम से प्राप्त की गई निष्पादन क्षमता के रूप से मापने योग्य होना चाहिए।
4. प्राप्त करने योग्य (Achievable)–प्रत्येक अवधारणा तथा उपविषय को प्राप्त किए जाने योग्य छोटे–छोटे चरणों में बाँटा जाना चाहिए।

यदि बच्चे को यह चरण आसान लगें तो शिक्षक इन चरणों को उप–समूहों में जोड़कर बड़ा कर सकता है और यदि बच्चे कठिनाई का अनुभव करें तो इन्हें छोटे–छोटे चरणों में बॉट सकते हैं।

पाठ्यक्रम आधारित मापदण्ड संदर्भित ऑकड़े विकसित करना (CCRD)

सामान्य पाठ्यक्रम आधारित मापदण्ड संदर्भित आँकड़े विकसित करना आवश्यक है जो कि आपको अधिगम परिणामों की जाँचसूची उपलब्ध कराने में सहायता करता है, जिसमें उपरोक्त दिए गए सोमा (SOMA) लक्षण शामिल होते हैं। इस प्रकार की सी.सी.आर.डी. आपको निम्नलिखित सूचनाएँ प्रदान करती हैः–

1. अवधारणा की एक सूची।
2. संबंधित उप–अवधारणाओं की एक सूची।
3. संबंधित क्रमबद्ध एंव श्रेणीबद्ध अधिगम परिणामों की एक सूची।

सी.सी.आर.डी. की बहुउद्देशीय उपयोगिता

कक्षा में सी.सी.आर.डी का उपयोग कई उद्देश्यों में किया जाता है। वे निम्नलिखित हैं –

1. अधिगम के वर्तमान स्तर को समझने के लिए आधार रेखाओं का निर्धारण करना (जिससे बच्चे के अधिगम में वृद्धि हो सके)।
2. वार्षिक, अर्द्धवार्षिक, त्रैमासिक, मासिक, साप्ताहिक तथा दैनिक व्यश्टिगत शैक्षणिक योजना विकसित करना।
3. बच्चे द्वारा प्राप्त की गई उपलब्धि का निरीक्षण करना।
4. बच्चे का नियमित मूल्यांकन करना।

हम समावेशित विद्यालयों में पाठ्यचर्या दृष्टिकोण क्यों अपनाते है ? क्योंकि –

1. 'गलती से' अथवा 'प्रावधानों' के तहत विभिन्न आवश्यकताओं वाले बच्चों का नामांकन विद्यालयों में किया जा चुका है।
2. जब तक बच्चे की व्यक्तिगत आवश्यकताओं को पूरा करने का प्रयास नहीं किया जाएगा तब तक बहुत से बच्चे आगे नहीं बढ़ पाएँगे तथा अंततः शिक्षा व्यवस्था से बाहर हो जाएँगे क्योंकि शिक्षा उनकी आवश्यकताओं को पूरा करने में असफल साबित हो रही है।
3. उपरोक्त मुद्दे सभी विद्यालयों पर लागू होते हैं चाहे वो किसी भी भौगोलिक स्थल तथा बच्चों के वर्ग से संबंधित हो जो विद्यालय जा रहे हैं।
4. विद्यालयों में शिक्षक अधिगम में सहायक होता है, न कि नियंत्रक।

प्रत्येक बच्चे की अधिगम करने की एक गति होती है। बच्चे की गति का अनुसरण करें न कि इसके विपरीत जाएँ

सभी के लिए पाठ्यक्रम को होना चाहिए

1. बाल केन्द्रित – अक्षमता से प्रभावित बच्चों को बाल केंद्रित पाठ्यक्रम की आवश्यकता होती है जो कि उनकी व्यक्तिगत आवश्यकताओं को पूरा करता है। पाठ्यक्रम के अंतर्गत विशिष्ट (Specific), अवलोकन योग्य (Observable), मापन योग्य (Measurable), तथा उपलब्धि प्राप्त करने योग्य (Achievble), अधिगम परिणामों (SOMA) को निर्धारित करने की आवश्यकता होती है।

2. लचीला – विशिष्ट आवश्यकता वाले बच्चों द्वारा शैक्षणिक प्रक्रिया में भाग लेने हेतु एक लचीला, स्थानीय स्तर पर महत्वपूर्ण पाठ्यक्रम, शिक्षण तथा अधिगम

नीतियाँ आव यक होती हैं।

3. **प्रतिभागी**–विशिष्ट आवश्यकता वाले बच्चों को एक अधिगम वातावरण की आवश्यकता होती है जिसमें वे छोटी समूह अधिगम व्यवस्था के अंतर्गत अधिगम में सक्रिय रूप से भाग ले सकें।

4. **अभिभावकों के साथ भागीदारी** – बच्चे केवल कक्षा में ही नहीं अपितु घर पर भी सीखते हैं। अतः अभिभावकों के साथ भागीदारी महत्वपूर्ण हो जाती है।

अधिगम के वर्तमान स्तर को निर्धारित करना

हम यह जानते हैं कि प्रत्येक बच्चा अपनी गति के अनुसार अधिगम करता है। हम यह भी जानते हैं कि बच्चा केवल विद्यालय में ही अधिगम नहीं करता। इसका अर्थ है कि जब बच्चा विद्यालय में प्रवेश करता है तो इसके पास कुछ ज्ञान होना चाहिए। यह ज्ञान घर में अथवा खेल के दौरान अथवा समुदाय में होने वाली सामाजिक क्रियाओं द्वारा अर्जित किया गया होता है। अतः प्रत्येक बच्चे के आधारभूत स्तर को निर्धारित करना महत्वपूर्ण होता है। सामान्य पाठ्यक्रम जाँचसूची का उपयोग आधारभूत स्तर को निर्धारित करने के लिए किया जाता है। प्रत्येक अवधारणा के अधिगम परिणामों का चुनाव करके बच्चे द्वारा क्रिया को निष्पादित कराया जाता है। आधारभूत स्तर का निर्धारण निम्न तरीके से किया जा सकता है–

1. **अग्रगामी** – इस प्रक्रिया के अंतर्गत सभी क्रियाएँ क्रमबद्ध रूप से निष्पादित की जाती हैं – अर्थात् पहले अधिगम परिणाम से आगे की ओर।

2. **पश्चगामी** – इसके अंतर्गत बच्चे द्वारा अंतिम क्रिया को सबसे पहले तथा इसके बाद क्रमबद्ध रूप से पीछे आते हुए शुरूआती क्रियाओं को निष्पादित किया जाता है।

3. **बिना किसी पूर्व नियोजन के चयनित कार्य** – कक्षा के आधार पर कार्य अथवा क्रिया का चयन बिना किसी पूर्व नियोजन के किया जाता है तथा बच्चे से संबंधित क्रिया को कराया जाता है। यह संभव है कि बच्चा किसी क्रिया को एक निश्चित स्तर तक निष्पादित करे तथा उसके पश्चात् हो सकता है कि वह निष्पादित न कर पाए। उपरोक्त सभी विधियों में बच्चा एक ऐसे स्तर तक पहुँच जाता है जहॉ वह लगभग 05 क्रियाओं को निष्पादित नहीं कर पाता है। यह निर्धारित करता है कि बच्चा कुछ अवधारणाओं को सीख चुका है और बाकी का निष्पादन नहीं कर पा रहा है। इसे आधार भूत (Baseline) स्तर कहा जाता है।

सारांश

इस प्रकार से हम देखते हैं कि वर्तमान समय में समावेशी शिक्षा समाज के सभी बच्चों को शिक्षा की मुख्य धारा से जोड़ने की बात का समर्थन करती है। एक मायने में सर्व शिक्षा जेसे शब्दों का ही रूपान्तरित रूप है जिसके कई उद्देश्यों में से एक उद्देश्य है–''विशेष आवश्यकता वाले बच्चों की शिक्षा''। समावेशी शिक्षा की सिर्फ अक्षम बच्चों को ही जरूरत नहीं है, वह एक सामान्य बच्चे का भी व्यक्तित्व विकास कर सकती है, यह शिक्षा सामान्य बच्चों में धैर्य, क्षमा, सहयोग, सहिष्णुता निःस्वार्थता जैस उच्च मानवीय गुणों की वृद्धि में सहायक हो सकती है। समावेशी शिक्षा का मुख्य लक्ष्य बाधित छात्रों को अनुकूलतम पर्यावरण में सार्थक शिक्षा प्रदान करने से है। ताकि उनका समुचित विकास हो और वे जीवन मार्ग पर सफल हो सकें, चल सके और अपनी क्षमता के अनुसार दौड़ लगा सके।

सन्दर्भ ग्रंथ सूची

1. *Ariel, A : Education of Children and Adolescents with Learning Disabilities, Mc millan Publishing Co. New York, 1992.*
2. *Chaturvedi, Shikha : Samaveshi Vidyalayon Ka Srijan , R.Lal l Book Depot, Meerut, 2017.*
3. *Cruschank, W. M : Psychology of Exceptional Children and Youth, Engelwood Cilffs. N.J.: Prentice Hall, 1975.*
4. *Jouhari, Dipti : Shiksha Me Navachar , R.Lal l Book Depot, Meerut, 2017.*
5. *Ku. Bela : Samaveshi Shiksha, Amit Prakashan, Jalandhar, 2016.*
6. *Mangal, S.K. : Samekit Vidyalaya Ki Asthapna, Tondon Publications, Ludhiyana, 2016.*
7. *Pal, H.R: Vishishta Balak, Madhya Pradesh Hindi Granth , Academy,Bhopal, 2010.*
8. *Panda, K.C: Education of Exceptional Children, Vikas Publishing House, New Delhi, 1997.*
9. *Shankar, U: Exceptional Children, Enkay Publisher, New Delhi, 1991.*
10. *Sharma, Asha : Samaveshi Shiksha, Amit Prakashan, Jalandhar, 2016.*
11. *Sharma, Anita : Samaveshi Shiksha, R.Lal l Book Depot, Meerut, 2017.*
12. *Sharma, R.A. : Vishisht Shiksha Ka Prarup , R.Lal l Book Depot, Meerut, 2017.*

13. *Sharma, Yogendra K. Evang Sharma, Madhulika : Samaveshi Shiksha , Kanishka Publication , New Delhi.*
14. *Singh,Madan : Samaveshi Shiksha , R.Lal l Book Depot, Meerut, 2017.*
15. *Singh, N: Special Education. Commonwealth Publishers. New Delhi,1997.*
16. *Stow & Selfe : Understanding Children with Special Needs, Unwin Hyman Ltd. London,1989.*
17. *Thakur , Yatindra : Samaveshi Shiksha , Agra¡l Publications , Agra, 2017*
18. *Tyagi, Gurusharan Das : Samaveshi Shiksha, Shree Vinod Pustak Mandir, Agara, 2016.*
19. *Yesseldyke, E. James, Bob Algozzine : Special Education- A Practical Approach for Teachers, Kanishka Publishers & Distributers, New Delhi, 1999.*

संगीत चिकित्सा एवं अंतरम सुकून

हितेष गन्धर्व
शोधार्थी, जे.आर.एन.यू., एम.वी. श्रमजीवी कॉलेज, उदयपुर

www.shodhshree.com

शोध सारांश

म्यूजिक थैरेपी से तनाव और मानसिक विकार दूर होता है। संगीत मन को सुकून तो देता ही है, लेकिन अब कई स्वास्थ्य समस्याओं से राहत दिलाने में भी मददगार होता है, इस पद्धति को ''म्यूजिक थैरेपी'' कहते है। संगीत की स्वर लहरियों से मनोरंजन के तौर पर तो मन प्रसन्न होता हैं साथ ही यह तनाव और कई मानसिक विकारों को दूर करने में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। जैसे – जैसे व्यक्ति संगीत की स्वर लहरों में खोता है, उसका ध्यान दूसरी बातों से हटता जाता है और वह राहंत महसूस करने लगता है। म्यूजिक थैरेपी अकेलेपन और तनाव को भी काफी हद तक कम करता है। इससे अवसाद दूर होता है और बैचेनी कम होती है। यह ध्यान और एकाग्रता को भी बढ़ाता है।

संगीत हमारे चारों ओर हैं। यह जन्म और मृत्यु से लेकर कई चरणों में हमारे जीवन की हर घटना को चिह्नित करता है। मनुष्य को लम्बे समय से ज्ञात है कि संगीत में शांति, सुकून और कायाकल्प करने की क्षमता है। म्यूजिक, मेडिटेशन में भी बहुत लाभदायक होती है। मधुर ध्वनियों द्वारा मन में उठने वाले विकारों, तनावों और घुटन को दूर करने के लिए जिस पैथी या उपचार पद्धति का प्रयोग किया जाए, वह ''म्यूजिक थैरपी'' हैं। हाथ–पैर–आँख–नाक आदि से बना हुआ हमारा यह बाह्य शरीर है, जिसके अंदर मन मस्तिष्क, ये दो ऐसे जबरदस्त ऑरगन है, जो हमारे समस्त शरीर को स्पन्दित करते रहते है। सब ग्रन्थियों पर रक्त प्रभाव पर, धड़कन पर आवाज का प्रभाव हैं।

संकेताक्षर : *संगीत, म्यूजिक थेरेपी, आवाज़, मेडिटेशन, नाद।*

"The man has no music in himself, nor in his moods,
with concard of sweet sound, is fit for transons, stratagem and stratagens"

अर्थात् यदि व्यक्ति में संगीत या म्युजिकल कोन कॉर्ड (स्वरावलियाँ) नहीं हैं, तो वह केवल चालाक, धूर्त और अपराधी होता है। उसका मूल कारण मन में उपजने वाली विकृतियाँ हैं। इसलिए मनोचिकित्सकों और मनोवैज्ञानिकों ने मन को इन निरर्थक भावों को नियन्त्रित करने और उसे सूकुन देने के लिए मधुर संगीत द्वारा मनोरोगों को शांत करने के लिए संगीत को चिकित्सा जगत से जोड़ने का प्रयास किया हैं।

हमारे देश की अपेक्षा विदेशों में संगीत की कीमत अधिक बढ़ी है, वहाँ का वैज्ञानिक समुदाय अनेक परीक्षणों प्रयोगों में म्यूजिक थैरेपी की उपयोगिता अधिक समझने लगा हैं। भारतीय नाद योग (Musical Sound) की निरंतरता मानसिक परेशानियों, आंतरिक द्वंदों एवं कलुषित और डर्टी–माइन्ड (Dirty mind) के लिए एक प्रवाह हैं। वैसे भी यह वास्तविकता है, मंत्र जप में शब्दों का (Vibration) स्पन्दन या आवृत्ति होती है, जो एक वलय या सर्किल मन में बनाता है, जिसे रिदमेटिक सर्किल (Rhythematic Circle) कहा जा सकता है। यही चमक या निरंतरता हमारे मन की

शंकाओं, निरर्थक विचार और चिंतन का बाहर निकाल देती हैं।

ऑक्सफोर्ड व पाविया विश्वविद्यालयों के शोधकर्ताओं के अध्ययन बताते हैं कि – ''भारतीय शास्त्रीय संगीत व दूसरे मधुर संगीत दिल के मरीजों पर असर करता है तथा जीवन–शैली में थोडा बदलाव लाता है। अतः एव शास्त्रीय संगीत को जिंदगी में स्थान देना चाहिए।''[1]

हीसिंग हैंड में काउंसलर एंड एडवाइजर डॉ. ने कहा, ''इलाज के दौरान संगीत सुनते–2 कई बार लोगों को रोना भी आ जाता हैं लेकिन बाद में वे हल्का महसूस करते है। जब व्यक्ति में नकारात्मकता का स्तर बहुत बढ़ जाता है तो ऐसे में अकेले में जाकर रोना बहुत जरूरी होता है इसे ''कैथेरेसिस'' कहा जाता है। संगीत से इलाज करने पर शुरूआत में नतीजे भले ही बहुत अच्छे न

मिलें और व्यक्ति उसका प्रतिरोध करे लेकिन धीरे–धीरे इसका सकारात्मक परिणाम देखने का मिलता है। संगीत अपने आप में बहुत प्रभावी हैं। और तनाव तथा कई मानसिक रोगों से निजात दिलाने में तथा तन और मन को प्रसन्न रखने में अहम भूमिका निभाता है। संगीत का प्रभाव बहुत गहरा होता है यह नकारात्मकता को सकारात्मकता में बदल सकता है और ''म्यूजिक थेरेपी'' यानी ''संगीत चिकित्सा'' का आधार भी यही हैं।

म्यूजिक थेरेपी देने वाले काउंसलर पुनीत दुल्हन ने कहा कि आजकल की भागदौड़ भरी जिंदगी में लोगों को कई प्रकार की मानसिक परेशानियों, तनाव और अन्य समस्याओं से जूझना पड़ता है और संगीत इन सबसे उबरन में मददगार साबित हो सकता है। म्यूजिक थैरेपी के तहत व्यक्ति के स्वभाव एवं उसकी चिकित्सा मन से सम्बंधित रही। मानस का अभिप्राय है :– हमारे अंतर में उठने वाली भावनाओं और दुर्भावनाओं का उफान है, जिस प्रकार उबलते दूध के उफान को पानी के छीटों से ठंडा किया जाता हैं, ठीक उसी प्रकार अशांत मन को शांत करने के लिए देवीय या आध्यात्मिक संगीत को प्रधानता दी गई है। प्रत्येक विद्वान जानते है कि संगीत दुखी मन के लिए ''मरहम'' की तुरंत होता है। इसीलिए चिकित्सा जगत में संगीत को थैरेपी के रूप में इस्तेमाल किया जाने लगा – क्योंकि मानसिक रोगों का कारण कोई न कोई अवहेलना, उपेक्षा या अपमान होगा, जिसे व्यक्ति बाहर नहीं निकाल पाता, यही उसके अंदर, मानसिक रोड़ा बनकर उसके समस्त व्यक्तित्व को निस्तेज बना देता है, जिसके छुटकारे के लिए मनोचिकित्सकों ने म्यूजिक को एक थैरेपी के रूप में प्रचलित हैं। यही ''म्यूजिक थैरेपी'' या ''संगीत चिकित्सा'' हैं। संगीत की लय मनुष्यो में सहयोग की भावना उत्पन्न करती है तथा हिंसक प्रवृतियों को रोकती है। एक मनोचिकित्सक और संगीतकार दोनों मिलकर रोगी के अतीत की स्मृतियों को जागृत करने के लिए संगीत का प्रयोग करते हैं। म्यूजिक थैरेपी से तनाव और मानसिक विकार दूर होता है। संगीत मन को सुकून तो देता ही है, लेकिन अब कई स्वास्थ्य समस्याओं से राहत दिलाने में भी मददगार होता है, इस पद्धति को ''म्यूजिक थैरेपी'' कहते है। संगीत की स्वर लहरियों से मनोरंजन के तौर पर तो मन प्रसन्न होता हैं साथ ही यह तनाव और कई मानसिक विकारों को दूर करने में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। जैसे – जैसे व्यक्ति संगीत की स्वर लहरों में खोता है, उसका ध्यान दूसरी बातों से हटता जाता है और वह राहंत महसूस करने लगता है। म्यूजिक थैरेपी अकेलेपन और तनाव को भी काफी हद तक कम करता है। इससे अवसाद दूर होता है और बैचेनी कम होती है। यह ध्यान और एकाग्रता को भी बढ़ाता है।

संगीत हमारे चारों और हैं। यह जन्म और मृत्यु से लेकर कई चरणों में हमारे जीवन की हर घटना को चिह्नित करता है। मनुष्य को लम्बे समय से ज्ञात है कि संगीत में शांति, सुकून और कायाकल्प करने की क्षमता है। म्यूजिक, मेडिटेशन में भी बहुत लाभदायक होती है। इसलिए जब भी मेडिटेशन करने जाऐ तो बहुत ही मद्धम संगीत बजाएं आपके कानो और दिमाग को भी सुकून मिलेगा। हम जिस भी शारीरिक या भावनात्मक परिस्थिति में रहे

संगीत उसे अच्छा करने का काम ही करता हैं। क्योंकि ऐसा देखा गया है कि कुछ धुनों को लेकर हर व्यक्ति ज्यादा संवेदनशील होता है। जिस कारण उस संगीत को सुनकर दिमाग की तानवग्रस्त नसें शिपिल पड़ती है जिससे दिमाग शांत और आरामदायक महसूस करता है। संगीत सुनने से न केवल मानसिक सुकून मिलता है बल्कि यह शरीर पर भी अनुकूल प्रभाव डालता है।

मधुर ध्वनियों द्वारा मन में उठने वाले विकारों, तनावों और घुटन को दूर करने के लिए जिस पैथी या उपचार

पद्धति का प्रयोग किया जाए, वह ''म्यूजिक थैरपी'' हैं। हाथ–पैर–आँख–नाक आदि से बना हुआ हमारा यह बाह्य शरीर है, जिसके अंदर मन मस्तिष्क, ये दो ऐसे जबरदस्त ऑरगन है, जो हमारे समस्त शरीर को स्पन्दित करते रहते है। सब ग्रन्थियों पर रक्त प्रभाव पर, धड़कन पर आवाज का प्रभाव हैं। इसीलिए आरम्भ से ही भारतीय संस्कृति में भटकते हुए मन को एकाग्र करने के लिए वैदिक ऋचाओं, स्तुतियों और प्रार्थनाओं एवं कीर्तनों को निरन्तर गाने की प्रथा रही हैं। कहने का अर्थ है कि मन में भटकाव को दूर करने मैलोडिक ध्वनि की आवश्यकता अनुभूति की गई हैं।

इस संदर्भ में संगीत पत्रिका में डॉ. काशी कुमार कर्ण का एक आलेख है– ''मानव मस्तिष्क में वैमनस्य को हटाकर शान्ति एवं सहमति की स्थापना करना ही म्यूजिक थैरेपी या ''संगीत चिकित्सा'' हैं।

संगीत चिकित्सा अंग्रेजी के ''म्यूजिक थैरेपी'' का हिन्दी अनुवाद है जिसका प्रचलन आधुनिक नही, अपितु अति प्राचीन काल से इस चिकित्सा का ''मानस चिकित्सा'' कहा गया। मनुष्य बिना सेल्फ एक्सप्रेशन के नहीं जी सकता है इसीलिए तो हर किसी को संगीत सुनना बेहद पसंद भी होता है। व्यक्तिगत तौर पर देखा जाए तो संगीत के माध्यम से ही हम अपनी भावनाओं को एक तरह से ही करते हैं वो भी बिना किसी और की मदद लिए। अगर आप स्वयं संगीत रचना करते है तो उसके जरिए आप अपनी भावनाओं को एक बेहतर ढंग से व्यक्त कर सकते हैं जो शायद आप शब्दों के माध्यम से शायद ही व्यक्त कर पाए। अनकही भावनाओं को बाहर लाना– जो भी अवचेतन मन में जो बातें चल रही है उसे बाहर निकाला जाए ताकि चिंता और अवसाद का पता लगाया जा सके। म्यूजिक आपके स्वास्थ्य समस्या के हल निकालने की एक मुख्य चाबी भी है और इसके कारण ही आप अपनी अनकही भावनाओं को भी मन से बाहर निकाल सकते हैं।

संगीत सभी जीवित प्राणियों को पौधों से लेकर पक्षियों और जानवरों और मनुष्यों को विकसित करने और फिर से जीवंत करने में मदद करता हैं संगीत सभी जीवित प्राणियों की कोशिकाओं में प्रवेश करता है, मूड (स्विंग) बदलता है, बीमारियों को ठीक करता है नींद लाता है, जागरूकता पैदा करता है और मनोदशा, मन और आत्मा के साथ नृत्य करता है।

प्राचीन भारत और वेदों के ऋषियों ने पहले मानव और

जीवन पर संगीत के प्रभावों को दस्तावेज किया था, लेकिन यह संगीत के माध्यम से उपचार की अधिक आधुनिक अवधारणाओं को तैयार करने के लिए पश्चिमी दुनिया में छोड़ा गया। संगीत चिकित्सक के लिए दुनिया के सर्वोतम विश्वविद्यालयों और विदेशों में लाभकारी गंभीर संगीत चिकित्सा पाठ्यक्रम है।[3]

संगीत दिमाग को ही नही बल्कि रूह को भी सुकुन और शांति पहुंचाता है। बहुत सारे हॉस्पिटल भी अपने यहाँ म्यूजिक थैरेपी की सुविधा मुहैया करवाने लगे है। हर संस्ति की संगीत की अलग विरासत भी होती है, अलग–अलग लोग म्यूजिक थैरेपी में अपने प्रांत और संस्कृति के संगीत को सुनाते है एवं विभिन्न प्रकार के रोगों के उपचार के लिए जिस प्रकार एलौपेथी,

हाम्योपैथी, नेचुरल पैथी, आर्युवैदिक जैसी पैथियों का प्रचलन, चिकित्सा जगत में प्रचलित है, उसी प्रकार खासतौर से मानसिक रागों के उपचार हेतू जिस पैथी का प्रयोग किया जाता है, वह ''म्यूजिक थैरेपी'' है। म्यूजिक यानी संगीत के सुरों द्वारा उपचार करने की पद्धति ''म्यूजिक थैरेपी'' या ''संगीत चिकित्सा'' के द्वारा एवं आसपास की परिस्थितियों के मुताबिक, संगीत सुना कर उसका इलाज किया जाता है।'' इसके लिए आर्केस्ट्रा और अन्य कई उपकरणों का इस्तेमाल किया जाता है। दुल्हन ने कहा कि संगीतज्ञ सारंग देव न संगीत के सात सूरों का शरीर के सात अंगों से जोड़ा और इसके मुताबिक संगीत तैयार करने की कोशिश की। जिसमें उन्हें काफी सफलता भी मिली। म्यूजिक थैरेपी से इलाज के लिए ऐसे संगीत का इस्तेमाल किया जाता है जिससे व्यक्ति को चैन मिल सके।[4]

सन्दर्भ ग्रंथ सूची

1. *महारानी शर्मा : संगीत चिकित्सा, 2014 पब्लिकसर : कनिष्क प्रकाशक, पृष्ठ सं. 1,2 एवं 86*
2. *राजस्थान पत्रिका, 16 जनवरी 2015, म्यूजिक थैरेपी, जयपुर (राज.), Patrika.com*
3. *राजेन्द्र मेनन :– 2002, संगीत थैरेपी का चमत्कार, पब्लिशर, नई दिल्ली*
4. *म्यूजिक थैरेपी : संगीत की स्वर, लहरियों से सेहत तक। Hindi.webdrini.com*

वैश्वीकरण एवं भारतीय श्रमिक परिवार

डॉ. दिनेश गुप्ता
सहायक आचार्य, राजकीय महारानी सुदर्शन कन्या महाविद्यालय, बीकानेर

www.shodhshree.com

शोध सारांश

वर्तमान भारतीय समाज में श्रमिक वर्ग पर वैश्वीकरण के प्रभावों का अध्ययन अति आवश्यक है जिससे उनके स्तर की व्याख्या की जा सके। श्रमिक वर्ग की उत्पति मूलतः कृशक वर्ग से हुई है जो औद्यौगिकरण की प्रकिया का परिणाम है, प्रस्तुत शोध पत्र में श्रमिको के समक्ष आने वाली चुनौतियो का विश्लेषण किया गया है, श्रमिक परिवारो को वैश्वीकरण ने कैसे प्रभावित किया है और उन्हें सयुक्त परिवार प्रणाली से एकल परिवार प्रणाली की संरचनाात्मक स्थिति में ला दिया है परन्तु उनका परिवार आज भी प्रकार्यात्मक रूप से सयुक्त परिवार प्रणाली के अधिकतम लक्षणों को समेटे हुए है। वैश्वीकरण, निजीकरण ने श्रम संघो को कमजोर किया है तथा श्रम संघ पूर्णत राजनैतिक दलों की तरह कार्य कर रहे है श्रमिको श्रम संघ के सदस्य तो है लेकिन अपनी श्रम संघो में भूमिका को सीमित कर दिया है।

संकेताक्षर : *औद्योगिकरण, वैश्वीकरण, निजीकरण, उदारीकरण, सीमान्त परिवार, श्रमसंघ।*

भारतीय समाज में स्वतन्त्रता एवं स्वतन्त्रता के पश्चात औद्योगिक श्रमिको से सम्बन्धित अध्ययन समाजशास्त्रियों के द्वारा अधिक नहीं किये गये हैं, कृषकों से सम्बधित अध्ययन औद्योगिक श्रमिको की तुलना में अधिक हुए है। कृषक एवं श्रमिक एक दूसरे के पूरक होते हैं इस तथ्य कों आन्द्रे बेतई भी स्वीकार चुके है, अतः कृषको के समान ही श्रमिको से सम्बधित अध्ययन भी समान महत्ता रखते है पर अधिक मात्रा में नहीं हुए हैं।

भारतीय समाज में कृषकों और ग्रामीण समुदायों के अध्ययन विभिन्न उपागमों के अन्तर्गत किये गयें है। जिनमें संरचनात्मक प्रकार्यात्मक उपागम की प्रमुखता रही है। मार्क्सवादी उपागम के आधार पर किये गये अध्ययन अधिक नहीं है केवल आन्द्रे बेतई एवं ए.आर.देसाई द्वारा ही मार्क्सवादी उपागम को अपना कर अध्ययन किये गये हैं। ये अध्ययन भारतीय समाज के सामन्तवादी चरित्र को उजागर करते हैं।

औपनिवेशिक शासन की समाप्ति, भारत के संविधान के निर्माण एवं योजनाओं के पंचवर्षीय योजनाओं के मॉडल में उद्योगों को प्राथमिकता दिये जाने के कारण भारत में एक नवीन वर्ग की उत्पत्ति होती है जिसे श्रमिक वर्ग कहते हैं जिसका उद्भव आदिवासी समुदायों एवं कृषक समुदायों से होता हैं इस कारण यह श्रमिक वर्ग अकुशल श्रमिक वर्ग की श्रेणी में आता है, अज्ञानता एवं अशिक्षा के कारण यह श्रमिक वर्ग शोषण का शिकार भी रहा हैं। श्रमिकों से सम्बधित अध्ययनों के अन्तर्गत श्रमिक परिवारों की संरचना, मादक पदार्थो के व्यसन, श्रमसंघ और उद्योगों में तालाबंदी एवं हड़ताल जैसे पक्षों से सम्बधित पक्षों के रहे है। ये सभी अध्ययन बीसवीं शताब्दी के सातवें दशक में प्रमुख रूप से हुए है परन्तु पद्धति शास्त्रीय दृष्टिकोण से समानता होते हुए भी निष्कर्षो में विरोधाभास अनुभव किया गया है।

विल्वर्ट मूर, एलन डी.रोस और एम.एस.गोरे के अध्ययन इस तथ्य को स्वीकार करते हैं कि औद्यौगीकरण और एकल परिवार में सहसम्बन्ध है वहीं दूसरी तरफ आर.डी.लैम्बर्ट, माईकल जे. अमीश. के अध्ययन इस तथ्य को नकारते हैं। समाजशास्त्री

एम.एस.गोरे ने परिवारों की संरचना के आधार पर अध्ययन दिल्ली और हरियाणा की सीमा पर किया तथा संयुक्त परिवार, एकल परिवार के अतिरिक्त फिन्ज परिवार अर्थात् उपान्त परिवार की अवधारणा को भी दिया। उपान्त परिवार को गोरे ने इस अर्थ में परिभाषित किया कि ये वे परिवार है जिनकी संस्कृति न तो पूर्ण रूप से ग्रामीण है और न पूर्ण रूप से नगरीय, सामान्य शब्दों में कहें तो ये वे परिवार है जो संयुक्त एवं एकल परिवारों के मध्य अपनी उपस्थिति संरचना की दृष्टि से रखते है।

भारत में स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात और वैश्वीकरण के भारतीय अर्थव्यवस्था में आने से पूर्व मिश्रित अर्थव्यवस्था के प्रारूप को अपना रखा था। मिश्रित अर्थव्यवस्था के प्रारूप ने श्रमिक वर्ग की संख्या को तेजी से वृद्धि की थी क्योंकि सरकारी एवं निजी दोनों उद्योग तेजी से विकसित हो रहे थें। तथा मशीनीकरण ने कृषि क्षेत्र में श्रम को कम किया था साथ ही नगरीकरण की प्रक्रिया भी एक वर्ग को ग्रामीण संस्कृति से नगरीय संस्कृति की और ला रही थी।

वैश्वीकरण, निजीकरण एवं उदारीकरण एवं भारतीय समाज

खाड़ी युद्व ने सम्पूर्ण विश्व की सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक व्यवस्था को बींसवीं शताब्दी के अंतिम दशक में प्रभावित किया इसका प्रभाव भारतीय समाज पर भी सीधा-सीधा हुआ, तत्कालीन केन्द्र सरकार ने वैश्वीकरण, निजीकरण और उदारीकरण को अपना लिया जिसका सीधा प्रभाव भारतीय अर्थव्यवस्था पर यह हुआ कि वह अब पूर्व की भांति मिश्रित नहीं रही। तथा राजकीय नियंत्रण से मुक्त हो विश्व व्यापार से प्रभावित होने लगी। इन सभी का स्पष्ट प्रभाव श्रमिको पर होने लगा,जिससे औद्योगिक श्रमिकों का एक नई व्यवस्था से आमना-सामना हुआ। यह एक ऐसी व्यवस्था थी जिसमें औपचारिकताऐं अधिक थी। उद्योगो में उत्पादन पर अधिक महत्त्व दिया जाने लगा तथा मानव संसाधन के सभी पक्ष कमजोर हुए। दूसरे शब्दों में कहें तो यह एक अलगाव उत्पन्न करने वाली व्यवस्था थी। राजकीय क्षेत्र में पँजीपतियों का वर्चस्व होने लगा, सभी श्रमिकों से सम्बधित नीतियों में पँजीपतियों का दखल बढ़ने लगा, साथ ही उद्योगों में स्वचालित मशीनो के आने से अकुशल श्रमिक एवं कुशल श्रमिक के दो वर्ग बन गये, जिससे अकुशल वर्ग धीरे- धीरे उद्योगों से बाहर होने लगे। इसी व्यवस्था ने राजकीय उद्योगों का स्वमित्व भी निजी हाथों में देना शुरु कर दिया जिसे विनिवेश की प्रकिया के नाम से जाना गया इस प्रक्रिया में उद्योगों में निजी भागीदारी को बढ़ाया गया यह भागीदारी 75 प्रतिशत से भी अधिक होने लगी। साथ ही कई राजकीय स्वामित्व वाले उद्योगो को बन्द कर दिया । इस तरह उन्नसवीं शताब्दी में जो समाज व्यवस्था यूरोपीय देशों में थी वैसी ही समाज व्यवस्था भारतीय समाज में स्थापित होने लगी।

यूरोपीय देशों में औद्योगिकरण के कारण व्यक्तिवादिता का वर्चस्व होने लगा। प्रमुख समाजशास्त्री दुर्खीम ने सम्पूर्ण यूरोप में बढ़ती व्यक्तिवादिता और घटती सामूहिकता को अपने अध्ययनों में रखा। भारतीय समाज के सन्दर्भ में यह बात करना इसलिए भी जरूरी हो जाता है कि कुछ सामाजिक सांस्कृतिक कारक अद्वितीय रूप से भारतीय समाज में निहित है जिनमें संयुक्त परिवार प्रणाली, जाति व्यवस्था, विवाह प्रणाली हैं इसके अतिरिक्त वर्ण व्यवस्था, जजमानी व्यवस्था, संस्कार, कर्म आश्रम आदि। स्वतन्त्रता पश्चात भारत में औद्योगीकरण ने संयुक्त परिवार प्रणाली, जाति व्यवस्था और विवाह प्रणाली को तेजी से प्रभावित किया जिसमें और तेज गति 1990 के पश्चात से आने लगी। जिसे अति उद्योगवाद के युग से भी जानते हैं। एलफिन टाफलर ने इस युग की व्याख्या की है आपके अनुसार उद्योगवाद का यह तकाजा था कि बड़ी संख्या में कामगार हमेशा तैयार रहें और रोजगार की तलाश में अपन जमीन छोड़ने तथा जब भी आवश्यक हो उस पर पुनः वापस आने में सक्षम हो । इस तरह विस्तृत परिवार ने धीरे-धीरे अपने अतिरिक्त भार को घटा लिया और तथाकथित एकल परिवार का जन्म हुआ जो एक न्यूनीकृत और चलायमान पारिवारिक ईकाई थी। इस एकल परिवार में केवल माता-पिता और चंद बच्चे होते है। यह नए प्रकार का परिवार है जो परम्परागत विस्तृत परिवार से ज्यादा गतिशील था, जो सभी औद्योगिक देशों में एक तरह का मानक हो गया पर पर्यावरण प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में प्रगति के अगले चरण के रूप में अतिउद्योगवाद उच्चतर गतिशीलता की मांग करता है। इस तरह हम भविष्य के अनेक लोगों से यह उम्मीद कर सकते है कि वे निःसन्तान रहकर और पुरूष तथा स्त्री के रूप में इसके सबसे बुनियादी घटक में परिवार को न्यूनीकृत कर सरलीकरण की दिशा में एक कदम आगे बढाएंगें।

भारतीय श्रमिक परिवारों के सन्दर्भ में एलफिन टाफलर का कथन केवल माता-पिता और बच्चे तक सीमित है जिसे केवल संरचात्मक स्वरूप के आधार पर ही समझा

जा सकता है। लेखक द्वारा स्वयं के शोध अध्ययन से भी यही तथ्य स्पष्ट होता है कि समकालीन भारतीय समाज में संयुक्त परिवार प्रणाली का संरचनात्मक स्वरूप परिवर्तित हुआ किन्तु प्रकार्यात्मक स्वरूप तो आज भी वहीं है जो उद्योगवाद की प्रक्रिया से पूर्व था तथा अपनी संरचना को परिवर्तित कर श्रमिकों के असन्तोष, तनाव, शोषण एवं अलगाव को सोख लिया तथा साथ ही एक बाजार उपलब्ध करवाया जो कि मांग पर आधारित था।

श्रमिक परिवार परिवर्तन एवं चुनौतियां

श्रमिको के लिए वर्तमान में उद्योगों में कार्य करने के तरीकों में परिवर्तन आया है कार्य की दशाओं में परिवर्तन करने के कारण उच्च तकनीक आधारित मशीनों पर कार्य करते समय श्रमिक मानव न रहकर स्वयं एक मशीन बन गया है। अर्थात शारीरिक कार्य करने वाले श्रमिकों की जगह मानसिक और हल्का शारीरिक कार्य करने वाले श्रमिकों बन गया। ऐसे मे एक श्रमिक एक साथ पाँच,छः मशीनों पर भी कार्य करता है जो श्रमिकों द्वारा किये जाने वाले श्रम में परिवर्तन को दर्शाता है लेकिन साथ ही उसे वह प्रशिक्षण भी प्राप्त होना चाहिए जो पँजीवादी शिक्षा प्रणाली से सम्बधित हो।

श्रमिकों के कार्य करने के तरीकों में परिवर्तन के साथ ही औद्योगिक प्रतिष्ठानों में श्रमिकों की संख्या में लगाातर कमी आने लगी है तथा नये श्रमिकों की भर्ती करते समय यह ध्यान रखा जाता है कि वह स्थानीय निवासी न हों। श्रमिकों की घटती संख्या ने श्रम संघों की संरचना, कार्यप्रणाली और संख्या को भी नकारात्मक रूप से प्रभावित किया हैं। तकनीकी ज्ञान प्राप्त कुशल श्रमिक ही अब औद्योगिक प्रतिष्ठानों मे भर्ती हो पाते है अकुशल श्रमिकों की संख्या औद्योगिक प्रतिष्ठानों में तेजी से कम हुई है। छँटनी को आधार बनाकर अकुशल श्रमिकों को उद्योगों से बाहर कर दिया जाता हैं। विगत पांच दशकों के औद्यौगिक उत्पादन की गणना की जाए तो यह तथ्य सामने आता है कि उत्पादन दर में कई गुना वुद्धि हुई है तथा उसी अनुपात में श्रमिकों की संख्या में तेजी से कमी आई हैं। ऐसे तथ्य श्रमिको के लिए अनुकूल नहीं है।

इसी सन्दर्भ मे एशिया की सबसे बड़ी बॉल बेयरिंग कम्पनी जिसकी एक औद्योगिक ईकाई राजस्थान की राजधानी जयपुर में स्थित है के अन्तर्गत सन् 1960 में श्रमिकों की अनुमानित संख्या 6000 थी तथा उस समय चार श्रम संघ इस औद्योगिक ईकाई में कार्यरत थें सितम्बर 2008 में श्रमिकों की संख्या घटकर 1400 रह गई और श्रम संघों की संख्या भी घटकर दो रह गई तथा उत्पादन दस गुना से भी ज्यादा हो गया। श्रमिकों के सन्दर्भ में यह तथ्य नकारात्मक है अर्थात श्रमिकों को अलविदा कहने का समय आ गया हैं उपर्युक्त कथन आन्द्रे जार्ज भी कहते है।

श्रम संघ एवं कार्य के प्रतिमान

श्रम संघों की संख्या के साथ ही इनकी कार्यशैली भी परिवर्तित हुई है या श्रम संघो के क्षेत्र में चुनौती भी महसूस होती है। बड़े पैमाने पर औद्योगिक प्रतिष्ठानों में श्रमसंघ कमजोर हो रहे हैं, उन्हें कमजोर भी किया जा रहा है वर्तमान उदारीकरण एवं निजीकरण का युग श्रम संघों के लिए उपर्युक्त नहीं है। प्रभावी श्रमिक नेताओं का राजनैतिक पदों पर आसीन करवा दिया जाता है या वे स्वयं भी राजनैतिक पदों को अपने लिए उपर्युक्त मानते हैं, इस कारण श्रमिकों से उनकी अन्तक्रिया केवल राजनैतिक लाभ तक रह जाती है। समय और स्थान के मध्य बढ़ती दूरी, समय स्थान संकुचन ने भी श्रम संघ को हानि ही पहुचाई है। श्रमिक श्रम संघ की सदस्यता ग्रहण नहीं करना चाहता यदि ग्रहण कर भी लेता है उनकी गतिविधियों में भाग नहीं लेना चाहता है और यदि भाग लेता भी है तो उसमें अपनी राय, मत जाहिर नहीं करता अपितु एक निष्क्रिय सदस्य के रूप में भाग लेता है।

जाति जैसी सामाजिक संरचना भी भारतीय समाज की अद्वितीय विशेषता है जो श्रम संघो को हानि पहुंचाती है जातिगत आधार पर भी श्रम संघ कार्य करते है जो श्रमिकों के लिए अनुकूल नहीं हैं। इसके अतिरिक्त क्षैत्रवाद की भावना भी श्रम संघों को कमजोर करती हैं। भारतीय संयुक्त परिवार प्रणाली ने श्रम संघों के अनुकूल वातावरण उत्पन्न किया है जिसे एकल परिवार प्रणाली कमजोर करती है। एकल परिवार प्रणाली श्रमिकों के ग्रामीण परिवेश का परिणाम है लेकिन यह स्वरूप संरचनात्मक ही है प्रकार्यात्मक दृष्टि से वह आज भी संयुक्त परिवार का सदस्य हैं।

भारत में तेज गति से कम होते रोजगार के अवसर भी श्रम संघों को कमजोर करते हैं जिसे अनुबन्ध प्रणाली तो पूर्ण रूप से नष्ट ही कर रही है। श्रम संघ की भूमिका भी उद्योगों में कोरम पूरा करने तक ही रह गई हैं। जो एक अत्यन्त सोच का विषय हैं।

श्रमिकों वर्ग के समक्ष चुनौतियां

भारत में श्रमिकों के समक्ष आने वाली चुनौतियों का

अध्ययन किया जाये तो एक ही तथ्य सार रूप में सामने आता है कि एक चौराहे पर खड़ा हुआ है जिसके एक रास्ता उसे वैश्वीकृत उद्योग व्यवस्था का दिखता है जिसमें उत्तरफोर्डवाद एवं टोयटोनिज्म की प्रक्रियो को अपना लिया है। दूसरा रास्ता उद्योगों में कार्य करने वाले श्रम संघों का है जो प्रथम रास्तें का उल्टा है। तीसरा रास्ता उसका अपना परिवार है जो संरचनात्मक दृष्टि से एकल एवं प्रकार्यात्मक दृष्टि से संयुक्त है के सामजस्य से है। चौथा रास्ता भारतीय समाज के उस संगठनात्मक स्वरूप से है जिसके अन्तर्गत जाति और क्षैत्र जैसी संरचाए आती हैं

ऐसी अवस्थाऐं श्रमिक को उस चौराहे पर राह चुनने में बाधा उत्पन्न करती है कि वह इन चारों राहों में सामजस्य कैसे रखे जिसका रास्ता उसे बिना बोले, सुने, और देखें निश्चित समय में निर्धारित उत्पादन करने की मानसिक बाध्यता को स्वीकार करने से है। जो पँजीपति चाहता है।

सन्दर्भ ग्रंथ सूची

1. *टॉफलर,एलफीनः ''फ्यूचर शोक'' पान बुक्स, लंदन और सिडनी,1971.*
2. *मूर,बिल्फर्ट.ई.: ''इम्पैक्ट ऑफ इंडस्ट्री'' न्यू दिल्ली,प्रिंटिंग हॉल, 1968.*
3. *अमीश,माइकल जे, ''मार्डेनाइजेशन एंड सोशल स्ट्रक्चर फैमिली, कास्ट एंड क्लास इन जमशेदपुर'' ई. पी.डब्ल्यू.4, 1217–1224, (1969).*
4. *बैल,डेनियलः ''द कमिंग ऑफ पोस्ट इंडिस्ट्रीयल सोसायटी'' न्यू दिल्ली, अरनोल्ड हैलमान पब्लिकेशर्स, 1974.*
5. *गोरे, एम.एस.: ''अरबेनाइजेशन एंड फैमिली चेन्ज'' बाम्बे पापुलर प्रकाशन, 1968.*
6. *लैम्बर्ट,आर.डी. : ''वर्क्स,फैक्ट्रीज एंड सोशल चेंज'' बाम्बे एशिया पब्लिशिंग हाउस,1963.*
7. *स्नेडर,ई.डब्ल्यू.: ''इंडस्ट्रीयल सोशयोलॉजी'' न्यूयार्क मैक्गोन हीत बुक,1957.*
8. *सिंगर, मिल्टनः ''द इंडियन फैमिली इन मोर्डन इंडस्ट्री इन स्ट्रक्चर एंड चेंज इन इंडियन सोयायटी'' शिकागो एलडाइम पब्लिशिंग कंम्पनी,1981.*
9. *जार्ज,आन्द्रे : ''फेयरवेल टू द वर्किंग क्लास : एन एसे ऑन पोस्ट इंडस्ट्रीयल सो योलीज्म'' ट्रांस.एम. स्नोरहर.लंदल प्लूटो प्रैस,1962.*
10. *कुमार कृष्ण : ''फ्रोम पोस्ट इंडस्ट्रीयल टू पोस्ट मोडर्न सोसायटी'' जयपुर, रावत पब्लिशिंग 2005.*

राजस्थान के सुल्ताना गाँव में नशा उपयोग पर सरकारी नीति, नशा सामग्री की उपलब्धता, यौन भिन्नता व सामाजिक उस्तव के प्रभावों का अध्ययन

www.shodhshree.com

आरसी प्रसाद झा
अनुसंधान सहयोगी, भारतीय मानवविज्ञान सर्वेक्षण, उदयपुर

शोध सारांश

अब शहर ही नहीं सुदूर व ग्रामीण क्षेत्रों में भी नशा करने वालों की संख्या दिनों-दिन बढ रहा है। इसी बिन्दु को मूल रूप से ध्यान में रखकर अध्ययनकर्त्ता द्वारा अध्ययन का मूल उद्देश्य है कि राजस्थान के जैसलमेर जिला के सुल्ताना गाँव में प्रयोग में आने वाली नशा का अध्ययन किया जाए। साथ ही, इन नशा प्रयोग पर सरकारी नीति, स्थानीय स्तर पर नशा सामग्री की उपलब्धता, यौन भिन्नता व सामाजिक उस्तव के प्रभावों का अध्ययन करना है। इस अध्ययन के लिए "सुल्ताना'' गाँव में स्थानीय ग्रामीणों से पंद्रह दिन में सूचना संग्रहण कर यह शोध-आलेख तैयार किया गया है। इस अध्ययन के परिणाम यह इंगित करते हैं कि सरकारी नीति का ढीलापन, पा कर के रूप में सरकारी आय का साधन, लाइसेंस देकर शराब की दुकान गाँव-गाँव में खुलवाना, सरकार के माध्यम से ठोस व मजबूत नीति के अभाव, आदि कारणों से ग्रामीण क्षेत्रों में नशा प्रचलन बढ़ा है। सुल्ताना गाँव में व इसके आसपास के दुकानों में शराब, तंबाकू, बीड़ी, सिगरेट, पान मसाला, आदि मिल जाते हैं। लेकिन, यहाँ डोडापोस्त, गाँजा व अफीम की बिक्री नहीं होने से सुल्तानावासी अन्य स्थान से खरीद कर लाते हैं। परिणामस्वरूप, इनके उपलब्ध होने से यहाँ पर तंबाकू, बीड़ी, सिगरेट, डोडापोस्त, पान मसाला, गाँजा, अफीम, शराब (देशी व अंग्रेजी दोनों) का प्रयोग बढ़ा है। स्थानीय ग्रामीण अफीम का प्रयोग स्वयं, पशु व बच्चे के उपचार में करते हैं। शराब, तंबाकू, सिगरेट, पान मसाला व अफीम का प्रयोग पुरूष अधिक करते हैं जबकि कम ही महिलायें बीड़ी व पान मसाला लेती हैं। सामाजिक उस्तव के अवसर पर भी स्थानीय ग्रामीण शराब, बीड़ी, सिगरेट व अफीम का प्रयोग करते हैं।

***संकेताक्षर** : ग्रामीण, नशा सामग्री, सुल्ताना, यौन भिन्नता, सामाजिक उत्सव।*

क्षेत्रफल की दृष्टि से राजस्थान के सभी जिलों में जैसलमेर प्रथम स्थान पर है। जैसलमेर जिला में अवस्थित "सुल्ताना'' ग्राम सुल्ताना ग्राम-पंचायत में आता है। संवत् 1262 ई. में यह गॉव बना। सुल्ताना ग्राम पंचायत की कुल जनसंख्या 2594 व क्षेत्रफल 24992.64 हेक्टेयर (भारत की जनगणना, 2011) है। पी. टी.एम. चौराहा (शास्त्री नगर), सुल्ताना का ही विस्तार है। पी.टी.एम. चौराहा सुल्ताना से तीन से चार कि.मी. दूर है, जो कि यहाँ के कुछ स्थानीय निवासी खेती व व्यवसाय के लिए एवं कुछ बाहरी लोग खेती व अन्य कार्य के लिए रहते हैं। सुल्ताना गाँव के मूल निवासी राजपूत, मेघवाल, भील, आदि हैं।

अध्ययनकर्त्ता द्वारा अध्ययन का मूल उद्देश्य है कि राजस्थान के जैसलमेर जिला के सुल्ताना गाँव में प्रयोग में आने वाले नशा का अध्ययन किया जाए। साथ ही, सरकारी नीति, स्थानीय स्तर पर नशा सामग्री की उपलब्धता, यौन भिन्नता व सामाजिक उस्तव के प्रभावों का अध्ययन करना है। इस अध्ययन के लिए "सुल्ताना'' गाँव में लगभग पंद्रह दिन रहकर स्थानीय व्यक्तियों से गहन साक्षात्कार लिया गया व स्थानीय अवलोकन किया गया। सूचनादाताओं से गुणात्मक सूचना संग्रहण किए गए। यह अध्ययन मुख्यतः क्षेत्र कार्यो पर आधारित रहा है। साथ ही, इस अध्ययन में द्वितीयक स्रोत को भी

स्थान दिया गया है। अध्ययनकर्ता द्वारा द्वितीयक स्रोत के लिए गाँव का इतिहास, जनगणना, पुस्तकों, प्रतिवेदनों, आदि के माध्यम से सूचनायें एकत्रित की गईं।

सुल्ताना ग्राम के निवासियों द्वारा शराब, बीरी, सिगरेट, तम्बाकू, अफीम, डोडापोस्त, गाँजा, आदि का प्रयोग किया जाता है (झा एवं इनके सहयोगियों, 2014)। सुल्ताना ग्राम में अफीम का प्रयोग बहुतायत मात्रा में लगभग लगभग प्रत्येक घर में किया जाता है। इस गाँव में शराब का प्रयोग पार्टी विशेष में या किसी आयोजन में होता है। इस गाँव में अब तम्बाकू एवं इससे निर्मित सामग्री को भी प्रयोग में लिया जाना प्रारंभ हुआ है। राजीव व इनके सहयोगियों (2017) ने अपने अध्ययन के आधार पर बताया है कि राजस्थान में तंबाकू का प्रचलन बढ रहा है। उन के अध्ययन के अनुसार, 29.60 प्रतिशत व्यक्ति तंबाकू का सेवन करते हैं। इसी अध्ययन के अनुसार, शराब का सेवन करने वाले में आधे से अधिक व्यक्ति तंबाकू का भी सेवन करते हैं। नायर व इनके सहयोगियों (2004) ने बताया है कि कम उम्र के लोगों में गुटखा व पान मसाला (तंबाकू व अन्य सामग्री मिश्रित) के प्रयोग में बेतहाशा वृद्धि हो रहा है। श्रीनाथ एवं गुप्ता (2004) ने बताय कि गाँवों में सिगरेट की तुलना में तंबाकू को कम हानिकारक माना जाता है। संभवतः इस कारण से व्यक्ति सिगरेट कम व तंबाकू अधिक प्रयोग करते हों। ओब्रयान (2002), पिंडनबर्ज (1968), वर्ल्ड हेल्थ आर्गेनाइजेशन (2002) एवं डब्ल्यू.एच.ओ. (2011) के अध्ययन परिणाम यह इंगित करते हैं कि लोगों (विशेषकर 35 वर्ष से कम उम्र के युवक सहित अन्य आयु समूह) में धुम्रपान तेजी से बढ रहा है। यूनानटेड स्टेंट्स सेंटर्स फोन डिजीज कंट्रोल (1999) द्वारा 642 युवाओं पर अध्ययन किया गया और इस अध्ययन में पाया गया कि इनमें 16 प्रतिशत युवा धूम्रपान करते थे जबकि 40 प्रतिशत युवा धुम्रपान करने की कोशिश कर रहे थे।

नशापान को रोकने के लिए सरकारी प्रयास

नशापान को रोकने के लिए राजस्थान सरकार द्वारा कई कार्यक्रम चल रहे हैं (श्रीनाथ रेड्डी एवं गुप्ता, 2004)। देशी व अंग्रेजी शराब बेचने के लिए लाइसेंस लेने पड़ते हैं। जबकि शराब के विरूद्ध लिखे नारे शहर व गाँव में मिल जाते हैं। राजस्थान में चित्तौड़गढ जिला (चित्तौड़गढ जिला में नवाबपुरा गाँव सहित आनंद, 2018) अफीम उत्पादन का एकमात्र ऐसा जिला है जो कि सरकार के नियमानुसार अफीम की खेती के लिए स्वीकृत है। कोई विशेष दिवस जैसे–गाँधी जयंती, गणतंत्र दिवस, स्वतंत्रता दिवस, महावीर जयंती, चुनाव के समय, आदि अवसर पर शराब की दुकान बंद रहते हैं। सामान्यतः आठ बजे रात्रि में शराब की दुकान बंद करने का प्रावधान है। साथ ही, किसी व्यक्ति के पास अधिक मात्रा में शराब की मात्रा पाने या कर्टन भर एक साथ पाए जाने पर सजा का प्रावधान है। सार्वजनिक स्थल, स्कूल, धार्मिक स्थल, आदि स्थान पर शराब की दुकान नहीं खोलने का प्रावधान है। सरकार की ओर से सिगरेट, बीरी, पान मसाला, तंबाकू, शराब की बोतल, आदि पर यह अंकित किया जाता है कि..... स्वास्थ्य के लिए हानिकारक है" व इस पर अंकित चित्र जो कि गले के कैंसर होने को इंगित करता है, ये सब भी नशा नहीं करने का संदेश देता है। सिगरेट, बीरी, पान मसाला, तंबाकू, शराब की बोतल, आदि पर सरकार कर नहीं वसूल कर पाप कर वसूलती है।

गुजरात (राजस्थान का पड़ोसी राज्य) में शराब पर पूर्ण प्रतिबंध है व चोरी–छिपे दक्षिणी राजस्थान के मार्ग से शराब भेजा जाता है। यही कारण है कि कभी–कभी गुजरात–राजस्थान सीमा पर नाकाबंदी के दौरान व आकस्मिक जाँच के दौरान शराब की कई कार्टून जब्त किए जाते हैं। इस प्रकार की जाँच लगभग प्रतिदिन होते हैं व इसके बावजूद कुछ असामाजिक तत्व इसे छिपाने में सफल होते हैं। राजस्थान का कुछ भाग, जैसे–उदयपुर, डूँगरपुर, बाँसवाड़ा, पाली, जोधपुर, जैसलमेर, बाड़मेर, बीकानेर, आदि के मुख्य मार्ग व राष्ट्रीय पथ में लगभग प्रतिदिन ऐसी घटनायें घटती हैं। ट्रकों से लेकर निजी कार तक व बैग में चोरी–छिपे देशी शराब, अंग्रेजी शराब, अफीम, डोडा चूरा/पोस्त, आदि चोरी–छिपे ले जाते हैं। संक्षेप में, सरकारी नीति का ढीलापन, पा कर के रूप में सरकारी आय का साधन, लाइसेंस देकर शराब की दुकान गाँव–गाँव में खुलवाना, सरकार के माध्यम से ठेस व मजबूत नीति के अभाव, आदि कारणों से ग्रामीणों में नशा प्रचलन बढा है।

स्थानीय स्तर की दुकान व बाजार में नशेपान की सामग्री की उलब्धता

सुल्ताना गाँव में किराने व चाय के दुकान उपलब्ध हैं। इस गाँव में किराने के दुकान लगभग सात व चाय की दुकान एक है व पी.टी.एम. चौराहा (शास्त्री नगर) में किराने (परचून) के दुकान तीन, चाय की दुकान दो व नाश्ता की

दुकान दो है। यहाँ पर तंबाकू (कंपनी में बनी सील की हुई तंबाकू), बीरी, सिगरेट व पान मशाला आदि मिलते हैं। सुल्ताना गाँव में व इसके निकट ही पी.टी.एम. चौराहा में विमल व अन्य कंपनी की तंबाकू, बीरी, सिगरेट, पान मसाला, आदि भी आसानी से मिल जाते हैं। पी.टी.एम. चौराहा में कुछ दुकान व सुल्ताना निवासी के खेती के बँटाई करने वाले का निवास स्थल है। ये बँटाई करने वाले का घर सुल्ताना निवासियों के मोरूबा (खेत) में है। स्थानीय ग्रामवासी तंबाकू (कंपनी में बनी सील की हुई तंबाकू), बीड़ी, सिगरेट व पान मसाला के लिए एक रूपया से लेकर दस रूपये तक खर्च करते हैं। अध्ययन की अवधि में यह पाया गया कि स्थानीय ग्रामवासी बीड़ी एक रूपया में एक प्रति खरीदते हैं। यह सस्ता होने के कारण इसका प्रयोग इस गाँव में अधिक होता है। कुछ अध्ययन के अनुसार, तंबाकू, बीड़ी व सिगरेट छोटी दुकानों (श्रीनाथ एवं गुप्ता, 2004), स्वास्थ्य, खाद्य, हर्बल व दवा दुकान (कोराव, 2000) में मिल जाते हैं। परिणामस्वरूप तंबाकू ग्रामीण भारत में लोकप्रिय नशा बन रहा है व व इसका लत धीरे–धीरे बढ रहा है (कोराव, 2000)। पान में तंबाकू मिलाने से भी पान के प्रयोग बढ रहे हैं। (श्रीनाथ एवं गुप्ता, 2004)।

अंग्रजी शराब की एक लाइसेंसी दुकान सुल्ताना गाँव में व एक पी.टी.एम. चौराहा (शास्त्री नगर) में है। अध्ययन के समय बिना लाइसेंस की एक भी अंग्रेजी शराब की दुकान सुल्ताना या पी.टी.एम. चौराहा (शास्त्री नगर) में नहीं पाया गया। इन दुकानों में कई ब्रांड के बियर, रॅम, ह्विस्की, वाईन बोतल, हाफ व क्वार्टर आदि आसानी से मिल जाते हैं। इसके लिए स्थानीय ग्रामवासी लगभग अस्सी रूपये से लेकर दो सौ रूपये तक खर्च करते हैं। देशी शराब की दुकान सुल्ताना में नहीं है व एकमात्र दुकान पी.टी.एम. चौराहा में है। यहाँ पर सीमित ब्रांड के देशी शराब थैली व पाउच में मिलते हैं। देशी पी.टी.एम. चौराहा में देशी शराब की दुकान होने का एक कारण यह है कि सुल्ताना ग्रामवासी के खेतिहर श्रमिक व बॅटाईदार मोरूबे (खेत) में रहते हैं, वे इस देशी शराब को ज्यादातर प्रयोग में लेते हैं। संभवतः यह दुकान सुल्ताना गॉव में होता तो ये बॅटाईदार व श्रमिक यहाँ से नहीं खरीद पाते। इसे प्रयोग में लेने वाले लगभग बीस से तीस रूपये तक खर्च करते हैं। स्थानीय मूलवासी अंग्रेजी शराब को व मोरूबे (खेत) में रहने वाले देशी शराब को प्रयोग में अधिक लेते हैं।

सुल्ताना गाँव में गाँजा, अफीम, डोडापोस्त, आदि की दुकान नहीं है व ये किराने के दुकान, चाय की दुकान, नाश्ते की दुकान, देशी शराब की दुकान व अंग्रेजी शराब की दुकान में नहीं मिलते हैं। लेकिन, स्थानीय ग्रामवासी अफीम को बहुतायत मात्रा में प्रयोग करते हैं। ये कहाँ से खरीदते हैं। ये किसी ने नहीं बताया। इसी प्रकार, कुछ स्थानीय ग्रामवासी गाँजा व डोडापोस्त को प्रयोग में लेते हैं, लेकिन क्रय स्थल को लेकर संशय बना रहा। स्थानीय ग्रामवासी का मानना है कि शहर व दूर के गाँव से गाँजा, अफीम, डोडापोस्त, आदि दस रूपये में कम मात्रा में खरीदते हैं। संक्षेप में, नशे सामग्री का स्थानीय स्तर पर सर्वसुलभता से दुकान में मिलने पर इसे प्रयोग में लेने के लिए बाध्य करता है।

यौन भिन्नता व नशा प्रयोग

शराब (देशी व अंग्रेजी सहित), तंबाकू, सिगरेट, पान मशाला व अफीम का प्रयोग सबसे अधिक पुरूष करते हैं। जबकि बहुत ही कम महिलायें बीड़ी, तंबाकू व पान मशाला लेती हैं व अन्य नशा को प्रयोग में नहीं लेती हैं। कुछ बूढी महिलायें चोरी–छिपे बीड़ी पीती हैं। बहुत ही कम लड़कियाँ व महिलायें पान मसाला को प्रयोग में लेती हैं। स्थानीय महिला द्वारा बहुत ही कम परिस्थिति में व विशेष अवसर पर (शादी–व्याह, आदि अवसर पर) अफीम व शराब का प्रयोग करती हैं। अध्ययनोपरांत पाया गया कि विवाह के अवसर पर कुछ राजपूत परिवार में महिलाओं के लिए एक अलग समूह बनाकर शराब की कार्टून दिया जाता है। यह महिलाओं के लिए अलग पार्टी होती हैं जिसमें सामान्यतः इस समूह में पुरूष की सहभागिता की मनाही होती है। मोरूबा (खेत) में रहने वाले श्रमिक व बॅटाईदार अपनी पत्नी के लिए पान मसाला व तंबाकू खरीदते हैं व कुछ पति–पत्नी इसे साथ खाते हैं। सुल्ताना ग्राम के कुछ पुरूष परिवार व पत्नी के सामने नशा करते हैं व कुछ चोरी–छिपे नशा करते हैं। सुल्ताना गॉव में महिलाओं को नशा करने की मनाही है। इस गाँव में प्रभुत्वशाली पुरूषवादी समाज होने के कारण महिलायें पुरूषों को नशा नहीं बंद करा सकते हैं। एक अध्ययन के अनुसार, छात्रों (3.9 प्रतिशत) की तुलना में छात्रायें (8.4 प्रतिशत) सूँघने (स्नफ) से संबंधित नशा अधिक करती हैं (पेल्टजर, 2003)। शिहादेह एवं इसिंगबर्ज (2005) ने अपने अध्ययन के आधार पर बताया है कि हुक्का आमतौर पर कई परिवारों, बच्चों सहित महिलाओं द्वारा बहुतायत मात्रा में प्रयोग किया जाता है। स्थानीय स्तर

पर नशा के व्यापक उपलब्धता होने से व अप्रत्यक्षतः सामाजिक स्वीकृति मिलने से महिलाओं के लिए तंबाकू का प्रयोग और आसान बना दिया है (श्रीनाथ एवं गुप्ता, 2004)। राजीव व इनके सहयोगियों (2017) ने राजस्थान व दिल्ली के अध्ययन में पाया कि 16.92 प्रतिशत महिलायें व 55.64 प्रतिशत पुरूष तंबाकू का सेवन करते हैं। गजलक्ष्मी (2003) के अध्ययन परिणाम यह इंगित करते हैं कि पुरूष बीड़ी व सिगरेट का प्रयोग करते हैं व लगभग एक चौथाई पुरूष इस कारण से मरते भी हैं। संक्षेप में, नशे के प्रयोग में पुरूषों का स्वअधिकार है वहीं महिलाओं को इसके प्रयोग के लिए प्रतिबंध है। परिणामस्वरूप महिलाओं में नशा की प्रवृत्ति कम पायी जाती है।

सामाजिक उत्सव के रूप में नशा का प्रयोग

बच्चे के जन्म

सुल्ताना गाँव में विशेषकर यहाँ के मूल निवासियों में किसी परिवार में बच्चे जन्म लेने पर अफीम, धनिया व गुड़ का प्रयोग किया जाता है। सामान्यतः अफीम का बहुत ही छोटा टुकड़ा पानी में घोलकर देते हैं। कुछ लोग अफीम के बहुत ही छोटे टुकड़े को सीधे अपने जीभ पर रखकर चुसते हैं।

झडूला उतारना

झडूला उतारना एक प्रकार का सामाजिक उत्सव है जिसका अर्थ है, जन्म के बाल उतारना। वैसे यह उत्सव इस गाँव की प्रमुख उत्सव नहीं है। यह उत्सव सुल्ताना गाँव में विशेषकर उस परिवार में होता है जो कि दैवीय मन्नत से बच्चे होते हैं या विवाह के कई वर्ष पश्चात बच्चे जन्म होते हैं या आर्थिक स्थिति सुदृढ हो, आदि। राजपूत समाज में बच्चे के जन्म के बाल उतारने के समय खाना व शराब की व्यवस्था करते हैं। यह कार्यक्रम वैसे कम ही होते हैं, क्योंकि यह खर्चीला होता है। कुछ लोग सादा कार्यक्रम कर सरल ढंग से बिना खाना व बाहरी रिश्तेदार को बिना बुलाए कर लेते हैं। इसमें पूजा व मुंडन के बाद विशेश खाना व पार्टी आयोजित किए जाते हैं। पार्टी में अंग्रेजी शराब, दाल, बाटी, आदि होते हैं। शराब की व्यवस्था पहले से कई तरह के व कार्टून भर व्यवस्था कर रखते हैं। इसके अलावा, स्वागत के लिए ट्रे में बीरी, सिगरेट, लौंग व इलायची रखे जाते हैं।

मँगनी

अब गाँवों में विवाह पूर्व मॅगनी की परंपरा प्रारंभ हो गया है। सुल्ताना गाँव इससे अछूता नहीं है। अब इस गाँव में मँगनी की परंपरा प्रारंभ हो गया है। विवाह पूर्व का यह कार्यक्रम खर्चीला होता है, जो दिन में रखा जाता है। यह कार्यक्रम विवाह से छोटा होता है, लेकिन इसमें लोगों की संख्या अधिक होती है। इसमें वर व वधू पक्ष के रिश्तेदार के अलावा पड़ोसी व मित्र भी आते हैं जिसमें खाना के अलावा अंग्रेजी शराब का विशेष प्रबंध किया जाता है।

विवाह

सुल्ताना गाँव में विवाह बड़ा कार्यक्रम माना जाता है। विवाह कार्यक्रम खर्चीला होता है व इसका आयोजन कई दिन पूर्व किया जाता है। यह कार्यक्रम कई दिन का होता है, कम–से–कम दो से तीन दिन का। विवाह के मुख्य कार्यक्रम में लोगों की संख्या पाँच सौ से एक हजार व कभी–कभी इससे भी अधिक हो सकता है। इसमें दोनों पक्ष (वर व वधू) के रिश्तेदार के साथ–साथ पड़ोसी व मित्र आते हैं जिसमें कई समय के खाना के साथ–साथ अंग्रेजी शराब (विशेष कर राजपूत जाति में) का विशेष प्रबंध किया जाता है। शराब की पार्टी विवाह से एक दिन पूर्व से लेकर विवाह के दिन (इस दिन कम से कम दो समय) व विवाह के अगले दिन तक होता है। महिला के लिए, सामान्य लोग व युवाओं के लिए अलग–अलग बैठक की शराब की व्यवस्था होती है। इस कार्यक्रम में कई प्रकार के शराब व मनपसंद शराब पीने की छूट रहती है। इसकी व्यवस्था पहले से कई कर्टन (कम से कम बीस–तीस कार्टून) की जाती है। सुल्ताना गाँव का एक गरीब व्यक्ति भी शराब के खर्च के मद में कम से कम पचास हजार रूपये खर्च करता है, भले ही उसे कर्ज ही क्यों न लेना पड़े। इस गाँव के कुछ समृद्ध लोग खाना के बजट से अधिक शराब पर खर्च करते हैं।

मरने के उपरांत कार्यक्रम

सुल्ताना गाँव में लगभग दो से तीन व्यक्ति प्रति वर्ष मरते हैं। इस गाँव में अधिकांशतः परिवार में मरने पर उसके अगले दिन से घर पर बैठकी प्रारंभ हो जाती है, जिसमें कुछ लोग बैठकी स्थल पर मरने वाले का फोटो लगाकर रखते हैं। स्थानीय लोग, रिश्तेदार व मित्र यहाँ पर बैठते हैं। इसके उपरांत मरने वाले के बारे में मरने के कारणों पर बातचीत व शोक करते हैं। इसके लिए लगभग एकाध घंटे तक लोग बैठते हैं। एक ट्रे में पहले से ही बीड़ी, सिगरेट, आदि रखे रहते हैं व आगंतुक इसी ट्रे में से बीड़ी, सिगरेट, आदि निकालकर पीते हैं।

शोक उतारना

शोक उतारने से तात्पर्य मरने वाले की परिवार में अशुद्धि

के उपरांत शोक से निकलने पर छोटी पार्टी आयोजन से है। इस कार्यक्रम में शोकाकुल परिवार द्वारा छोटी–मोटी पार्टी दी जाती है। सुल्ताना गाँव में सभी लोग इस परंपरा को नहीं निभाते हैं। लेकिन, कुछ परिवारों में यह परंपरा में होने से शोक उतारने के लिए छोटी पार्टी अवश्य करते हैं। इसमें स्थानीय लोग, रिश्तेदार व मित्र इसमें आकर खाना व शराब, अफीम, आदि अवश्य लेते हैं।

संक्षेप में, स्थानीय लोग विकट परिस्थिति व गरीबी में होने पर भी परंपरा, प्रथा, सामाजिक उत्सव आदि के नाम पर नशे का प्रयोग अनिवार्य रूप से करते हैं। इसके लिए ये लोग इस प्रकार की नशा सामग्री जहाँ से व जिस मूल्य में मिले, प्रतिष्ठा बचाने के लिए नशा क्रय व प्रयोग के लिए प्रोत्साहित करते हैं।

नशा उपचार के रूप में

सुल्ताना गाँव में मनुष्यों, पशुओं एवं शिशुओं के उपचार के रूप में अफीम का प्रयोग किया जाता है। स्थानीय ग्रामवासियों का मानना है कि अफीम की दवाई के रूप में प्रयोग करने पर सुस्ती (निष्क्रियता) घटती है, जोश आ जाता है व अच्छी नींद आती है। स्थानीय ग्रामीण का मानना है कि एक बीमार बच्चा या जानवर जितना ज्यादा सोयेंगे व आराम करेंगे, वे इतने अधिक जल्दी ठीक होते हैं। गाय, भेड़, बकरी, आदि इनके मुख्य पालतू जानवर हैं व समस्या होने पर सर्वप्रथम उपचार अफीम को पानी में घोलकर पिलाते हैं। दूसरे शब्दों में, इस गाँव में अफीम का प्रयोग मनुष्यों, बच्चों एवं जानवरों की उपचार में भी किया जाता है। अंधविश्वास, अशिक्षा, आदि स्थानीय ग्रामीणों में आज भी व्याप्त है। नशे में कैफिन की मात्रा होने से मस्तिष्क को अधिक सक्रिय व सुस्ती दूर करने में सहायक होता है। कुछ नशे नींद दिलाने में सहायक हैं। अतः इन कारणों से स्थानीय ग्रामीणों में उपचार का माध्यम नशा प्रयोग है। राजीव व इनके सहयोगियों (2017) ने अपने अध्ययन के आधार पर पाया कि व्यक्ति की शिक्षा तंबाकू अपनाने की प्रवृत्ति को सार्थक रूप से प्रभावित नहीं करता है। इसके बावजूद उनके इस अध्ययन में अधिकांशतः अशिक्षित व्यक्ति तंबाकू का सेवन (63.34 प्रतिशत व्यक्ति) करते पाए गाए। संक्षेप में, ग्रामीण समाज का अपना परंपरागत चिकित्सा पद्धति है। आधुनिक चिकित्सा तो अब आया है व अभी भी चिकित्सा पद्धति व दवाई की सुविधा सभी गाँवों में नहीं आया है। परिणामस्वरूप उपचार के रूप में अफीम का प्रयोग आज भी यहाँ विद्यमान है।

निष्कर्ष

सुल्ताना ग्राम के निवासियों द्वारा शराब, बीड़ी, सिगरेट, तम्बाकू, अफीम, डोडापस्ता, गाँजा, आदि का प्रयोग किया जाता है। सरकारी नीति का ढीलापन, पापकर के रूप में सरकारी आय का साधन, लाइसेंस देकर शराब की दुकान गाँव–गाँव में खुलवाना, सरकार के माध्यम से ठोस व मजबूत नीति के अभाव, आदि कारणों से इस गाँव में नशा प्रचलन बढा है। शराब, तंबाकू, सिगरेट, पान मशाला व अफीम का प्रयोग पुरूष अधिक करते हैं जबकि कम ही महिलायें बीड़ी व पान मसाला लेती हैं। नशे सामग्री का स्थानीय स्तर पर सर्वसुलभता से दुकान में मिलने पर इसे प्रयोग में लेने के लिए बाध्य करता है। सुल्ताना गाँव में व इसके आसपास में लाइसेंसयुक्त दो शराब की दुकान है जिसमें बियर, रम, ह्विस्की, वाईन बोतल, हाफ व क्वार्टर आदि आसानी से मिल जाते हैं। इसी प्रकार, देशी शराब की दुकान इस गाँव के निकट पी.टी.एम. चौराहा में व तंबाकू, बीड़ी, सिगरेट, पान मशाला, आदि इस गाँव में मिल जाते हैं। लेकिन, ये लोग डोडापस्ता, गाँजा व अफीम कहीं अन्य स्थान से खरीद कर लाते हैं। परिणामस्वरूप, इनके उपलब्ध होने से यहाँ पर तंबाकू, बीड़ी, सिगरेट, पान मशाला, गाँजा, अफीम, शराब (देशी व अंग्रेजी दोनों) का प्रयोग बढा है। स्थानीय लोग विकट परिस्थिति व गरीबी में होने पर भी परंपरा, प्रथा, सामाजिक उत्सव आदि के नाम पर नशे का प्रयोग अनिवार्य रूप से करते हैं। सामाजिक उस्तव (जैसे कि–बच्चे के जन्म के उपरांत, बच्चे के जन्म के शुद्धि के उपरांत कार्यक्रम, बच्चे के जन्म के झाडूला उतारना, मँगनी, विवाह, मरने के बारह दिन के कार्यक्रम व मरने के उपरांत शोक उतारना) के अवसर पर भी स्थानीय ग्रामीण शराब, बीड़ी, सिगरेट व अफीम का प्रयोग करते हैं। इसके लिए ये लोग इस प्रकार की नशा सामग्री जहाँ से व जिस मूल्य में मिले, प्रतिष्ठा बचाने के लिए नशा क्रय व प्रयोग के लिए प्रोत्साहित करते हैं। ग्रामीण समाज का अपना परंपरागत चिकित्सा पद्धति रहा है, जिसे स्थानीय ग्रामीण स्वयं, पशु व बच्चे के उपचार में अफीम का प्रयोग करते हैं।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. *आनंद, अनुराग (2018) सिर्फ मुस्लिम नामों से नहीं अटकी इन गांवों के हिंदू युवाओं की शादियाँ, बेरोजगारी शिक्षा और गरीबी है इसकी मुख्य वजह, दैनिक भास्कर (उदयपुर), 15.08.2018 (अतिरिक्त पृष्ठ सं.–9)।*

2. ओब्रयान, डब्ल्यू (2002). एडीटीव–फ्री सिगारेट्स मे पेक ए मोर टोक्सिक टोबैको पंच. हेल्थ बिहेवियर न्यूज सर्विस, 03 दिसंबर 2002।

3. कोराव, एम. ए. (2000). बिल्डिंग द इविडेंस बेस फोर ग्लोबल टोबेकों कंट्रोल. बुलेटिन ऑफ द वर्ल्ड हेल्थ आर्गेनाइजेशन, 78 (7), 884–890।

4. गजलक्ष्मी, वी. (2003). स्मोकिंग एंड मोर्टेलिटी फ्रॉम ट्यूबरकूलोसिस एंड अदर डिजीजेज इन इंडिया : रेट्रोसपेक्टीवी स्टडी ऑफ 43000 एडल्ट मेल डेथ्स एंड 35000 कंट्रोल्स. लॉनसेट, 36 (2), 507–515.

5. झा, ए. पी., पुरकैत, पी. एवं सुथार, पी. सी. (2014). भारत–पाकिस्तान सीमांत क्षेत्र में गाँव ''सुल्ताना'' का अध्ययन. अप्रकाशित लघुकालीन दौरा सर्वेक्षण प्रतिवेदन. कोलकाता : भारतीय मानवविज्ञान सर्वेक्षण।

6. नायर, यू., बर्स्च, एच. एवं नायर, जे. (2004).एलर्ट फोर एन इपिडेमिक ऑफ ओरल ड्यू टू यूज ऑफ द बेटल क्वीड सबस्टीच्यूट्स गुटखा एंड पान मशाला : ए रिब्यू ऑफ एजेंट्स एण्ड काउजेटिव मेकेनिज्म. मूटाजेनेसिस, 19, 251–262।

7. डब्ल्यू.एच.ओ. (2011). डब्ल्यू.एच.ओ. रिपोर्ट ऑन दी ग्लोबल टोबेको ग्लोबल इपीडेमिक, 2011 : वार्निंग एबाउट दी डेंजर्स ऑफ टोबेको एक्जेक्यूटिव समरी. जेनेवा : वर्ल्ड हेल्थ आर्गिनाइजेशन।

8. पिंडनबर्ज, जे.जे. (1968). फ्रिक्विंसी ऑफ ओरल कारसिनोमा, ल्यूकोकेरोटोसिस, ल्यूकोडर्मा, सबम्यूकस फाइब्रोसिस एंड लिचेन प्लेनस इन 10000 इंडियन विलेजर्स. ब्रिटिश जर्नल ऑफ केंसर, 22, 646–654।

9. पेल्टजर, के. (2003). स्मोकलेस टोबेको एंड सिगारेट यूज एमंग ब्लेक सेकेण्डरी स्कूल स्टूडेंट्स इन साउथ अफ्रीका. सबस्टेंस यूज एंड मिसयूज, 38 (7), 1003–1016

10. भारत की जनगणना (2011). डिस्ट्रिक्ट सेंसस हेंडबूक–जैसलमेर. दिल्ली : भारत सरकार।

11. यूनानटेड स्टेंट्स सेंटर्स फोन डिजीज कंट्रोल (1999). बीरी यूज एमंग अर्बन यूथ : मेसाचूसेट्स. मोर्बिडिटी एंड मोर्टेलिटी वीकली रिपोर्ट, 48 (36), 796–799।

12. राजीव, रूपालिका, सरस्वथी, के. एन. और सचदेवा, एम. पी. (2017). टोबैको यूजेज एंड इट्स इफेक्ट ऑन बोडी मास इंडेक्स (बी.एम.आई.) एमंग भील ट्राइबल पोपुलेशन ऑफ इंडिया. द एशियनमेन, 11 (1), 66–68।

13. वर्ल्ड हेल्थ आर्गेनाइजेशन (2002). वर्ल्ड हेल्थ ऑर्गेनाइजेशन टोबेको फ्री इनीसिएटिव, टोबैको एंड यूथ इन द साउथ इस्ट एशियन रिजन. इंडियन जर्नल ऑफ केंसर, 39, 1–33।

14. शिहादेह, ए. एवं इसिंगबर्ज, टी. (2005). टोबेको स्मोकिंग यूजिंग ए वाटरपाइप : प्रोडक्ट, प्रिविलेंस, केमिस्ट्री/टोक्सिकोलोजी, फॉर्मेकोलोजिकल इफेक्ट्स एण्ड हेल्थ हजार्ड्स. जेनेवा : वर्ल्ड हेल्थ ऑर्गेनाइजेशन स्टडी ग्रूप ऑन टोबेको प्रोडक्ट रेगोल्यूशन (टापरेज).

15. श्रीनाथ रेड्डी, के., गुप्ता, पी.सी. (2004). रिपोर्ट ऑन टोबेको कंट्रोल इन इंडिया. नई दिल्लीः स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण मंत्रालय, भारत सरकार।

बौद्ध संस्कृत साहित्य की अमूल्य निधि 'महावस्तु' : ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक अध्ययन

डॉ. ममता यादव
असिस्टेन्ट प्रोफेसर, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर

www.shodhshree.com

शोध सारांश

महावस्तु बौद्ध संस्कृत साहित्य का महत्वपूर्ण ग्रंथ है जिसमें बुद्ध के पूर्वजन्मों से संबंध वृतांत एवं बोधिसत्वों की चर्यायों का वर्णन है, इसमें वर्ण–व्यवस्था, गृहस्थ के कर्त्तव्य, भगवद्गीता से साम्य रखता हुआ कर्मसिद्धांत, समाज के रीति–रिवाज व प्रथाएं साथ ही ज्ञान के विविध पक्ष, धर्म व संस्कृति की महत्वपूर्ण जानकारियां निहित है, जो वर्तमान में प्रासंगिक है।

संकेताक्षर *: चार चर्या, प्रकृतिचर्या, प्रणिधानचर्या, अनुलोमचर्या, अनिवर्तनचर्या, चीवर, क्रीत, औपपादुक, चतुर्वर्ण, गणिका–व्यवस्था, वसंतसेना, शिक्षा।*

महावस्तु यथा इसके नाम से ही सुस्पष्ट है, यह महनीय वस्तु, महत्ती कथा, जो बौद्ध विनय एवं उपसम्पदादि से संबद्ध है, यह अवदान के रूप में भी प्रख्यात है क्योंकि इसमें भगवान्बुद्ध के पूर्वजन्मों से संबंद्ध अवदान (चरित प्रधान साहित्य) निहित हैं। महासांघिक लोकोत्तरवादियों के अनुसार यह विनयपिटक सदृश है एवं हीनयान के प्राचीन ग्रंथों में इसका उल्लेख होता है, इसे हीनयान वह महायान की माध्यमिक शृंखला कहा जा सकता है क्योंकि इसमें बुद्ध एवं बोधिसत्वों का वर्णन है। महावस्तु में बुद्ध जीवन एवं तात्कालिक परिदृश्यों को तीन भागों में विभक्त किया जा सकता है – प्रथम भाग में बुद्ध दीपंकर आदि अनेक विगत बुद्धों के काल में बोधिसत्व की विभिन्न चर्याओं का विवेचन है।

द्वितीय भाग में बोधिसत्व के जन्म से आरंभ होकर उनकी बुद्धत्व प्राप्ति तक के समस्त वृतांत निहित हैं। तृतीय भाग में विनयपिटक के महावग्ग के समान संघ के प्रारंभिक उद्भव व विकास का उल्लेख है।

इस ग्रंथ के आरंभ में बोधिसत्व की चार चर्यायों – प्रकृतिचर्या, प्रणिधानचर्या, अनुलोमचर्या व अनिवर्तनचर्या का उल्लेख हुआ है। तत्पश्चात् चार उपसम्पदाऐं भी उल्लिखित हैं। यह ग्रंथ विज्ञानमय धर्म का प्रतीक है, लोककल्याण में सक्षम है क्योंकि यह सुगत द्वारा जीव जगत के मंगल निमित्त उपदिष्ट है, जो भी इसे सुनेगा निर्वाण के अमृतपद को प्राप्त करेगा।

महासांघिक लोकात्तरवादियों के समान महावस्तु में भी बुद्ध के लोकोत्तर रूप की विवेचना की गई है। इसमें यह उक्त है कि बोधिसत्व (बुद्ध) का जन्म योनिज (माता–पिता से) न होकर औपपादुक है। औपपादुक वे सत्व हैं जिनकी सत्व (शुक्र शोणातादि उपादानों के अभाव में भी) उत्पत्ति होती है। जो अविकल इन्द्रियों वाले होते हैं। इस ग्रंथ में तथागत से सम्बद्ध उनका शरीर, आहार–व्यवहार व उनका चीवरादि धारण सभी अलौकिक ही वर्णित है। इसमें नायक के रूप में वर्णित बुद्ध एवं बोधिसत्व पूर्ण जागृत हैं।

महावस्तु में बुद्ध के वे अमृत उपदेश भरे पड़े हैं जो यदि एक तरफ मानव को उसमें उदात्त भावों के विकास द्वारा सुखद शान्ति प्रदान करते हैं, निर्वाण के प्रति उन्मुख करते हैं तो दूसरी ओर इस जगत् में रहने वाले गृहस्थी के कर्त्तव्य–मार्ग को प्रशस्त करने वाले उपदेश भी देते हैं। अन्य भारतीय साहित्यिक ग्रंथों के समान महावस्तु भी वर्तमान समय व परिस्थितियों में समस्त मानव जाति को कर्तव्य पथ का मार्ग प्रशस्त कर प्रासंगिकता सिद्ध करती है।

एकांतवासी भिक्षु मन में हिंसा भाव न रखे तथा उसे सभी संसर्गों से अलग खड़ग विषाण के समान विचरण करना चाहिऐ, कारण यह है कि संसर्ग से स्नेह व स्नेह से दुःख उत्पन्न होता है, अतः वह एकांत विहार करे। इसी प्रकार के भाव पालि ग्रंथ सुत्तनिपात के सूत्रों में भी है।

बुद्ध एवं बोधिसत्वों के प्रति श्रद्धा–भाव मनुष्य के लिए श्रेयस्कर है। इस ग्रंथ में तो श्रद्धा की अर्चना एक देवी के रूप में करने का भी निर्देश है, साथ ही प्राणी कर्मानुसार ही फल प्राप्त करते हैं। पुण्यकर्मी को स्वर्ग एवं अपुण्यकर्मी को नरक नियत है, इस प्रकार का वर्णन इसमें निहित है। जो भगवतगीता के कर्मसिद्धांत की पुष्टि करता है जिसमें कर्मों से ही सिद्धि प्राप्ति की बात कही गई है।

महावस्तु में जातक एवं अन्य कथाऐं प्रचुर मात्रा में उपलब्ध हैं। इसके जातकों में पूर्ववर्ती साहित्य में उपलब्ध बुद्ध के विगत रूपों का पुनः दर्शन होता है, जब वह कभी सार्वभौमिक शासक, कभी वणिक पुत्र, ब्राहाण अथवा नागराज, कभी पशुयोनि, गज, व्याघ्र आदि रूपों में, अवतरित होते हैं। श्यामा जातक इसका उदाहरण है जिसमें उस ब्राह्मण पुत्र की करुण–कथा वर्णित है जो काशिराज पेलियक्ष के बाण से विद्ध हो मृत्यु–मुख में पहुँचा दिया जाता है। यह पालि के प्रचलित सामा जातक का ही रूपांतर है। इसी प्रकार किन्नरी जातक, कुस जातक, नलिनी जातक है जिनमें पालि गाथाओं से कुछ अंशों में सादृश्य दृष्टिगत होता है।

अनेकों ऐसे दृष्टांत एवं अवदान इसमें प्राप्य हैं जो पौराणिक आख्यानों का स्मरण दिलाते हैं जैसे बोधिसत्व महाराज अर्क का वृतांत जो तत्कालीन बुद्ध को सात प्रकार के बहुमूल्य रत्नों से निर्मित ८०००० मंदिर कंदरा दान करते हैं। अन्य अवसर पर वह अपने पुत्र एवं पत्नी का मात्र एक बुद्धिपूर्ण सिद्धांत की शिक्षा के निमित्त समर्पण करते हुए दिखते हैं।

महाभारत व मारकण्डेय पुराण की अनेक बातों से महावस्तु की कथाओं का साम्य है जहाँ एक ऋषिसुत्त राजधर्म व यौगिक सिद्धान्तों का वर्णन करते हुए दृष्टिगत होते हैं।

महावस्तु एक सामाजिक रचना है जिसमें तत्कालीन समाज का पूर्णरूपेण चित्रण हुआ है। इसमें विविध सामाजिक–सांस्कृतिक, धार्मिक पक्षों पर प्रकाश पड़ता है।

यथा

वर्ण व्यवस्था

यद्यपि महावस्तु में चर्तुवर्ण एवं चार आश्रमों का स्पष्ट उल्लेख नहीं है तथापि उस समय समाज में ब्राह्मण, श्रमण, क्षत्रिय, श्रेष्ठी, शिल्पी, चांडाल, पुक्कस आदि वर्ण उल्लेख्य हैं। ब्राह्मण व श्रमण का स्थान उच्च था, द्वितीय स्थान शासक वर्ग का था, वर्ण व्यवस्था में जन्म अथवा कुल पर नहीं बल्कि व्यक्ति के गुणों पर बल दिया जाता था जो वैदिक वर्ण–व्यवस्था से साम्य रखता है।

प्रथाएं

प्राचीन भारतीय साहित्य में विद्यमान कुछ प्रथाऐं महावस्तु में भी दृष्टिगत होती हैं। स्मृतियों में दास प्रथा का उल्लेख है जिसमें दासों के जन्मना, क्रीत, प्रसादीकृत एवं विजित अनेक वर्ग प्राप्त होते हैं। राजा व धनिक परिवारों में अनेक दास–दासियाँ रहा करती थीं जिनके प्रति व्यवहार मानुषिक नहीं था। कई ऐसे स्थल भी हैं जहाँ दासों से जबरन् कार्य लिये जाने एवं बांध कर उन्हें दण्डित किये जाने का उल्लेख भी मिलता है। किंतु कहीं–कहीं दासों द्वारा राजाओं के प्रति ज्ञानपूर्ण कथाओं का विवरण भी प्राप्त होता है जो आश्चर्यवर्धक है।

शुद्धोधन (राजा) का महल दासियों (चेटियों) एवं वेश्याओं (विलासिकाओं) से भरा हुआ था। संस्कृत साहित्य में भी उल्लिखित है कि दासियाँ प्रायः धनी परिवारों में सेवा करती थीं महाकाश्यप एवं सारिपुत्र के यहाँ अनेक दास–दासियाँ रहते थे, अवन्ती के धनी एवं पूज्य ब्राह्मण परिवारों में, मथुरा व वाराणसी में दासों द्वारा सेवा कार्य का उल्लेख है।

राजगृह महाराज बिम्बिसार के यहाँ बुद्ध–गमन पर उनके प्रशंसक ब्राह्मण पुरोहितों एवं शिक्षकों को अन्य दान वस्तुओं के साथ सौ दासियों के दान का भी उल्लेख है, इस प्रकार महावस्तु में दास प्रथा का वर्णन प्राप्त होता है।

गणिका प्रथा/वेश्या प्रथा

प्राचीन भारतीय समाज में परिदृश्यमान वेश्या या गणिका–व्यवस्था हमें महावस्तु में भी दिखाई देती है। कौटिल्य के अनुसार यह प्रथा शासनानुमोदित है, यही बात शूद्रक के मृच्छकटिकम् से समर्थित होती है। राजगणिकाओं को उनके विशिष्ट गुणों के कारण सामाजिक महत्व प्राप्त था। महावस्तु में वर्णन मिलता है कि वैशाली की प्रख्यात गणिका आम्रपाली वहाँ बुद्ध गमन के अवसर पर लिच्छिवियों के साथ उनका स्वागत

करती हुई दृष्टिगत होती है। वह बुद्ध को भोजन के लिए अपने यहाँ आमंत्रित करती है। साकेत राज सुजात के यहाँ जेन्ती नामक वेश्या उनकी रखेली रूप में वर्णित है जो बाद में अपने पुत्र जेन्त के लिए राज्य उत्तराधिकार का वर प्राप्त करती है। श्यामा जातक की श्यामा वाराणसी की एक सम्पन्न वेश्या थी, जिसके यहाँ अनेक दास–दासियाँ थी। वह इसमें तक्षशिला के अश्व व्यापारी अग्रसेन की प्रेमिका के रूप में वर्णित है जिसे बाद में मृच्छकटिकम् की वसंतसेना के समान राज्यानुमोदन प्राप्त होता है। इसी प्रकार बनारस की सर्वोत्तम सुंदरी व ऐश्वर्य शालिनी दो गणिकाऐं कासिका एवं उपार्द्धकाशिका इस प्रसंग में उल्लेखनीय है। महावस्तु में वर्णित ये स्त्रियाँ जो समाज में आर्या तथा आर्य दुहिता पद से सम्बोधित की जाती थी, इनकी सामाजिक प्रतिष्ठा की द्योतक है।

विवाह प्रथा

भारतीय समाज में विवाह सदैव से ही एक धार्मिक–विशिष्ट संस्कार के रूप में मान्य रहा है। महावस्तु व पालिग्रंथों में कहीं–कहीं औरस व सगोत्र विवाह के दृष्टांत भी मिलते हैं। शाक्य राजकुमारों ने बिना किसी भय के अपने गोत्रिय संबंधी कन्याओं से वैवाहिक संबंध स्थापित किये थे, संभवतः इन्होंने रक्त–दोष परिहार को ध्यान में रखकर अन्य कुलों से संबंध नहीं बनाये। महावस्तु में अन्य विवाह विधियों का भी उल्लेख है। वाराणसी महाराज के प्रधान धर्माधिकारी द्वारा राजकुमारी नलिनी का एक श्रृंग ऋषि के साथ धर्मशास्त्रानुकूल विवाह संबंध स्थापित किया गया जिसमें साक्षीस्वरूप अग्निदेव भी आमंत्रित होते हैं। इसी प्रकार दो राजवंशों के मध्य राजनैतिक संधियों का वर्णन वैवाहिक संबंध के आधार पर दृष्टव्य है, इस प्रकार महावस्तु में भी अनुलोम व प्रतिलोम दोनों तरह के विवाह व अन्य मान्य विवाहों का उल्लेख प्राप्य है।

खान–पान, वेशभूषा

महावस्तु के अध्ययन से ज्ञात होता है कि तत्कालीन समाज में जौ, गैहँ के आटे, चावलादि से अन्न भोजन एवं शरीर ढकने के लिए वस्त्र के रूप में कम्बल व लोई धारण करते थे। जब व्यक्ति कार्यवश घर से बाहर जाते थे तो पाथेय निमित्त चावल, रोटी, चटनी, गोस्त, मछली आदि से युक्त भोजन पिटारी में ले जाते थे, ताड़ी मदिरा आदि पेय पदार्थ थे व घी, शहद, फल, मिष्ठान्न आदि का भी भोज्य पदार्थ के रूप में प्रयोग किया जाता था। काशी सिल्क का उल्लेख अनेक प्रसंगों में हुआ है। धनी परिवारों में प्रायः सिल्क का प्रयोग किया जाता था एवं मोती, हीरे व स्वर्ण निर्मित आभूषण प्रयुक्त किये जाते थे।

शिक्षा व्यवस्था

महावस्तु में अनेक स्थलों पर उल्लेख मिलता है कि 7–8 वर्ष की अवस्था के बाद विशेषज्ञ एवं कुशल शिक्षकों द्वारा राजकुमार व अन्य बालकों को पढ़ना, लिखना, गणना, संख्या, मुद्राधारण की शिक्षा दी जाती थी। वे अश्व, गज, रथ, धनुष–बाण, खडगादि संचालन का प्रयोग तथा राजनीति की शिक्षा प्राप्त करते थे। राजकुमार व मंत्रिपुत्रों को वेद, वेदांग, नानाशास्त्र, कला व विज्ञान की शिक्षा भी दी जाती थी। बोधिसत्वों द्वारा विशिष्ट विज्ञान व कलाऐं सत्य व लोक कल्याणार्थ उपदिष्ट है। विविध मंत्र व औषधियाँ उनके द्वारा जगमंगल हेतु अन्वेषित की गई हैं। वनस्पति विज्ञान के विषय में प्राचीन भारतीयों को गहन ज्ञान था जिनमें कई वनस्पतियों का अभिज्ञान या पहचान अभी तक संभव नहीं है जैसे – अक्षोद, आम्रातक, करीर, कर्णिकार, करेणु, कुर्वक, कुव्यक, जम्बीर, जीवकलता, तमाल, ताल, मल्लिका, मुचिलिन्द, वकुल, सहकार, सार आदि। इस तरह महावस्तु में औषधि विज्ञान का भी वर्णन मिलता है।

सारांशतः महावस्तु में हमें ज्ञान के सभी पक्षों समाज, संस्कृति, धर्म, विज्ञान आदि की महत्वपूर्ण जानकारियाँ उपलब्ध होती हैं। एक ओर यह मानव को उच्च व नैतिक भावों के विकास द्वारा सुखद शान्ति प्रदान करता है तो दूसरी ओर गृहस्थ व्यक्ति के कर्तव्य पथ को प्रदर्शित करता है। अतः यह यथार्थतः महावस्तु (महान वस्तु) है जिसमें निहित उपदेश वर्तमान समय में भी प्रासंगिक हैं।

सन्दर्भ ग्रंथ सूची

1. *नरीमन, जी.के., लिटरेरी हिस्ट्री ऑफ संस्कृत बुद्धिज्म, डी.बी. तारापोरावाला, बोम्बे, 1920, पृ. 14, 27*
2. *आर्यमंहासंधिकानां लोकोत्तरवादिनां...विनयपिटकस्य महावस्तु। – महावस्तु भाग 1, पृ. 3, राधागोविन्द वसाक संस्करण, कलकत्ता, पृ. 3*
3. *जोंस, जे.जे., महावस्तु, भाग 1, लुजाक एंड कंपनी संस्करण, लंदन, 1949, पृ. 112–151 (सेनार्ट, महावस्तु, फ्रेंच एडीशन, भाग 1, 1882, पृ. 142–193*
4. *विंडिस्च, अर्नेस्ट, बुद्धाज जीबर्ट, जर्मन प्रकाशन, 1908, पृ. 106, 124*
5. *जोंस, जे.जे., पूर्वोक्त, पृ.1–2*

6. वही
7. वही
8. वही (स्वाम, भिक्षुकाय, दशवर्गेणगणन, पंच वगण गणेन)
9. वही, भाग 3, पृ. 250
10. वही, भाग 1, पृ.182–183
11. वही, गाथा–2,, 6, पृ. 468–469
12. उरग वग्ग, खग्गविसाणसुत्त, गाथा 1, 2, एन.ए. जयाविक्रम, 1949
13. सेनार्ट, पूर्वोक्त, भाग 2, गोधा जातक गाथा, 1, 2, पृ. 92–93
14. महावस्तु, भाग 2, पृ.235–248
15. वेबर, अल्ब्रेट, हिस्ट्री ऑफ इण्डियन लिटरेचर, भाग 2, केगन पॉल ट्रेंच ट्रेबनर एंड कंपनी लिमिटेड, लंदन, 1914, पृ. 133–136, 147
16. त्रिशकुनीयं जातक, महावस्तु, भाग 1, पृ. 344–300
17. वही, भाग 1, पृ. 54
18. दत्त, आर.सी., महाभारत, प्रथम अध्याय, श्लोक 129, संजय प्रकाशन, वाराणसी, 2002
19. विद्यासागर, जिबनंदा, मार्केण्डय पुराण, भाग 1, अध्याय 27–35, सरस्वती प्रेस, कलकत्ता, 1897, पृ. 560
20. द्विवेदी, डॉ. रामायण प्रसाद, बौद्ध–संस्कृत काव्य–समीक्षा, बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी, 1976, पृ. 89
21. शास्त्रीशामा, आर., अर्थशास्त्र, 3/13, गवर्नमेण्ट शाखा प्रेस मैसूर, 1924 (शास्त्री, गजानन, मनुस्मृति, 8/415, चौखम्भा सुरभारती संस्करण, वाराणसी, 2012
22. जोंस, जे.जे., पूर्वोक्त, पृ. 18
23. वही, पृ. 95
24. महावस्तु, श्यामाजातक, पृ. 166
25. शास्त्रीशामा, आर., अर्थशास्त्र, गणिकाध्यक्ष, अध्याय 2, 27
26. महावस्तु, भाग 3
27. वही, भाग 2, पृ. 235–248 मृच्छकटिकम् (शूद्रक), अंक 10, मोतीलाल बनारसीदास, बनारस
28. महावस्तु, भाग 2, पूर्वोक्त
29. सेनार्ट, पूर्वोक्त, भाग 1, पृ.338–359
30. वही, भाग 3, पृ. 150–151
31. महावस्तु, भाग 3, पूर्वोक्त, पृ.67
32. द्विवेदी, डॉ. रामायण प्रसाद, पूर्वोक्त, पृ. 93
33. वही, पृ. 94–95

मरुस्थलीय कृषक सामाजिक संरचना एवं सामाजिक न्याय

डॉ. हरदयाल भाटी
जोधपुर

www.shodhshree.com

शोध सारांश

पश्चिमी राजस्थान के तीन मरुस्थलीय जोधपुर जैसलमैर, एवम् बाडमेर जिलों में से कार्यशील कृषक जनसंख्या के आधार पर तीन ग्रामीण समुदायों का चयन करके, उनकी कृषक सामाजिक संरचना का अध्ययन किया गया है, साथ ही इन सरंचनाओं को, सामाजिक न्याय के सन्दर्भ में आंका गया। इन तीनों समुदायों में राजपूत जाति प्रभुत्त्व जाति के रूप में हैं, इनके समकक्ष क्रमशः प्रत्येक ग्रामीण समुदाय में मेघवाल, मुसलमान, एवम् भील जनजाति के लोग है राजपूत जाति के समकक्ष इन तीनों के पास उपलब्ध संसाधनों से इनकी तुलना की गई है जिसके आधार पर पश्चिमी मरुस्थलीय राजस्थान में कृषक समाजिक संरचना दृष्टिगत होती है एंवम सामाजिक न्याय की स्थिति भी स्पष्ट होती है।

***संकेताक्षर** : मरुस्थलीय कृषक, सामाजिक संरचना, सामाजिक न्याय, समाजशास्त्री।*

समाजशास्त्रीय साहित्य में कृषक संरचना से सम्बन्धित वृहद कार्य देखते को मिलता है। जिन्हे करने वालो में से कुछ प्रमुख समाजशास्त्रियों या समाजवैज्ञानिकों के नाम इस प्रकार हैः– रॉबर्ट रेडफील्ड, टियॉडॉर शानिन, डेनियल थॉर्नर, ऑस्कर लेविस, जॉर्ज डॉल्टन, रोजर वुड्स, बेरिंगटनमूर, क्रोबर, फोस्टर, रेमण्ड–फर्थ, एफ. जी. बैली, कार्लमार्क्स, फ्रेडरिक एंजल्स, लेनिन, माओत्से तुंग, कोतस्की, हमजा अलवी, योगेशचन्द्र बघन, नटराजन, सुखवीर चौधरी, कैथरीन गफ, इरफान हबीब, ऐ.आर.देसाई, पी.सी.जोशी, आन्द्रे बैती, बृजराज चौहान, पुष्पेन्द्र सुराणा, डी. एन. धनागरे, अशोक रूद्र, टी.के. उम्मन, एम.एल. दांतवाला, योगेन्द्र सिंह, श्यामाचरण दूबें, मैरियट, डी.एन. मजूमदार, एम.एन. श्रीनिवास इत्यादि इन्होनें विभिन्न कालों एवं विभिन्न स्थानों पर भिन्न–भिन्न उपागमो (Approaches) या परिप्रेक्षों में कृषक सामाजिक संरचना का अध्ययन किया है।[1] यह अध्ययन कृषक संरचना से सम्बन्धित इन कार्यों को आधार मानते हुए राजस्थान के मरु भाग में कृषक संरचना का विशिष्ट परिस्थितियों में अध्ययन करता है। यहां मेरा उद्देश्य मरुस्थलीय कृषक संरचना के विभिन्न घटकों में उपस्थित सामाजिक न्याय की स्थिति को उजागर करना है। इस हेतु सर्वप्रथम अध्ययन क्षेत्र की मरुस्थलीय कृषक संरचना को जानना होगा एवं तत्पश्चात उसमें उपस्थित सामाजिक न्याय को जाना जा सकता है।

मरुस्थलीय सामाजिक कृषक संरचना

पश्चिमी राजस्थान में मरुस्थलीय[2] कृषक संरचना का अध्ययन करने हेतु तीन पूर्ण मरुस्थलीय जिलों यथाः– जोधपुर, जैसलमेर एवं बाड़मेर जिले से एक–एक ग्रामीण समुदाय का चयन कृषि व्यवसाय में कार्यरत इनकी कृषक जनसंख्या के आधार पर किया गया। ये ग्रामीण समुदाय क्रमशः लवारन, केलावा एवं पिण्डारण है। सन् 1991 की जनगणना के अनुसार इन ग्रामीण समुदायों की क्रमशः 91.95 प्रतिशत, 84.31 प्रतिशत एवं 97.30 प्रतिशत कार्यशील जनसंख्या कृषि एवं पशुपालन व्यवसाय में संलग्न थी। इन ग्रामीण समुदायों की कृषक संरचना के विश्लेषण हेतु मुख्यतः निम्न इकाइयों को

आधार बनाया गया है :–

- भूमि
- कृषि भूमि
- भूस्वामित्व
- सिंचित एवं असिंचित कृषि भूमि
- कृषक श्रेणियाँ
- खाते, खसरे एवं खातेदारों की संख्या
- कृषक जातियां एवं भूविभाजन
- कृषि भूमि एवं परिवारों की तुलना
- कृषक श्रेणियों का जातीय विभाजन।
- सिंचित एवं असिंचित कृषि भूमि का जातीय विभाजन।
- जातिनुसार खातों एवं खसरों का विभाजन।
- खातेदार कृषक श्रेणियों का जातीय विभाजन।

कृषक संरचना की इन बारह इकाइयों के अतिरिक्त इन ग्रामीण समुदायों में कृषक संरचना के अन्य पक्षों को समझने के लिए कृषि एवं अन्य सहयोगी व्यवसायों जैसेः पशुपालन, श्रम, सरकारी सेवा, व्यापार एवं ठेकेदारी व्यवसाय में संलग्न व्यक्तियों की स्थिति को आधार बनाया गया है। इन ग्रामीण समुदायों की सामाजिक संरचना को विश्लेषित करने के लिए निम्न पांच इकाइयों को आधार बनाया गया है :– ➢ जाति ➢ गोत्र ➢ परिवार ➢ धर्म एवं ➢ शिक्षा

उपर्युक्त इकाइयों के विश्लेषण के आधार पर पश्चिमी राजस्थान में निम्न मरुस्थलीय कृषक संरचना उभरती है:–

1. **कृषक**
   - ➢ बड़े कृषक
     - i. असिंचित कृषि भूमि के स्वामी
     - ii. सिंचित कृषि भूमि के स्वामी
   - ➢ मध्यम कृषक
   - ➢ निम्न कृषक
   - ➢ अत्यन्त निम्न कृषक
   - ➢ भूमिविहिन कृषक
2. **अकृषक**
   - ➢ असिंचित कृषि भूमि के स्वामी
   - ➢ सिंचित कृषि भूमि के स्वामी
3. **अस्थायी कृषक**

अध्ययन क्षेत्र में कृषक उन्हें कहा गया है जो स्वयं अपनी कृषि भूमि पर कृषि कार्य करते हैं। यह कृषक वर्ग पांच कृषक श्रेणियों में विभाजित है, जिन कृषकों के पास 50 बीघा से अधिक कृषि भूमि है वे बड़े कृषक है, जिनके पास 31 से 50 बीघा के मध्य कृषि भूमि है वे मध्यम कृषक, जिनके पास 11 से 30 बीघा के मध्य कृषि भूमि है वे निम्न कृषक, जिनके पास 1 से 10 बीघा के मध्य कृषि भूमि है वे अत्यन्त निम्न कृषक और जिनके पास कृषि भूमि का सर्वथा अभाव है वे भूमिविहीन कृषक है। अकृषक उन्हें कहा गया है, जो स्वयं कृषि भूमि पर कृषि कार्य नहीं करते हैं वरन् भूमिविहीनों या फसल के हिस्से के आधार पर कृषकों / बटाईदारों से कृषि कार्य करवाते हैं। यह वर्ग भी दो श्रेणियों में विभाजित है, यथा :– असिंचित एवं सिंचित कृषि भूमि के स्वामी। इनमें से प्रथम अकृषक श्रेणी के अधिकतर व्यक्ति नगरीय क्षेत्रों में निवास करते हैं एवं ये लोग अपनी कृषि भूमि को फसल के हिस्से के पर दे देते है। द्वितीय अकृषक श्रेणी के अकृषक कृषि उत्पादन कार्य फसल के 1/3 हिस्से के आधारपर कृषकों/बटाईदारों को दे देते हैं एवं स्वयं पर्यवेक्षक की भूमिका निभाते हैं एवं अन्य आवश्यकताओं की पूर्ति करते हैं। अस्थायी कृषक उन्हें कहा गया है जो नगरीय क्षेत्रों में निवास करते हैं, मगर वर्षा ऋतु में कृषि कार्य करने हेतु सपरिवार गांव आ जाते हैं एवं कृषि कार्य समाप्त करके पुनः नगरीय क्षेत्र में लौट जाते हैं।

मरुस्थलीय सामाजिक कृषक संरचना में सामाजिक न्याय की स्थिति

उपर्युक्त मरुस्थलीय कृषक संरचना में हमें सामाजिक न्याय की स्थिति को जानना है। तीनो ग्रामीण समुदायों में राजपूत जाति प्रभु जाति के रूप दृष्टिगत होती है, जो जनसंख्यात्मक राजनीतिक एवं आर्थिक दृष्टि से सम्पन्न जाति है। तीनों ग्रामीण समुदायों में प्रभु जाति के समकक्ष निम्न सामाजिक श्रेणियाँ उपस्थित है, यथाः लवारन में मेघवाल जाति, केलावा में मुसलमान धर्म एवं पिण्डारण में भील जनजाति उपस्थित है। मरुस्थलीय कृषक संरचना के निर्माण में इन चारों सामाजिक श्रेणियों राजपूत, मेघवाल, मुसलमान एवं भील जनजाति का महत्वपूर्ण योगदान है एवं शेष 14 जातियों अथवा सामाजिक श्रेणियों राजपुरोहित, पुरोहित, स्वामी, सन्त, महाजन, चारण, माली, नाई, दर्जी, लखारा, सुथार, रेबारी, ढोली एवं जोगी मरुस्थलीय कृषक संरचना के

निर्माण में सहयोगी के रूप में भूमिका निभा रहे हैं। अध्ययन क्षेत्र की उपर्युक्त संरचना में सामाजिक न्याय की स्थिति को निम्न चार आधारों पर जाना जा सकता है:–

- भूस्वामित्व आधार
- जातिगत आधार
- शैक्षणिक आधार
- आर्थिक आधार

1. भूस्वामित्व आधार

तीनों ग्रामीण समुदायों में सामाजिक श्रेणियों की पारिवारिक एवं भूस्वामित्व स्थिति निम्न प्रकार है:–

1	लवारन		
	सामाजिक श्रेणी	परिवार प्रतिशत	कृषि भूमि स्वामित्व प्रतिशत
	राजपूत	54.43%	71.96%
	मेघवाल	36.52%	21.62%
2	केलावा		
	राजपूत	30.45%	56.62%
	मुसलमान	49.26%	28.50%
3	पिण्डारण		
	राजपूत	39.44%	52.14%
	भील	23.94%	11.64%

इस विवेचन से स्पष्ट है कि प्रभु जाति के पास परिवार संख्या से कृषि भूमि औसतन 27 प्रतिशत अधिक है जबकि अन्य तीन सामाजिक श्रेणियों के पास परिवार संख्या से औसतन 17 प्रतिशत कृषि भूमि कम है। यहां तक की केलावा ग्रामीण समुदाय में मुसलमानों की परिवार संख्या प्रभु जाति से 19 प्रतिशत अधिक होने पर भी उनके पास 28 प्रतिशत कृषि भूमि प्रभुजाति के भूस्वामित्व से कम है।

मरुस्थलीय कृषक संरचना में कृषक 6 श्रेणियों में विभक्त है। बड़े कृषक परिवार श्रेणी में औसतन 72 प्रतिशत परिवार प्रभु जाति के हैं एवं शेष प्रतिनिधित्व मध्यम कृषक परिवार श्रेणी में है। निम्न, अत्यन्त निम्न एवं भूमिविहीन कृषक परिवार श्रेणी में प्रभु जाति के परिवारों का प्रतिनिधित्व नहीं है। वही अन्य तीन सामाजिक श्रेणियों के 87 प्रतिशत कृषक परिवारों का प्रतिनिधित्व निम्न, अत्यन्त निम्न एवं भूमिविहीन कृषक श्रेणी में है एवं शेष 13 प्रतिशत कृषक परिवारों का प्रतिनिधित्व मध्यम एवं बड़े कृषक परिवार श्रेणी में है पिण्डारण ग्रामीण समुदाय में तो भील जनजाति के 85 प्रतिशत कृषक परिवारों का प्रतिनिधित्व अत्यन्त निम्न कृषक परिवार श्रेणी में है। इन तीनों सामाजिक श्रेणियों की कृषि भूमि की जोत का आकार औसतन 12 बीघा प्रतिकृषक परिवार है वहीं प्रभु जाति के कृषक परिवार की कृषि भूमि की जोत का आकार औसतन 75 बीघा प्रति परिवार है।

अकृषक परिवार केवल मात्र लवारन ग्रामीण समुदाय में पाए गए, अन्य दो ग्रामीण समुदायों में नही पाए गए। अकृषक परिवारों की संख्या 11 है, जिनमें से 10 प्रभु जाति परिवार है एवं एक नाई जाति परिवार है। इसमें से 9 परिवार सिंचित कृषि भूमि पर स्वयं कोई कृषि कार्य नहीं करते वरन बटाईदारों से/फसल के 1/3 हिस्से के आधार पर करवाते है एवं दो परिवार–एक राजपूत व एक नाई परिवार स्वयं सिंचित कृषि का कार्य करते हैं। मेघवाल जाति के पास सिंचित कृषि भूमि का सर्वथा अभाव है। प्रभु जाति के समकक्ष उपस्थित मेघवाल जाति के पास सिंचित कृषि भूमि का न होना सामाजिक न्याय की तरफ सूचित नहीं करता है। शेष दोनो ग्रामीण समुदायों का भू–जल नमकयुक्त है, इसलिए वहां सिंचित कृषि भूमि का सर्वथा अभाव है।

3.24 प्रतिशत कृषक परिवार अस्थायी कृषक परिवार है। ये ग्रामीण समुदाय से बाहर रहते हैं एवं फसल ऋतु के समय गांव आते हैं तथा फसल लेकर पुनः शहरी क्षेत्र में चल जाते हैं। मरुस्थलीय कृषक संरचना में सामाजिक न्याय की स्थिति निम्न चार आधारों पर जाना जा सकता है:–

इस प्रकार स्पष्ट है कि अपनी परम्परागत एवं ऐतिहासिक

स्थिति के कारण प्रभु जाति भूस्वामित्व के रूप में एकाधिकार प्राप्त है एवं अन्य तीनों सामाजिक श्रेणियाँ अपनी परम्परागत स्थिति के कारण नाममात्र का भूस्वामित्व है। इस निम्न भूस्वामित्व के कारण आर्थिक शौषण का स्थायी आधार बन जाता है और इसमें सामाजिक न्याय बाधित होता है। इन तीनों सामाजिक श्रेणियों को परम्परागत रूप से भूस्वामित्व का अधिकार प्राप्त नहीं था, मगर अब इन्हें सामाजिक आर्थिक एवं राजनीतिक संरचना के परिवर्तित होने से यदि भूस्वामित्व प्राप्त हुआ तो उसकी जोत का आकार इतना कम है कि वह अपनी दैनिक आवश्यकताओं की पूर्ति मात्र कृषि भूमि पर निर्भर रह कर नहीं कर सकते। इस हेतु उन्हें अधिकतर श्रमिक के रूप में अन्य व्यवसाय करने पड़ते हैं, इस प्रकार भूस्वामित्व के रूप में सामाजिक न्याय दृष्टिगत नहीं होता है।

2. जातिगत आधार : अस्पृश्यता अधिनियम बने 50 वर्ष बीत चुके हैं, मगर मरुस्थलीय कृषक सामाजिक संरचना के अध्ययन क्षेत्र में जातिगत भेदभाव परम्परागत रूप से भिन्न रूप में वर्तमान परिस्थितियों के अनुरूप ढल कर दृष्टिगत होता है। आज भी मेघवाल एवं भील जनजाति के निवास स्थान गांव से अलग–अलग है, इन्हें मन्दिरों में प्रवेश नहीं करने दिया जाता, इनके लिए पीने के पानी के साधन अलग हैं। ये लोग आम सभा के साथ बैठ नहीं सकते, इनके लिए बैठने की व्यवस्था अलग होती है, ये लोग सम्बोधन के लिए राम–राम, जय बाबे री, जय पाबूजी एवं खमाघणी अन्नदाता का प्रयोग करते हैं न कि जयमातजी या किसी अन्य सम्बोधन को, प्रभु जाति के लोग स्वीकार नहीं करते हैं। यदि वह ऐसा करता है, तो उसे डराया जाता है और कहते है यदि तुम इस तरह सम्बोधन करोगे तो अजनबी व्यक्ति यह पता नहीं लगा पाएगा कि तुम कौन हो अर्थात राजपूत, मेघवाल, भील, नाई, जोगी इत्यादि। इसलिए वही सम्बोधन करो, जिससे अजनबी एवं जानकार व्यक्ति को सरलता से पता लग सके कि तुम कौन हो अर्थात तुम्हारी जाति क्या है तब उसी अनुरूप वह व्यवहार करेगा। उपर्युक्त तथ्य को निम्न उदाहरण स्पष्ट करता है – लवारन गांव की प्रभु जाति का चाण्डसिंह नामक वृद्ध व्यक्ति समीप के सोरड़िया गांव से होकर निकल रहा था, प्यास लगी तो अपनी जाति के किसी व्यक्ति के घर गया एवं वहां उसने सम्बोधन जय बाबे री द्वारा कर किया। अमुक व्यक्ति पानी का लोटा तो लाया मगर उसने लोटा हाथ में देने से मना कर दिया और आपस में झगड़ा हो गया। बाद में दो पड़ोसियों ने चाण्डसिंह को फटकार लगाई एवं कहा कि तुम्हारे गलत सम्बोधन के कारण यह झगड़ा हुआ। अतः मरुस्थलीय अध्ययन क्षेत्र में सम्बोधन से ही जातीय पहचान एवं जातिगत भेदभाव प्रारम्भ हो जाता है। तो अन्य क्षेत्रों में भी जातिगत भेदभाव चरम रूप में उपस्थित है। इस प्रकार मरुस्थलीय सामाजिक कृषक संरचना में परम्परागत सामाजिक न्याय तो अपने भिन्न रूप में उपस्थित है, मगर वर्तमान सामाजिक न्याय का उसमें सर्वथा अभाव है।

3. शैक्षणिक आधार : अध्ययन क्षेत्र की 18.55 प्रतिशत जनसंख्या शिक्षित है एवं शेष 81.45 प्रतिशत जनसंख्या अशिक्षित है। इस शिक्षित जनसंख्या को निम्न चार शैक्षणिक स्तरों में विभक्त किया गया हैः – 1. 5 वीं कक्षा से कम 2. 5 वीं से आठवीं तक 3. 9 वीं से बारहवी तक एवं 4. 12 वीं से अधिक। शिक्षित जनसंख्या का 93 प्रतिशत भाग कक्षा 1 से आठवीं के मध्य शिक्षित है। भील जनजाति एवं मुस्लिम शिक्षित जनसंख्या मात्र कक्षा 1 से 5 के मध्य शिक्षित एवं अन्य स्तरों में इनका प्रतिनिधित्व दृष्टिगत नहीं होता है। अन्य दो स्तरों में प्रभुजाति एवं मेघवाल जाति की 7 प्रतिशत शिक्षित जनसंख्या है, इसमें से 5 प्रतिशत प्रभु जाति की एवं 2 प्रतिशत मेघवाल जाति की जनसंख्या शिक्षित है। भील जनजाति की 75 प्रतिशत जनसंख्या अशिक्षित है एवं शेष 25 प्रतिशत जनसंख्या कक्षा 1 से 3 के मध्य तक ही शिक्षित है कक्षा 4 व 5 तक शिक्षित व्यक्तियों का इस जनजाति में अभाव है।

यद्यपि मरुस्थलीय कृषक सामाजिक संरचना के अध्ययन क्षेत्र में शैक्षणिक स्थिति चारों सामाजिक श्रेणियों की कमजोर दृष्टिगत होती है, मगर अवसरों की असमानता के कारण भील जनजाति एवं मुस्लिम जनसंख्या की शैक्षणिक स्थिति अत्यधिक कमजोर दृष्टिगत होती है, वहीं मेघवाल जाति की शैक्षणिक स्थिति प्रभु जाति की अपेक्षा कमजोर ही है। अतः यह कहा जा सकता है कि अध्ययन क्षेत्र की शैक्षणिक संरचना में सामाजिक न्याय उपस्थित नहीं है।

4. आर्थिक आधार : अध्ययन क्षेत्र की कृषक अर्थव्यवस्था को विश्लेषित करने के लिए निम्न छः व्यवसायों को आधार बनाया गया हैः– कृषि, श्रम, पशुपालन, सरकारी –सेवा, व्यापार एवं ठेकेदारी। अध्ययन क्षेत्र की कार्यशील जनसंख्या का 95.76 प्रतिशत भाग (कृषि 65.34 प्रतिशत एवं पशुपालन 30.42 प्रतिशत) कृषि एवं

पशुपालन व्यवसाय में संलग्न है, ये दोनों व्यवसाय प्रत्यक्ष – अप्रत्यक्ष रूप से परस्पर निर्भर है। शेष 4.24 प्रतिशत कार्यशील जनसंख्या अन्य पांच व्यवसायों में संलग्न है। अध्ययन क्षेत्र के केलावा ग्रामीण समुदाय में आंगनवाड़ी संख्या में कार्यरत मात्र एक स्त्री के अतिरिक्त शेष सभी स्त्रियां एकमात्र कृषि व्यवसाय में संलग्न है। कृषि व्यवसाय में संलग्न ये स्त्रियां कृषि व्यवसाय में कार्यरत व्यक्तियों की 67.36 प्रतिशत है और पुरूष 32. 64 प्रतिशत। कृषि व्यवसाय में स्त्रियों के प्रतिनिधित्व का अधिक होना स्वभाविक है, क्योंकि ये कार्यरत स्त्रियों कृषि के अतिरिक्त अन्य किसी व्यवसाय में संलग्न नहीं है, यद्यपि पशुपालन व्यवसाय में ये पुरूषों का सहयोग अवश्य करती है, जबकि पुरूष इस व्यवसाय के अतिरिक्त पांच अन्य व्यवसायों में विभक्त है। अतः व्यवसायिक दृष्टि से अध्ययन क्षेत्र के तीनों ग्रामीण समुदाय कृषि प्रधान है। प्रभु जाति के औसतन 65 प्रतिशत कार्यशील व्यक्ति कृषि व्यवसाय में 15 प्रतिशत पशुपालन में 5 प्रतिशत सरकारी सेवा एवं शेष 15 प्रतिशत कार्यशील व्यक्ति अन्य तीन व्यवसायों में संलग्न हैं। इसी प्रकार मेघवाल जाति के 60 प्रतिशत कार्यशील व्यक्ति कृषि व्यवसाय में, 2.40 प्रतिशत पशुपालन में, 1.80 प्रतिशत सरकारी सेवा में एवं शेष 30 प्रतिशत कार्यशील व्यक्ति अन्य दो व्यवसायों में संलग्न है। मुस्लिम कार्यशील जनसंख्या का 66.16 प्रतिशत भाग कृषि व्यवसाय में, 6.67 प्रतिशत भाग पशुपालन व्यवसाय में एवं शेष 27 प्रतिशत भाग अन्य तीन व्यवसायों (श्रम, ठेकेदारी एवं व्यापार) में संलग्न है। भील जनजाति की कार्यशील जनसंख्या का 65.16 प्रतिशत भाग कृषि व्यवसाय में एवं शेष 35 प्रतिशत कार्यशील व्यक्ति मात्र एक श्रम व्यवसाय में संलग्न है।[3]

इस प्रकार उपर्युक्त विश्लेषण से स्पष्ट है, कि कृषि व्यवसाय में चारों सामाजिक श्रेणियों का प्रतिनिधित्व औसतन समान है फिर भी कृषि भूमि की जोत का आकार बड़ा होने एवं परिवार संख्या की अधिकता के कारण प्रभु जाति का प्रतिनिधित्व अधिक है। पशुपालन व्यवसाय में प्रभु जाति एवं मुसलमान जनसंख्या का समान प्रतिनिधित्व है, मगर मेघवाल जाति का तीन गुना कम एवं भील जनजाति का पूर्णतया प्रतिनिधित्व नहीं है। सरकारी सेवा में प्रभु जाति एवं मेघवाल जाति का प्रतिनिधित्व है मगर मुस्लिम एवं भील कार्यशील जनसंख्या का पूर्णतया अभाव है।

अतः कहा जा सकता है, कि आर्थिक संरचना में सर्वाधिक भेदभाव भील जनजाति के साथ है, क्योंकि इसके पास कृषि जोत का आकार कम होने के कारण यह पशुपालन व्यवसाय नहीं कर सकती, शिक्षित न होने के कारण सरकारी सेवा में प्रतिनिधित्व नहीं कर पा रही है। इसी प्रकार मुसलमान शिक्षित न होने के कारण इनका सरकारी सेवा में पूर्णतया प्रतिनिधित्व नहीं है। इन तीनों सामाजिक श्रेणियों की औसतन 40 प्रतिशत कार्यशील जनसंख्या श्रम व्यवसाय (पत्थर की खानो एवं कलकारखाने इत्यादि) में संलग्न है, वहीं प्रभु जाति की मात्र 20 प्रतिशत से भी कम जनसंख्या श्रम व्यवसाय में संलग्न है अतः यह कहा जा सकता है कि कृषि प्रधान अर्थव्यवस्था में अवसरों की असमानता के कारण सामाजिक न्याय उपस्थित नहीं है एवं कृषि भूमि का स्वामित्व, शैक्षणिक स्थिति, व्यवसाय एवं ग्रामीण आर्थिक स्तरों का विसंगति पूर्ण होना सामाजिक न्याय को स्थापित करने में स्थायी संरचनात्मक बाधाओं के रूप में काम करता है।

सन्दर्भ ग्रंथ सूची

1. *भोवानी सैन, इवॉल्यूसन ऑफ एग्रेरियन रिलेसन इन इण्डिया, पीपल्स पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, 1962,*
2. *सुखवीर सिंह गहलोत, रूरल लाईफ इन राजस्थान, राजस्थानी ग्रन्थागार, जोधपुर 1986*
3. *एच.एस. सक्सेना, रूरल राजस्थान, क्लासिक पब्लिशिंग हाउस, जयपुर, 1988*
4. *ए.आर. देसाई, एग्रेरियन स्ट्रगल्स इन इण्डिया आफ्टर इन्डिपेन्डेन्स, ऑक्सफोर्ड युनिवर्सिटी प्रेस, दिल्ली 1986.*
5. *पुष्पेन्द्र सुराणा, सोशयलमूवमेन्टस् एण्ड सोशयलस्ट्रक्चर, मनोहर पब्लिकेशन्स, दिल्ली 1983.*
6. *के.जी. गुरूमूर्थी इण्डियन पिजेन्ट्री, बी.एन. पब्लिशिंग कॉर्पोरेशन, दिल्ली 1982.*
7. *एस.सी. दूबे, इण्डियन विलेज, रतलेज एण्ड केगन पॉल, लन्दन, 1975.*
8. *मैकिम मेरियट, विलेज इण्डिया, यूनिवर्सिटी प्रेस, चिकागो, 1967.*
9. *मदन लाल शर्मा एण्ड टी.एम. दक, कॉस्ट एण्ड क्लास इन एग्रेरियन सोसायटी, अजन्ता पब्लिकेशन्स, दिल्ली 1985.*
10. *बी.आर. चौहान, भारत में ग्रामीण समाज, ए.सी.ब्रदर्स, उदयपुर, 1998, ए राजस्थान विलेज, ए. सी. ब्रदर्स, उदयपुर 1998.*

11. डी.एन. धनागरे, पिजेन्ट मूवमेन्ट इन इण्डिया, ऑक्सफॉर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, दिल्ली, 1983.
12. टियॉडॉर शानिन, पिजेन्ट एण्ड पिजेन्ट सोसायटी, पैनगुईस बुक्स, मिडलसेक्स, 1973.
13. आन्द्र बैते, सिक्स एसेज इन कम्पेरेटिव सॉशियॉलॉजी, ऑक्सफॉर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, दिल्ली, 1984.
14. रॉबर्ट रेडफिल्ड, द पिजेन्ट सोसायटी एण्ड पिजेन्ट कल्चर, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थागार अकादमी, जयपुर, 1973.
15. श्यामाचरण दूबे, भारतीय ग्राम, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, 1986.
16. एम.एन. श्रीनिवास, ''विलेज स्टडिज इन देयर सिग्नीफिसेन्स'' ए.आर. देसाई (सम्पा.) वही पुस्तक.
17. डी.एन. मजूमदार, रूरल प्रोफाईल्स, द एथनोग्राफिक्स एण्ड फॉक कल्चर सोसायटी, लखनऊ, 1950.
18. योगेन्द्र सिंह, सोसयल स्ट्रेटिफिकेशन एण्ड चेन्ज इण्डिया, मनोहर पब्लिकेशन्स, दिल्ली, 1977.
19. एन.जी. रंगा, द मॉर्डन इण्डियन पिजेन्ट, अनमोल पब्लिकेशन्स, दिल्ली, 1979.
20. कैथलिन गफ, ''द सोसियल स्ट्रक्चर ऑफ तंजोर विलेज मैकिम मैरियट (सम्पा.), वही पुस्तक.
21. हरदयाल भाटी मरुस्थलीय कृषक संरचना, राजस्थानी ग्रन्थागार पब्लिकेशन्स, जोधपुर 2004.
22. एस.एस. ढाबरिया, डेजर्ट स्प्रिड डेजर्टी फिकेशन, इन्वायरमेन्टलिस्ट, जयपुर 1988.
23. एम. जौहरी, सचित्र ज्ञान विज्ञान कोष, विज्ञान भारती, नई दिल्ली 1989.
24. ए.के. सिंघवी एण्ड अमलकार, थार डेजर्ट, जियॉलॉजिकल सोसायअी ऑफ बैंगलोर, बैंगलौर, 1991.
25. अमरसिंह फरौदा एवं महेन्द्रप्रताप सिंह, मरुक्षेत्र अनुसंधान के आयाम, प्रकाशक केन्द्रीय रूक्ष क्षेत्र अनुसंधान संस्थान, जोधपुर, 1998.
26. भारत की जनगणना, जोधपुर जिला जनगणना, श्रृंखला 21, भाग द ख ख, क व ख, 1991. जैसलमेर की जनगणना एवं बाड़मेर की जनगणना वही श्रृंखला एवं भाग, 1991.
27 पटवार मण्डल देड़ा से लवारन गांव की जमाबन्दी (जोधपुर), केलावा से केलावा गांव की जमाबन्दी (जैसलमेर), सुरपुरा से पिण्डारन गांव की जमाबन्दी, (बाड़मेर), 1997.
28. राजकीय उच्च प्राथमिक विद्यालय से तीनों ग्रामीण समुदायों के सत्र 2000–2001 का छात्र उपस्थिति रजिस्टर.
29. अनुसंधानकर्ता द्वारा सन् 2000 में किया गया सर्वेक्षण (प्राथमिक तथ्यो का संकलन)

जॉन रॉल्स एवं सामाजिक न्याय

महेन्द्र कुमार शर्मा
शोधार्थी, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर

www.shodhshree.com

शोध सारांश

राजनीति विज्ञान की दार्शनिक पृष्ठभूमि जिन अवधारणाओं से निर्मित होती है उनमें न्याय महत्वपूर्ण है। स्वतंत्रता समानता एवं अधिकार के साथ न्याय राजनीतिक दर्शन का स्वरूप निर्धारित करता है। प्रथम राजनीतिक दार्शनिक प्लेटो ने न्याय के आधार पर आदर्श राज्य की कल्पना की तथा मध्ययुग में थॉमस एक्वीनास ने धर्म के आधार पर न्याय की स्थापना का संकल्प लिया। 18वीं शताब्दी में फ्रांसीसी क्रांति के स्वतंत्रता, समानता तथा बंधुत्व के नारे ने आधुनिक समाज की नींव रखी। 20वीं शताब्दी में अमेरिकन दार्शनिक जॉन रॉल्स ने न्याय के सिद्धान्त को पुनः आदर्श राज्य का केन्द्र बनाया। रॉल्स के अनुसार न्याय सामाजिक संस्थाओं का प्रथम सदगुण है जैसे सत्य चिन्तन का प्रथम सदगुण है। वर्तमान युग में न्याय एवं सामाजिक न्याय राजनीतिक चिन्तन का महत्वपूर्ण विषय बन चुका है और जॉन रॉल्स उसका प्रमुख प्रवर्तक है।

***संकेताक्षर** : मूल स्थिति, सामाजिक-समझौता, वितरणात्मक न्याय, अमुर्तिकरण, उपयोगितावाद, न्याय उचितता के रूप में, अज्ञानता का पर्दा, प्राथमिकता का नियम, समान स्वतंत्रता का नियम।*

राजनैतिक दर्शन में प्लेटो के बाद 20वीं सदी में अमेरिकी राजनैतिक दार्शनिक जॉन रॉल्स ने अपने चिंतन में न्याय को पुनः केन्द्रीय अवधारणा बनाया है। रॉल्स न्याय को सामाजिक संस्थाओं का प्रथम सदगुण मानता है। और वह एक ऐसे आदर्श समाज की संरचना करना चाहता है। जो न्याय पर आधारित हो रॉल्स का न्याय प्राकृतिक न्याय न होकर सामाजिक न्याय है रॉल्स यह मानता है कि उचित न्याय के लिए न्याय की प्रक्रिया भी उचित होनी चाहिए इसके लिए वह मूल स्थिति व सामाजिक समझौते का सहारा लेता है।[1] 1971 में जॉन रॉल्स की ए थियरी ऑफ जस्टिस के प्रकाशन ने राजनैतिक चिंतन के पुनरोदय की घोषणा की।[2]

रॉल्स ने न्याय सम्बन्धी विचार 1950 के दशक से बनाने शुरू किए। सर्वप्रथम 1957 में द जर्नल ऑफ फिलासफी के वाल्यूम में 'न्याय उचितता के रूप में' नामक लेख में अपने न्याय सम्बन्धी विचार प्रस्तुत किए। 1963 में फिलासॉफिकल रिव्यु, वाल्यूम 62 में प्रकाशित 'न्याय का बोध' नामक लेख में उसने अपने विचारों को आगे बढ़ाया। 1968 में 'वितरणात्मक न्याय' नामक लेख प्रकाशित हुआ। इस प्रकार लगभग एक दशक तक रॉल्स ने अपने न्याय सम्बन्धी विचारों को परिपक्व किया और अपने विचारों के विकास में विभिन्न सामाजिक विशेषज्ञों से विचार विमर्श कर अन्ततोगत्वा 1971 में 'ए थियरी ऑफ जस्टिस' नामक पुस्तक को साकार रूप दिया।[3]

जॉन रॉल्स के अनुसार आधुनिक नैतिक दर्शन में मूलतः उपयोगितावाद का प्रभुत्व रहा है और इसका प्रमुख कारण है उपयोगितावाद के समर्थक विचारकों ने बहुत ही कुशलता से इसके सिद्धान्तों को वृहत एवं समृद्ध बनाया। उनके आलोचक इसकी कमियों को तो बताने में समर्थ रहे हो लेकिन वे इस सिद्धान्त का नैतिक विकल्प नहीं प्रस्तुत कर सके।

जॉन रॉल्स यह दावा करता है कि वह लाक के सामाजिक समझौता सिद्धान्त को अमुर्तिकरण करने का प्रयास कर रहा है इसलिए वह उपयोगितावाद के विकल्प में एक नैतिक दर्शन को स्थापित करने में सफल होगा। रॉल्स का यह सिद्धान्त मूलतः

काण्टवादी है जिसमें काण्ट की नैतिक प्रस्थापनाओं का सहारा लेकर उपयोगितावाद का प्रभावी विकल्प प्रस्तुत करने की कोशिश की गयी है इस कोशिश में जॉन रॉल्स ने समाजिक सहयोग में न्याय की भूमिका को स्पष्ट किया है और न्याय के अर्थ और विषय का सरलीकरण किया है। समाज की मूलभूत संरचनाओं के संदर्भ में जॉन रॉल्स 'न्याय को उचिततता के रूप में' परिभाषित करता है और न्याय के सिद्धान्त की सामाजिक अनुबन्ध की परम्परागत अवधारणा को उच्च स्तर पर अर्मूतता प्रदान करता है जिसमें कुछ प्रक्रियात्मक बन्धनों के अन्तर्गत न्याय के सिद्धान्तों पर मूल समझौता होता है और एक न्यायी समाज की नींव रखी जाती है इस न्याय सिद्धान्त की तुलना उपयोगितावादी न्याय के सिद्धान्त से की गयी और इसकी श्रेष्ठता स्थापित करने की कोशिश की गयी है।[4]

रॉल्स के अनुसार न्याय सामाजिक संस्थाओं का प्रथम सदगुण है जैसे सत्य चिंतन का प्रथम सदगुण है। रॉल्स की रचनाओं में न्याय की चर्चा कम से कम तीन सन्दर्भों में हुयी है। सबसे पहले तो निष्पक्षता के विचार पर आधारित उनकी न्याय के नियमों की व्युत्पति ही है। यहीं उन्होनें न्याय के आधार पर समाज की आधारित रचना के लिए आवश्यक संस्थाओं की पहचान भी की है। इस अवधारणा की रॉल्स ने बहुत अच्छी तरह से विस्तृत व्याख्या भी की है यही से आगे एक–एक कदम बढ़ाते हुए न्याय के निष्पक्षता रूपी तकाजों को पूरा करने के लिए उपयुक्त कानून बनाने और लागू करने की चर्चा की गयी है। दूसरा सन्दर्भ चिन्तन मनन का है। यहां मननात्मक संतुलन के विकास की बात हुयी है। यहां भी न्याय की बात उठ सकती है। किन्तु मुख्य आग्रह साधुता (अच्छेपन) और उचित होने (औचित्य) के प्रति विभिन्न व्यक्तियों के वैयक्तिक आंकलन पर ही रहता है। तीसरा सन्दर्भ रॉल्स का प्रतिच्छायी सहमति के विचार से जुड़ा है यह हमारी उन सहमतियों व असहमतियों के जटिल संयोजनों से सम्बन्धित है जिन पर सामाजिक व्यवस्था का स्थायित्व निर्भर रहता है।[5]

जॉन रॉल्स न्याय का सिद्धान्त देते समय सामाजिक अनुबन्ध का सहारा लेता है वह सामाजिक अनुबन्ध का मुख्य विचार समाज की संरचना की स्थापना के लिए आवश्यक न्याय सिद्धान्तों का निर्माण करना है। ये ऐसे सिद्धान्त है जिन्हें स्वतंत्र विवेकी व्यक्ति अपने हितों का संवर्द्धन करने के लिए प्रारम्भिक अवस्था स्वीकार करते है। ये सिद्धान्तवाद वाले सभी समझौतों को नियमित करते है और ऐसे सामाजिक सहयोग के नियम बनाते है जिनसे न्यायप्रिय सरकारों की स्थापना हो सके ऐसे प्रक्रियात्मक न्याय को रॉल्स 'न्याय उचितता के रूप में' ही तरह परिभाषित करता है। इस प्रकार हमें यह कल्पना करनी होगी कि व्यक्ति प्रारम्भिक अवस्था में एक समझौते द्वारा ऐसे सिद्धान्तों का निर्माण करेगें जो व्यक्तियों के मूलअधिकारों और कर्तव्यों को निर्धारित करेगें एवं सामाजिक लाभों का इनके मध्य में वितरण का आधार प्रस्तुत करेगें।[6] व्यक्ति को यह सोचना होगा कि उसका शुभ क्या है और उसको प्राप्त करने का विवेकीकृत तरीका क्या है जिससे यह तय हो सके कि न्याय और अन्याय क्या है? ऐसा सोचते समय प्रत्येक व्यक्ति विवेकी है एवं समान स्वतन्त्रता का उपायोग कर रहा है। न्याय के सिद्धान्तों की खोज इसी सोच का परिणाम है तथा व्यक्ति यह सोचते समय एक काल्पनिक स्थिति में है। ऐसी काल्पनिक स्थिति को रॉल्स मूल स्थिति कहता है। यह मूल स्थिति ऐतिहासिक नहीं है और न ही संस्कृति की प्रारम्भिक स्थिति है, यह पूर्णतः काल्पनिक स्थिति है जो न्याय की अवधारणा का निर्माण करने के लिए आवयश्क है इस स्थिति में कोई भी समाज में अपना स्थान अपनी वर्गीय स्थिति सामाजिक हैसियत नहीं जानता है और न ही यह जानता है कि उसकी क्षमताऐं या योग्यताऐं, बुद्धिमता एवं शक्तियां और स्वभाविक योग्यताऐं क्या है? रॉल्स यह भी मानता है कि यह लाभ–शुभ की अवधारणा को भी नहीं जानते है। न्याय के सिद्धान्त इस प्रकार एक अज्ञान के पर्दे के पीछे चयनित होते है।[7]

इस तरह रॉल्स के न्याय सिद्धान्तों में यह तय किया गया है कि कोई भी व्यक्ति सामाजिक परिस्थितयों या प्राकृतिक अवसर के कारण न्याय के सिद्धान्तों को चुनते समय किसी भी प्रकार की लाभ या हानि की स्थिति में न हो, चँकि सभी समान स्थिति में है, कोई भी अपने व्यक्तिगत लाभ के लिए सिद्धान्त नहीं बना सकता और इसलिए न्याय का सिद्धान्त उचित समझौते का परिणाम है। मूल स्थिति में अज्ञान के पर्दे के साथ यह शर्तें न्याय के उन सिद्धान्तों को परिभाषित करती है। जिनमें विवेकी व्यक्ति अपने हितों को आगे बढ़ाने के आधार पर अपनी सहमति देते है, तथा जहां पर कोई भी व्यक्ति सामाजिक तथा प्राकृतिक कारणों से लाभान्वित तथा गैर लाभान्वित नहीं है यहाँ पर रॉल्स नैतिक दर्शन की नयी अवधारणा

विमर्शी समत्व (Reflective Equilibrium) का प्रयोग करता है।

रॉल्स के न्याय सिद्धान्त को दो भागों में बांटा जा सकता है।

1. प्रारम्भिक स्थिति की व्याख्या एवं वहां पर उपलब्ध विभिन्न सिद्धान्तों के निर्माण का चयन।
2. इन सिद्धान्तों में से उचित सिद्धान्त को स्वीकार करने के लिए तर्क की खोज।[8]

रॉल्स का न्याय सिद्धान्त

रॉल्स के अनुसार विवेकी व्यक्ति स्वहित से प्रेरित होता है और परोपकार उसका स्वभाविक गुण नहीं है इसलिए वह समझौता स्वहित को पूरा करने के लिए ही करता है ऐसे व्यक्ति जिस न्याय की खोज करते है उसे रॉल्स न्याय उचितता के रूप में परिभाषित करता है ऐसे व्यक्ति एक ही कृत्य में आपस में समझौता करते है उनके द्वारा ऐसे सिद्धान्त चुने जाते है जिनमें व्यक्तियों को मूल अधिकार एवं कर्तव्य दिए जा सके एवं सामाजिक लाभों का बंटवारा हो सके। न्याय के वे सिद्धान्त दो तरह के हैं।

1. सामान्य सिद्धान्त – इस सिद्धान्त के अनुसार सभी प्राथमिक सामाजिक वस्तुऐं (मूल्य) स्वतंत्रता एवं अवसर आय एवं धन एवं आत्मसम्मान के आधारों को समान रूप से वितरित किया जाए जब तक सबसे कम लाभान्वित व्यक्ति का अहित न हो।[9]

2. विशिष्ट सिद्धान्त – विशिष्ट सिद्धान्त के दो सिद्धान्त है–

1. प्रत्येक व्यक्ति को ऐसी अत्यन्त विस्तृत मूल स्वतन्त्रता का समान अधिकार है जो दूसरों को ऐसी स्वतंत्रता के अनुरूप हो। 2. सामाजिक और आर्थिक असमानताएं इस प्रकार से व्यवस्थित की जाए जिससे कि (अ) सबसे कम लाभान्वित व्यक्ति के अधिकतम लाभ मिल सकें। (ब) अवसरों की न्यायोचित समस्या की स्थितियों के अन्तर्गत सबके लिए खुली पद एवं पदानुषंग से संबंधित हो।

विशिष्ट सिद्धान्त में शब्दकोषीय व्यवस्था का प्राथमिकता का सिद्धान्त लागू होता है जिसका अर्थ है कि जब तक प्रथम सिद्धान्त तुष्ट नहीं होगा तब तक दूसरा सिद्धान्त आरम्भ ही नहीं होगा।

रॉल्स का प्रथम प्राथमिकता का नियम (स्वतंत्रता की प्राथमिकता) – न्याय के सिद्धान्तों को शब्दकोषीय व्यवस्था में पदनुक्रमित किया जाएगा और इसलिए स्वतंत्रता केवल स्वतंत्रता के लिए ही बाधित हो सकती है इस प्रकार दो स्थितियां है प्रथम कम विस्तृत स्वतंत्रता सबके साझे की स्वतंत्रताओं की पूर्ण व्यवस्था को शक्ति प्रदान करे एवं द्वितीय समान स्वतन्त्रता से कम स्वतंत्रता वाले नागरिकों को यह स्थिति स्वीकृत हो।[10]

द्वितीय प्राथमिकता का नियम (दक्षता एवं कल्याण की तुलना में न्याय की प्राथमिकता) – न्याय का दूसरा सिद्धान्त दक्षता के सिद्धान्त एवं लाभों के योग को अधिकतमकरण से शब्दकोषीय क्रम से पूर्व है एवं उचित अवसर विभेद सिद्धान्त से पूर्ण है दो स्थितिया है– (अ) अवसरों की असमानता उन लोगों के अवसर बढ़ाये जिनके पास कम अवसर है। (ब) बचत की बढ़ी हुयी दर उन लोगों के कष्ट कम कर सके जो अपेक्षाकृत कष्टमयी जीवन व्यतीत कर रहे है। वे सबसे कम लाभान्वित व्यक्ति को अधिकतम अपेक्षित लाभ दे (Maximin Criteria)। इसमें पहला सिद्धान्त दूसरे से प्राथमिकता लिए हुए है और सबसे कम लाभान्वित व्यक्ति के लाभ के मापने का आधार सामजिक प्राथमिक मूल्यों के संदर्भ में है और इन्हें रॉल्स अधिकार, स्वतन्त्रता अवसर आाय धन और आत्म सम्मान के सामाजिक आधारों के रूप में परिभाषित करता है वे यह मूल्य है जिन्हें व्यक्ति अवश्य चाहता है चाहे वह और कुछ भी चाहे ओर उनके कुछ भी अन्तिम लक्ष्य हो। व्यक्तियों के मध्य समझौता इसी समझ के आधार पर होता है।[11]

निष्कर्ष

जॉन रॉल्स अपने न्याय सिद्धान्त के विशिष्ट सिद्धान्त में शब्दकोषीय व्यवस्था का प्राथमिकता का सिद्धान्त लागू होता है जिसका अर्थ है कि जब तक प्रथम सिद्धान्त तुष्ट नहीं होगा, दूसरा सिद्धान्त आरंभ नहीं होगा। इस प्रकार जब तक लोगों को समान व पर्याप्त स्वतंत्रता नहीं मिलेगी तब तक सबसे कम लाभान्वित व्यक्ति के लाभ की बात नहीं की जाएगी। रॉल्स न्याय के विशिष्ट सिद्धान्त में अधिक रुचि लेता है तथा अपनी पुस्तकों में विस्तार से इसकी विवेचना करता है। न्याय के ऐसे सिद्धान्त चुनने के पश्चात् उन पर आधारित राज्य को मूर्त स्वरूप प्रदान करने के लिए एक संवैधानिक सम्मेलन बुलाया जाता है जिसमें लोगों के प्रतिनिधि न्याय के विशिष्ट सिद्धान्त पर आधारित राज्य का संविधान बनाते हैं तथा संविधान को लागू करने के नियम बनाते हैं। ऐसे आदर्श राज्य को रॉल्स 'संविधानिक प्रजातंत्र' नाम देता है। संस्थागत कार्यो के लिए रॉल्स सरकार को चार

शाखाओं में विभाजित करते है– आवंटन शाखा, स्थरीकरण शाखा, स्थानान्तरण शाखा एवं वितरणात्मक शाखा। इस प्रकार जॉन रॉल्स न्याय के सिद्धान्त को विभिन्न आयामों में विवेचित करता है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. *गाबा, ओ.पी. : राजनीतिक सिद्धान्त की रूपरेखा नेशनल पब्लिशिंग हाऊस, नयी दिल्ली। चतुर्थ संस्करण 2010*
2. *दाधीच, नरेश : जॉन रॉल्स का न्याय सिद्धान्त, आविष्कार पब्लिशर्स जयपुर 2003*
3. *जॉन रॉल्स : द जर्नल्स ऑफ फिलॉसफी 1957, वाल्यूम 'न्याय उचितता के रूप में'*
4. *एक्रमैन ब्रुस : सोशल–जस्टिस इन द लिबरल स्टेट न्यू हेवन एण्ड लन्दन, येल युनिवर्सिटी प्रेस 1980*
5. *सेन, अमर्त्य : न्याय का स्वरूप प्रथम संस्करण 2010 हिन्दी अनुवाद राजपाल एण्ड सन्स नयी दिल्ली।*
6. *मैकफर्सन, सी.बी. : डेमोक्रेटिक थ्योरी– ऐसे इन रिट्रिवल आक्सफोर्ड प्रेस 1972*
7. *रॉल्स, जॉन : ए थियरी ऑफ जसिटस हार्वर्ड युनिवर्सिटी प्रेस कैम्ब्रिज – 1971*
8. *ब्रियान, बेरी : जॉन–रॉल्स एण्ड द प्रोयरिटी ऑफ लिबर्टी फिलॉसफी एण्ड पब्लिक अफेयर्स 2, 1973*
9. *हक्सर, विनित : रॉल्स थ्योरी ऑफ जस्टिस एनालिसिस 1972*
10. *गुर्जर, लीलाराम : 20वीं सदी के राजनतिक विचारक मनोहर पब्लिशर्स नयी दिल्ली, 1997*
11. *एल्थम जे.ई.एम. :रॉल्स डिफ्रेन्स प्रिंसिपल फिलॉसफी 48 जनवरी 1973*

भारत के विभिन्न भागों में क्षेत्रवाद

पूनम अग्रवाल
शोधार्थी, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर

www.shodhshree.com

शोध सारांश

भारतीय परिवेश में जनसंख्या की विशालता ने नवीन राज्यों की माँग के प्रसंग को अनपेक्षित नहीं रहने दिया है। भारत के उन्तीसवें राज्य तेलंगाना की स्थापना के पश्चात अन्य क्षेत्रों से उठती माँगों ने जोर पकड़ा है और आंदोलनकारी सही राजनीतिक समय की प्रतीक्षा कर रहे हैं। अनेकताओं के मध्य एकता की संस्कृति का पोषक भारत एकता के मध्य अनेकताओं के कारण लघु राज्यों में विभक्त होने की स्थिति में है और राजनीतिक अदूरदर्शिता और तात्कालिक राजनीतिक लाभ की आकांक्षा ने इस स्थिति को अधिक भयावह बना दिया है। उन्तीस राज्य और सात केंद्र शासित प्रदेशों के बावजूद और अनेक राज्यों की माँग विचित्र और चिन्ताजनक है। नवीन राज्यों की माँगों के प्रमुख कारण निम्न हैं – पूर्व में राज्य के रूप में पहचान, धार्मिक पक्ष, जनजातीय पक्ष, आकार, आर्थिक विषमता, राज्यों में विवाद, भाषा और संस्कृति, सीमावर्ती क्षेत्र होने से उपेक्षा, नदीजल बँटवारा आदि। इस शोध पत्र के लेखन में वैज्ञानिक और विवरणात्मक विधि का प्रयोग किया गया है तथा विद्वानों, शोध विशेषज्ञों, पुस्तकों और वेबसाइट्स की सहायता ली गई है।

संकेताक्षर : *माँग, नवीन राज्य, केंद्र, संघ, जिले, भाषा।*

अधिकांश राज्य भौगोलिक, सांस्कृतिक, और ऐतिहासिक रूप से भिन्न क्षेत्रों का निर्माण करते हैं। उत्तर प्रदेश रूहेलखंड, ऊपरी दोआब, अवध, निचला दोआब, पूर्वांचल और बुन्देलखंड क्षेत्रों में विभाजित है। ऐसी ही स्थिति जाति आधारित बिहार में भी है। दक्षिणी क्षेत्र को पहले ही झारखंड भिन्न राज्य के रूप में निर्मित कर दिया, जहाँ विशेष रूप से दो उत्तरी और एक केंद्रीय भौगोलिक क्षेत्र हैं। ऐसा ही एक प्रबल प्रकरण हरियाणा में है जिसमें भौगोलिक रूप से समीपस्थ और राजनीतिक दृष्टि से अर्थपूर्ण क्षेत्रों का अभाव है। राजस्थान में मारवाड़, मेवात, बांगड़, ढूँडाढ़, हाडौती, मेरवाड़ा–अजमेर आदि क्षेत्र हैं। मध्य प्रदेश जो कि एक बचा–खुचा राज्य है क्योंकि इसका निर्माण निकटवर्ती राज्यों के निर्माण से हुआ। इसके ऐतिहासिक रूप से भिन्न क्षेत्र निम्न हैं – मालवा, महाकौशल, विंध्य प्रदेश आदि। छत्तीसगढ़ वर्ष 2000 में राज्य बन चुका है। पंजाब में तीन भौगोलिक क्षेत्र हैं – मालवा, दोआबा और माझा। जम्मू कश्मीर में भौगोलिक और सांस्कृतिक दृष्टि से भिन्न तीन क्षेत्र हैं – लद्दाख, जम्मू और कश्मीर। हिमाचल प्रदेश में दो भिन्न कृषि–जलवायवीय क्षेत्र हैं – उद्यानकृषि और कृषि। इन दोनों क्षेत्रों की अलग–अलग ऐतिहासिक घटनाएँ हैं। पश्चिमी बंगाल में तटीय, पश्चभूमि और उत्तर क्षेत्र तीन भिन्न क्षेत्र हैं। अंतिम क्षेत्र में नस्लीय दृष्टि से भिन्न गोरखाओं का बाहुल्य है। दिल्ली के राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र में प्रति वर्ष एक लाख बाहरी लोगों के आने से बहुत विभिन्नता है। दक्षिण भारत में आंध्र प्रदेश में तेलंगाना के निर्माण के बाद दो क्षेत्र हैं सिरकार्स और रायलसीमा। राजनीतिक अर्थों में केरल में तीन क्षेत्र हैं – मालाबार, कोचीन और त्रावणकोर। कर्नाटक के चार क्षेत्र हैं – पुराना मैसूर, हैदराबाद कर्नाटक, पुराना मद्रास और कुर्ग।[1] समान रूप से, यदि भारत की केंद्र सरकार देश के समस्त राज्यों में समान विकास के लिए संकल्पकृत हो तो विकास के मसलों पर नवीन राज्य की माँग जैसे मसलों की हवा निकल जाएगी और नवीन राज्यों की माँग जैसे राजनीतिक दृष्टि से

संवेदनशील मुद्दे पर व्यर्थ की ऊर्जा की बचत होगी[2] और इसे अन्यत्र इस्तेमाल किया जाना संभव होगा। नवीन राज्यों और केंद्र शासित प्रदेशों के प्रवेश अथवा निर्माण का एकमात्र अधिकार भारतीय संसद में सुरक्षित है जो विद्यमान राज्य से क्षेत्र को पृथक कर या दो या राज्यों अथवा उनके भागों को मिलाकर नवीन राज्यों का निर्माण कर सकती है।[3]

कार्बी आंग्लोंग

31 जुलाई 2013 को कार्बी आंग्लोंग की पृथक राज्य की माँग का आंदोलन हिंसक हो गया जब छात्र आंदोलन क्रोध से फट पड़ा और लगभग प्रत्येक सरकारी इमारत को जला दिया गया।[4]

विदर्भ

विदर्भ क्षेत्र में पूर्वी महाराष्ट्र के अमरावती और नागपुर प्रभाग सम्मिलित हैं। दो राजनीतिज्ञों एन. के. पी. साल्वे और वसंत साठे ने इक्कीसवीं सदी में विदर्भ राज्य की माँग को माने जाने के लिए प्रयास किए हैं।[5]

पृथक राज्यों की माँगें संपूर्ण देश से आई हैं – मणिपुर में कुकीलैंड से तमिलनाडु में कोंगुनाडु तक, उत्तरी बंगाल में कामतापुर से कर्नाटक में तुलुनाडु तक। फिर भी, उत्तर प्रदेश को छोड़कर, जहाँ मायावती नीत बसपा सरकार के कार्यकाल के दौरान देश के सर्वाधिक जनसंख्या वाले राज्य को विभक्त कर चार राज्य बनाने का प्रस्ताव किया गया, किसी भी राज्य सरकार ने नए राज्य के निर्माण की अनुशंसा नहीं की है।[6]

हरित प्रदेश

हरित प्रदेश एक ऐसा प्रस्तावित राज्य है जिसमें पश्चिमी उत्तर प्रदेश के 22 जिले शामिल हैं। बाईस जिले वर्तमान में छह संभागों – आगरा, अलीगढ़, बरेली, मेरठ, मुरादाबाद और सहारनपुर में घटकों के तौर पर विद्यमान हैं।[7]

उत्तर प्रदेश में प्रस्तावित राज्य

ब्रज प्रदेश

ब्रज उत्तर प्रदेश के आगरा और अलीगढ़ संभाग तथा राजस्थान के भरतपुर और मध्य प्रदेश के ग्वालियर जिले से मिलकर बना है।

अवध

हिन्दू धर्म ग्रंथों में भगवान राम की महिमा अप्रतिम है। उनकी जन्मस्थली और कर्मस्थली साकेत ही वर्तमान अवध है।

पूर्वांचल

पूर्वांचल में तीन संभाग शामिल हैं – पश्चिम में अवधी क्षेत्र, पूर्व में भोजपुरी क्षेत्र और दक्षिण में बघेलखंड क्षेत्र।[8]

तेलंगाना निर्माण आंदोलन के परिणाम स्वरूप बहुजन समाजवादी पार्टी की मायावती ने 13 दिसंबर 2009 को उत्तर प्रदेश से पृथक कर पूर्वांचल राज्य बनाने का प्रस्ताव रखा था।[9]

बुन्देलखंड

भारतीय इतिहास में बुन्देलों के साहित्य और संस्कृति का क्षेत्र बुन्देलखंड है। बुन्देलखंड में उत्तर प्रदेश और मध्य प्रदेश के भाग सम्मिलित हैं।

कश्मीर

लंबे आतंकवाद के कारण जम्मू और घाटी दो विपरीत विचारधाराओं वाले क्षेत्रों में बदल गए हैं। प्रस्तावित कश्मीर राज्य में जम्मू और कश्मीर राज्य का कश्मीर क्षेत्र शामिल है।

डोगरादेश (जम्मू)

जम्मू और कश्मीर राज्य के गैर मुस्लिम क्षेत्र में जम्मू क्षेत्र शामिल है। प्रस्तावित डोगरादेश राज्य में हिन्दू बहुलता है।

लद्दाख

धार्मिक आधार पर जम्मू और कश्मीर राज्य के तीन स्पष्ट भाग किए जा सकते हैं – हिन्दू बहुल जम्मू, मुस्लिम बहुल कश्मीर घाटी और बौद्ध बहुल लद्दाख। लद्दाख में पूर्वी जम्मू और कश्मीर राज्य का एक विशाल क्षेत्र सम्मिलित है।

गोरखालैंड

गोरखालैंड राज्य के लिए प्रस्तावित नक्शा

पश्चिमी बंगाल में यह ज्ञात है कि इसके लोग उनकी भारतीय पहचान को अधिकार पूर्वक व्यक्त करते हैं जो कि बांग्लादेश के लोगों की पहचान से भिन्न है। हम भारतीय नेपालियों जिनका नेपाल से कोई लेना–देना नहीं है, लगातार ''नेपाली'' समझा जाता है जो कि एक विदेशी देश नेपाल के नागरिक हैं। परंतु यदि गोरखालैंड हो तो हमारी पहचान भारत राज्य से संबंधित भारतीयों के रूप में स्पष्ट होगी। यदि गोरखालैंड नहीं होगा जो हमारी पहचान लगातार नेपालियों के तौर पर होगी जो सदाचार के बिना यहाँ रहते हुए एक विदेशी देश के नागरिकों के कलंक जैसा होगा।[10] विकट वातावरण में रहने वाले गोरखा भारतीय सेना के अभिन्न अंग रहे हैं। हिमालय पर चढ़ने में मदद देने वाले समूह भी गोरखा ही हैं। गोरखालैंड के प्रस्तावित स्वरूप में पश्चिमी बंगाल के उत्तरी भाग में दार्जिलिंग पहाडियाँ और दुआर्स क्षेत्र शामिल हैं जिनमें गोरखा लोग निवास करते हैं। 1980 के दशक के दौरान ही पृथक राज्य के रूप में गोरखालैंड की माँग के आंदोलन ने गंभीर रूप ग्रहण कर लिया जब सुभाष घीसिंग द्वारा नीत गोरखा नेशनल लिबरेशन फ्रंट द्वारा आयोजित विद्रोह ने हिंसक रूप ले लिया। इस विद्रोह का परिणाम 1988 में दार्जिलिंग जिले के कतिपय निश्चित क्षेत्रों को शासित करने के लिए 1988 में एक अर्द्धस्वायत्त निकाय की स्थापना के रूप में सामने आया जो दार्जिलिंग गोरखा हिल कौंसिल (डीजीएचसी) के नाम से जानी जाती है। हालांकि 2008 में एक नवीन दल गोरखा जनमुक्ति मोर्चा ने एक बार फिर पृथक गोरखालैंड राज्य की माँग को हवा दी। 2011 में गोरखा जनमुक्ति मोर्चा ने राज्य और केंद्र सरकार के साथ एक समझौते पर हस्ताक्षर किए जिसमें दार्जिलिंग पहाड़ियों में पूर्व में स्थापित डीजीएचसी को प्रतिस्थापित कर एक नवीन अर्द्धस्वायत्त निकाय गोरखालैंड टेरिटोरियल एडमिनिस्ट्रेशन की स्थापना के संबंध में प्रावधान थे।[11]

कामतापुर

कामतापुर पश्चिमी बंगाल के उत्तरी भाग में है। प्रस्तावित राज्य में कूच बिहार, जलपाईगुड़ी जिले और सिलीगुड़ी शहर को शामिल करते हुए दार्जिलिंग के दक्षिणी मैदानी भाग हैं।

क्षेत्रवाद के स्थान पर उपराष्ट्रवाद (राजनीतिकरण और लामबंदी के ऐसा प्रारूप जिसमें राष्ट्रवाद के कुछ लक्षण विद्यमान है परंतु यह पृथक राज्यत्व के प्रति दृढ़ता से प्रतिबद्ध नहीं है) के संप्रत्यय का उपयोग करते हुए, बरूआ ने संकेत दिया कि उपराष्ट्रवाद और क्षेत्रवाद समान या कम से कम समान हैं और उन दोनों के मध्य संवादीय संबंध है।[12]

बोडोलैंड

10 फरवरी 2003 को किए गए समझौते के अनुसार बोडोलैंड टेरिटोरियल कौंसिल जो कि आसाम सरकार की अधीनस्थ संस्था है, की स्थापना की गई। इसका कार्य था कि यह आसाम के बोडो बहुल 3082 गाँवों को सम्मिलित करने वाले चार जिलों पर शासन व्यवस्था का जिम्मा सँभाले। इस परिषद के लिए 13 मई 2003 को चुनाव हुए जिसमें 4 जून 2003 को 46 सदस्यीय

परिषद के अध्यक्ष के रूप में हग्रामा महिलरी ने शपथ ग्रहण की। तेलंगाना की स्थापना के बाद बोडोलैंड राज्य की माँग सुलगने लगी है।

दीमाराजी

इस प्रस्तावित राज्य में आसाम और नागालैंड का दीमासा जनजाति बहुल क्षेत्र जैसे दीमा हसाओ और काचर जिले, आसाम के नागाओं जिले के कुछ भाग और कार्बी आंग्लोंग जिले के कुछ भागों के साथ नागालैंड में दीमापुर जिले के भाग सम्मिलित हैं।[13]

दीमाराजी का नक्शा

कोंगुनाडु

प्रस्तावित राज्य में तमिलनाडु के दस जिले शामिल हैं :– कोयंबटूर, नीलगिरिज, करूर, नमक्कल, एरोड, तिरूपुर, सालेम, कृष्णागिरि, धर्मपुरी और डिंडिगुल।[14]

कोसल

यह ओडीशा राज्य में है तथा इसमें सुन्दरगढ़, झरसुगुड़ा, देबागढ़, संबलपुर, बारगढ़, सौनेपुर, बौध, बोलांगीर, नुआपाड़ा, कालाहांडी, नबरंगपुर, अंगुल जिले का उपसंभाग अठमालिक और राजगढ जिले का काशीपुर खंड सम्मिलित हैं।[15]

मिथिलांचल

बिहार में 24 मैथिली ाषी जिले हैं – अरारिया, बांका, बेगुसराय, भागलपुर, दरभंगा, पूर्वी चंपारन, जमुई, कटिहार, खगरिया, किशनगंज, लखीसराय, मधेपुरा, मधुबनी, मोंघीर, मुजफ्फरनगर, पुर्निया, सहरसा, समस्तीपुर, शेखपुरा, शेवहर, सीतामढ़ी, सुपॉल, वैशाली और पश्चिम चंपारन।[16] झारखंड राज्य में केवल छह जिलों में ही भाषागत दृष्टि से मैथिली सर्वाधिक बोली जाती है – देवघर, दुम्का, गोड्डा, जमतारा, पकौर और साहेबगंज।[17]

मैथिली भाषी क्षेत्र

तुलुनाडु

कर्नाटक और केरल के संदर्भ में तुलुनाडु

आर्थिक विषमता को आधार बनाकर और तुलु संस्कृति की विभिन्नता को संरक्षित करने की जनभावना को

उद्धेलित कर तुलुनाडु राज्य की माँग की गई। प्रस्तावित राज्य में कर्नाटक के दक्षिण कन्नड़ और उडुपी जिले तथा केरल का कसरगोड़ जिला सम्मिलित है।[18]

विन्ध्य प्रदेश

विन्ध्य प्रदेश का पूर्व राज्य

विन्ध्य प्रदेश मध्य भारत का एक पूर्व राज्य था। 2000 में मध्य प्रदेश विधानसभा के पूर्व अध्यक्ष श्रीनिवास तिवाड़ी ने मध्य प्रदेश के नौ राज्यों को मध्य प्रदेश से अलग कर एक नए राज्य विन्ध्य प्रदेश के निर्माण के लिए आह्वान किया[19]

कुकीलैंड

सदर पहाड़ियों, चंदेल, चुराचंदपुरा जिलों और उखरुल तथा तामेंगलोंग जिलों के कुछ भागों को मिलाकर कुकीलैंड बनाने का प्रस्ताव है।[20]

कच्छ

कच्छ 1956 तक एक पृथक राज्य था।[21] इसका पार्ट–सी राज्य के तौर पर अस्तित्व था। 1960 में इसे बृहद मुम्बई में विलय कर दिया गया ताकि इसे पृथक कर गुजरात राज्य का निर्माण किया जा सके। लेकिन उसके पश्चात इस क्षेत्र का विकास लगातार अवहेलना का शिकार हो रहा है।

सौराष्ट्र

सौराष्ट्र 1956 तक एक पृथक राज्य था। इसका पार्ट – बी राज्यों में शुमार था। राज्य को जल, विद्युत, रेलवेज, स्वास्थ्य, शिक्षा, सड़क आदि आधारभूत सुविधाओं के मामले में भेद भाव का सामना करना पड़ा है। इस क्षेत्र के लोगों की पृथक राज्य की माँग की अभिलाषा महती बलवती हो गई है।[22]

अन्य

गारोलैंड मेघालयः मेघालय के गारो क्षेत्रों से एक नवीन राज्य गारोलैंड की माँग सिर उठाने लगी है।

गोंडवानाः इस नवीन राज्य की माँग में आन्ध्र प्रदेश, छत्तीसगढ़, मध्य प्रदेश और महाराष्ट्र के कतिपय हिस्से सम्मिलित हैं।

हैदराबाद राज्यः इस राज्य के लिए दो जिले प्रस्तावित हैं – हैदराबाद और रंगारेड्डी।

कराईकलः पुड्डुचेरी केंद्र शासित प्रदेश के चार जिलों में से एक कराईकल जिला पोंडीचेरी जिले से दक्षिण दिशा में 150 किलोमीटर द्ध93मीलऋ दूर है।

फ्रंटियर नागालैंडः नागालैंड के चार पूर्वी जिले इस क्षेत्र में शामिल हैं।

कोंकण : कोंकण क्षेत्र में भारत के कोंकणी भाषा बहुल क्षेत्र शामिल हैं। प्रस्तावित राज्य में महाराष्ट्र राज्य के रायगढ़, रत्नागिरि, थाणे, मुम्बई, नवी मुम्बई और सिंधुदुर्ग जिले सम्मिलित हैं।[23]

सन्दर्भ ग्रंथ सूची

1. *मीणा सोहन लाल, अक्टूबर–दिसंबर 2006, डायनामिक्स आव स्टेट पोलिटिक्स इन इंडिया, द इंडियन जर्नल आव पोलिटिकल साइंस, वोल्यूम 67, संख्या 4, इंडियन पोलिटिकल साइंस एसोसियेशन, पृष्ठ संख्या 709*
2. *अय्यर मणिशंकर, रेडिफ, 16 दिसंबर 2013 आर स्माल स्टेट्स बेटर गवर्न्ड ? ए डिबेट,*
3. *कुमारा ब्रज बिहारी, 2012, स्माल स्टेट सिण्ड्रोम इन इंडिया, पृष्ठ सं. 42, कंसेप्ट पब्लिशिंग कंपनी , नई दिल्ली*
4. *गुहा रामचंद्र, 2014, इंडिया आफ्टर गाँधी : द हिस्ट्री आव वर्ल्ड्स लार्जेस्ट डेमोक्रेसी, पृष्ठ सं. 453, हार्पर पेरेनियल पब्लिशिंग, न्यूयोर्क*
5. *3 दिसंबर 2009, प्रेस ट्रस्ट आव इंडिया, डिमांड फार सेपरेट विदर्भ गेनिंग मोमेंटम,*
6. *फड डा. एस. बी., 17 अक्टूबर 2013, नवीन लघु राज्यों की माँग : भारतीय संघवाद को चुनौती, शब्द ब्रह्म, वोल्यूम 1, संस्करण 12, पृष्ठ संख्या 3, शब्द ब्रह्म प्रकाशन, इंदौर*
7. *http://timesofindia.indiatimes.com/india/Politics-aside-is-Uttar-Pradesh-a-fit-case-for trifurcation/articles how/5345866.cms.*
8. *अग्रवाल जे. सी., अग्रवाल एस. पी., गुप्ता शांति स्वरूप, 2015, उत्तर प्रदेशः पास्ट, प्रेजेंट एंड फ्यूचर, पृष्ठ सं. 324,कंसेप्ट पब्लिशिंग कंपनी, नई दिल्ली*
9. *17 दिसंबर 2009, द टाईम्स आव इंडिया, पोलिटिक्स*

असाइड : इज उत्तर प्रदेश ए फिट केस फार ट्राईफरकेशन

10. मिरियम वेनर, 2013, चेलेजिंग द स्टेट बाई रिप्रोड्यूसिंग इट्स प्रिंसिपल्स : द डिमांड फार गोरखालैंड, एशियन एथ्नोलोजी वोल्यूम 72, संख्या 2, पृष्ठ संख्या 206पर्फोमिंग आइडेंटिटी पोलिटिक्स एंड कल्चर इन नोर्थ–ईस्ट इंडिया एंड बियोंड, नांजान यूनिवर्सिटी, प्रकाशन, नागोया, जापान

11. 29 दिसंबर 2012, द इंडियन, सेपरेट गोरखालैंड डिमांड गैदर्ज मोमेण्टम,

12. मिरियम वेनर, 2013, चेलेजिंग द स्टेट बाई रिप्रोड्यूसिंग इट्स प्रिंसिपल्स : द डिमांड फार गोरखालैंड, एशियन एथ्नोलोजी, वोल्यूम 72, संख्या 2, पृष्ठ संख्या 204, पर्फोमिंग आइडेंटिटी पोलिटिक्स एंड कल्चर इन नोर्थ–ईस्ट इंडिया एंड बियोंड, नांजान यूनिवर्सिटी प्रकाशन, नागोया, जापान

13. कुमारा ब्रज बिहारी, 2012 स्माल स्टेट सिण्ड्रोम इन इंडिया, पृष्ठ सं. 44, कंसेप्ट पब्लिशिंग कंपनी, नई दिल्ली

14. http://timesofindia.indiatimes.com/city/chennai/Ramadoss-reiterates-his-call-for-bifurcation-of TN/articleshow/5332167.cms.

15. अय्यर स्वामीनाथन ए., 20 दिसंबर 2013 द इकोनोमिक टाईम्स, द इकानोमिक केस फार क्रियेटिंग स्माल स्टेट्स

16. अय्यर मणिशंकर, 16 दिसंबर 2013 रेडिफ, आर स्माल स्टेट्स बेटर गवर्न्ड ? ए डिबेट,

17. अग्रवाल जे. सी., अग्रवाल एस. पी., गुप्ता शांति स्वरूप, 2015 उत्तर प्रदेशः पास्ट, प्रेजेंट एंड फ्यूचर, पृष्ठ सं. 354, कंसेप्ट पब्लिशिंग कंपनी, नई दिल्ली

18. नुना शील चंद, 2012 स्पेशियल फ्रेगमेंटेशन आव पालिटिकल बिहेवियर इन इंडियाः ए जियोग्राफिकल पर्सपेक्टिव आन पार्लियामेंटरी इलेक्शन्स, पृष्ठ सं. 249, कंसेप्ट पब्लिशिंग कंपनी , नई दिल्ली

19. गजरानी एस., 2014, हिस्ट्री, रिलिजन एंड कल्चर आव इंडिया, वाल्यूम 8, पृष्ठ सं. 81, ग्यान पब्लिशिंग हाऊस, नई दिल्ली

20. नुना शील चंद, 2012, स्पेशियल फ्रेगमेंटेशन आव पालिटिकल बिहेवियर इन इंडियाः ए जियोग्राफिकल पर्सपेक्टिव आन पार्लियामेंटरी इलेक्शन्स, पृष्ठ सं. 419, कंसेप्ट पब्लिशिंग कंपनी , नई दिल्ली

21. http://www.indianexpress.com/news/Statehood-demand- for-Kutch- gains-momentum/553204.

22. कुमारा ब्रज बिहारी, 2012, स्माल स्टेट सिण्ड्रोम इन इंडिया, पृष्ठ सं. 36, कंसेप्ट पब्लिशिंग कंपनी , नई दिल्ली

23. गजरानी एस., 2014, हिस्ट्री, रिलिजन एंड कल्चर आव इंडिया, वोल्यूम 8, पृष्ठ सं. 128, ग्यान पब्लिशिंग हाऊस, नई दिल्ली

ध्यान योग के साथ संगीत का अविभाज्य सम्बधं

शिवांगी श्रीमाली
शोधार्थी, मोहनलाल सुखाड़िया विश्वविद्यालय, उदयपुर

www.shodhshree.com

शोध सारांश

नाद योग संगीत की दुनिया की योग क्रिया है। इसके अलावा संगीत के कई सुर नाभि से लगाए जाते हैं। इन सुरों को लगाने में नाभी पर जो प्रेशर पड़ता है, उससे सच्चा स्वर तो निकलता ही हैं साथ ही इसमें कपालभाती के ही समान नाभि की एक्सरसाइज भी हो जाती है। योग का मकसद एकाग्रता सिद्ध करना होता है। संगीत के माध्यम से ही यही एकाग्रता प्राप्त होती है। किसी भी प्रकार के व्यायाम के साथ, सांस नियंत्रण आंदोलन का एक महत्वपूर्ण हिस्सा निभाता है। रियाज़ में श्वास का सबसे ज्यादा महत्व है। स्वर की निरंतरता श्वास पर निर्भर करती है। योग की भाषा में इसे ब्रिदिंग एक्सरसाइज कहा जाता है। तबला वादक प्रो. किरण देश कहते हैं शास्त्रीय संगीत में ब्रह्मनाद एक स्थिति होती है जो नाद योग से प्राप्त होती है। नाद योग का सीधा सम्बंध श्वास की निरंतरता से होता है। भारतीय संगीत को उत्कृष्ट माना जाता है और इसकी एक विशाल और समृद्ध परम्परा है। जबकि संगीत आनंदित होता है, सहज दिव्य आनंद है। संगीत का सिद्धांत, इसका ऐतिहासिक सर्वेक्षण, विभिन्न शैलियों, नाद, श्रुति, स्वर, राग, संगीत और रस के नियम, ताल, मात्रा एक बहुत ही विनोदों और सुंदर शैली में विद्यमान है। संगीत और सहजयोग पुस्तक में ध्यान और संगीत का महत्वता के साथ संगीत और सहज योग के बीच महत्वपूर्ण सम्बन्धों को उजागर किया है।

संकेताक्षर : *ध्यान, संगीत, योग, स्वर, नाद, श्रुति स्वर।*

मेरा ध्यान सरल है। ''इसे किसी भी जटिल प्रथाओं की आवश्यकता नहीं हैं।'' ''यह आसान है।'' यह गा रहा है ''यह नृत्य है। यह चुपचाप बैठा है।'' यही संगीत और योग है। मशहूर तबला वादक और गज़ल गायक सलीम अल्लाह वाले बताते हैं जब भी आप सुरों की साधना करते हैं, तो श्वास पर कंट्रोल करना होता है। सांस बढ़ाना और कम करना, ब्रिदिंग एक्सर साइज का पार्ट है, इससे फेफड़े स्वस्थ्य होते हैं। इसके अलावा जब तबले पर अंगुलियाँ थिरकती हैं तो न केवल सुनने वाले को आनंद आता है, बल्कि अंगुलियों के जॉइन्टस कोहनी और हाथों की अन्य मांसपेशियों की भी एक्सर–साइज हो जाती हैं।

रियाज थ्रॉट इंफेक्शन को रोकता है। शरीर में भी तो शारीरिक क्रियाओं के जरिए तन–मन को स्वस्थ बनाने की ही कोशिश की जाती है। संगीत में भी ध्यान लगाना होता है और योग में भी। रागों से जहाँ मन को

शांति मिलती है। वही, यह ब्लड प्रेशर को कंट्रोल करने में भी अपनी भूमिका निभाता है, योग के जरिए भी तो इस तरह की बीमारियों को दूर किया जाता है। बांसुरी वादक अभय फगरे बांसुरी वादन को एक योग क्रिया ही मानते हैं। वे कहते हैं जब बांसुरी बजाई जाती है तो एक्सहेल और इन्टेल जैसी क्रियाएँ होती है। जिसे योग की भाषा में हम प्राणायाम कहते हैं। बांसुरी बजाते समय श्वास कंट्रोल करना होता है और इसे कंट्रोल करने के लिए ध्यान लगाना होता है। योग में भी ध्यान एक क्रिया होती है। संगीत, बिना किसी योगिक एक्सरसाइज के योग के सबसे करीब है। एक बार शास्त्रीय गायक बड़े गुलाम अली खाँ साहब से किसी ने पूछा कि वे इतना सुरीला कैसे गाते हैं, तो उन्होंने जवाब दिया कि हम गाते नहीं हवा को काबू में करने की कोशिश करते है, हवा को काबू में करने की यही कोशिश भी की जाती है।

योग, संगीत से एक्सरसाइज

योग एक्सपर्ट सानिया हर्णे कहती है योग और संगीत का जुड़ाव सारी दुनिया मानती है। संगीत के बिना योग अधूरा है और संगीत भी योग की तरह ही तन और मन दोनों के लिए लाभदायक है। योग करते समय भी संगीत के साथ से शरीर और आत्मा से जुड़ाव तेजी से होता है योग में ध्यान, प्राणायाम, अनुलोम-विलोम, ओम उच्चारण कंठ की कई ऐसी एक्सरसाइज है जो संगीत के जरिए भी की जा सकती है।

ओंकार साधना मतलब कपालभांती

रियाज़ में श्वास का सबसे ज्यादा महत्व है। स्वर की निरंतरता श्वास पर निर्भर करती है। योग की भाषा में इसे ब्रिदिंग एक्सरसाइज कहा जाता है। तबला वादक प्रो. किरण देश कहते हैं शास्त्रीय संगीत में ब्रह्मनाद एक स्थिति होती है जो नाद योग से प्राप्त होती है। नाद योग का सीधा सम्बंध श्वास की निरंतरता से होता है।[1]

नाद योग संगीत की दुनिया की योग क्रिया है। इसके अलावा संगीत के कई सूर नाभि से लगाए जाते हैं। इन सूरों को लगाने में नाभी पर जो प्रेशर पड़ता है, उससे सच्चा स्वर तो निकलता ही हैं साथ ही इसमें कपालभाती के ही समान नाभि की एक्सरसाइज भी हो जाती है। योग का मकसद एकाग्रता सिद्ध करना होता है। संगीत के माध्यम से ही यही एकाग्रता प्राप्त होती है। किसी भी प्रकार के व्यायाम के साथ, सांस नियंत्रण आंदोलन का एक महत्वपूर्ण हिस्सा निभाता है। जैसे-जैसे अभ्यास अधिक सुसंगत हो जाता है, साँस अधिक और नियमित हो जाती है। कोई भी जो थोड़ी देर के लिए योग कर रहा है उसे अपने अभ्यास में अभ्यास का महत्व पता है। एक मुद्रा निष्पादित करते समय सांस पर ध्यान केन्द्रित करने से हम अपने आंदोलनों पर अधिक नियंत्रण प्राप्त कर सकते हैं। हालांकि, हर दिन हमारे शरीर की भिन्नताओं पर ध्यान देना चाहिए।

हम सभी मनुष्य प्राणी हैं, इसका अर्थ है कि जब हम चलते हैं, हम न केवल हमारे पैरों को ले जा रहे हैं, बल्कि हमारी बाहों, हमारी आँखे, हमारी सांसों, हमारे सिर, हमारी घड़ हमारे दिल की धड़कन भी चल रहे हैं। ये सभी आंदोलन एक दिमाग एवं शरीर ताल में एक साथ काम कर रहे हैं। लेकिन अगर आप इसे लयबद्ध रूप से तोड़ देते हैं, तो आप देखेंगे कि आपके पैर थोड़ी अलग गति में आगे बढ़ रहे हैं, फिर आपकी बाँहे और आपकी साँस अभी तक एक और ही लय में है हम सभी कोशिश किए बिना ही Polyrhythmic हैं।

डायोफ्रामैट्रिक साँस जो ''महासागर'' ध्वनि बनाती है। आप किस प्रकार का अभ्यास कर रहे हैं, इस पर निर्भर करते हुए, संगीत के साथ विभिन्न चरणों का समर्थन करना चाहिए।[2]

वर्ड म्यूजिक डे

योग और संगीत में सम्बन्ध-आज विश्व योग के साथ ही वर्ल्ड म्यूजिक डे भी है। संगीत दिवस 1982 से मनाया जाता रहा है। इन दोनों में केवल तारीखों का कहीं सम्बन्ध नहीं बल्कि इन दोनों के

बीच एक ऐसा नाता है जो इन्हें हमसे गहराई से जोड़ता है। योग और संगीत को मन की शांति और अध्यात्म के लिए जरूरी माना गया है।

मेडिटेशन और संगीत दोनों ही खुद को केन्द्रित करने और दिनभर की थकान को दूर करने लिए दवा के समान है। म्यूजिक मेडिटेशन का अहम हिस्सा है, जो आपके मन–मस्तिष्क को शांत और शुद्र करने में सहायक है। प्राणायाम के अभ्यास में एक–एक श्वास एक लय में लेते हैं, जो आपके मन को शांत करती है। ठीक उसी तरह संगीत की ध्वनियाँ भी आपके कानों से होती हुई मस्तिष्क में पहुँच कर आपको मानसिक शांति देती है। संगीत के साथ योग कर आप एक अलग अनुभव करेंगे।[3]

योग हमारे शरीर के अंदर छः नलिका को संदर्भित करता हैं। उनमें 'विशुद्ध चक्र' (16 पंखुड़ियों के साथ) स्वर (आवाज) से जुड़ा हुआ हैं संगीत में यह आवाज सबसे महत्वपूर्ण कारक हैं योग के विज्ञान के अनुसार, इस स्वर को वाक कहा जाता है, जिसमें चार प्रकार हैं जैसे वैखारी मध्यमा, पश्यंतर और पैरा। उनमें, पहली एक वैखारी मानव आवाज पैदा करती हैं।

उनमें, मंत्र योग विभिन्न प्रकार के शब्दों के समूहों के आधार पर योग की एक शाखा है, जिसमें अंतर्निहित शक्तियाँ हैं। हठ योग कुंडलिनी (गुप्त सर्प शक्ति), योगसानास, मुद्रा (उंगलियों की विभिन्न स्थितियों), प्राणायाम और नादनुसंधान (ध्वनि पर ध्यान केंद्रित) के उत्तेजना के माध्यम से शरीर को शुद्ध करने की कोशिश करता है। लय योग चिकित्सक को भगवान प्राप्त करने में मदद करता है, जिसमें एक बिंदू (या सूक्ष्म बिंदू) प्रभावशाली होता हैं। अंतिम राज योग ने जीवन जीने के लिए कुछ मौलिक सिद्धांत निर्धारित किए हैं, समाधि के अंतिम उद्देश्यों को प्राप्त करना है। क्योंकि प्रत्येक संगीतकार को संगीत निर्माण के लिए अत्यंत मानसिक एकाग्रता की आवश्यकता है।[4]

प्राणायाम (नियंत्रित श्वास), प्रतिहार (इंद्रियों पर नियंत्रण), धारण (एकाग्रता), ध्यान (ध्यान) और समाधि (गहन ध्यान)। योग में यह समझाया गया है कि अष्टांग योग का सख्त और लगातार पालन चिकित्सक को विभिन्न चमत्कारी शक्ति प्रदान करता है।

सृजन, संचरण और स्वागत के रूप में संगीत में तीन मुख्य पहलू हैं। शब्दा (एक शब्द) सुनवाई की प्रक्रिया में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है, जिसका आकाश (आकाश) के रूप में इसका मूल तत्त्व है। इसके अलावा, यह शब्द नाद बनाता है (जिसका मतलब ध्वनि उत्पन्न करना है)। इस नाद के दो प्रकार हैं जैसे आहत (मारा) और अनाहत (अन–मारा)। हालांकि जब हमने कुछ मारा तो पहली बार बहुत आसानी से सुना जा सकता है, हालांकि दूसरा योगी द्वारा ही पहचाना जाता है। बाद में आहत ध्वनि (एक लय या धुन) बनाती है, जिसे मृदंग जैसे संगीत वाद्ययंत्रों में स्पष्ट रूप से सुनाया जाता है। आहत और उपकरण से उत्पन्न ध्वनियों के बाद, वर्ण है, जो दो हिस्सों में विभाजित होती है, वर्ण संगीत में, इस वर्ण में चार वर्गीकरण हैं जैसे आरोही अवरोही और संचारी आभोग। अंत में उदात्त और अनुदात्त स्वर अब, हम स्पष्ट रूप से समझ सकते हैं कि संगीतकार को संगीत बनाने के लिए आहत ध्वनि की आवश्यकता होती है और केवल योगी अनाहत ध्वनि को पहचानता है, क्योंकि एक सामान्य व्यक्ति के पास सुषुम्ना नाद के कारण शारीरिक सीमा होती है।

यह नाद सात नोटों में बांटा गया है या यह केवल ओमकार के रूप में ही बना हुआ है। नादयोग और लययोग दोनों नाद के समर्थन अभ्यास। जब योग का व्यवसायी एक निश्चित उन्नत चरण तक पहुंच जाता है, तो वह निरंतर आवाज सुनता है जैसे घंटी से उत्पन्न होता है, अन्य शारीरिक अनुभवों के साथ भी।

योग का विज्ञान भी पाँच गवाहों का वर्णन करता है जो मानव गले से पूर्ण, सूक्ष्म, बहुत सूक्ष्म और कृत्रिम नहीं होते हैं। इसके अलावा नाभि, दिल, गले, माथे और सिर का निर्माण मंद्र (कम), मध्य (मध्य) और तार (उच्च) से होता है। फिर भी योग से संबंधित प्राणायाम का संबंध संगीत के साथ कैसे है ?' हाँ, इसका संगीत के साथ भी संबंध है। आवाज़ के प्रक्षेपण में, गायक को सांस लेने पर नियंत्रण की आवश्यकता होती है।

भारतीय संगीत को उत्कृष्ट माना जाता है और इसकी एक विशाल और समृद्ध परम्परा है। जबकि संगीत आनंदित होता है, सहज दिव्य आनंद है। संगीत का सिद्धांत, इसका ऐतिहासिक सर्वेक्षण, विभिन्न शैलियों, नाद, श्रुति, स्वर, राग, संगीत और रस के नियम, ताल, मात्रा एक बहुत ही विनोदों और सुंदर शैली में विद्यमान है। संगीत और सहजयोग पुस्तक में ध्यान और संगीत का महत्वता के साथ संगीत और सहज योग के बीच

महत्वपूर्ण सम्बन्धों को उजागर किया है। कैसे संगीत पृथ्वी पर स्वर्ग की भावना पैदा कर सकता है, कैसे मन को शांति, शुद्र, बीमारी तनाव दबाव और दैनिक जीवन के तनाव से मुक्त किया जा सकता है। इसी के साथ संगीत के वास्तविक अर्थ का अनुभव एवं आत्मा की खुशी के साथ संगीत के सम्बन्ध को उजागर करते हुए सहजयोग और संगीत के उपचारात्मक पहलुओं की खोज में संगीत और ध्यान, चक्र शुद्धि के लिए वादी–संवादी विधि, सहज योग में मंत्र, राग को कैसे पहचाने, संगीत और दवा, राग और दवा, आवाज़ प्रशिक्षण और के संगीत एवं योग आदि को विवेचित किया गया है।[6]

सन्दर्भ ग्रंथ सूची

1. *अल्का जसपाल, भोपाल, मध्यप्रदेश, पत्रिका, m.patrika.com*
2. *रिच Mangicaro ताल में श्वास : योग और संगीत के बीच सम्बंध, Elephant Journal*
3. *दैनिक भास्कर, जबलपुर–नागपुर, ग्रुप, Bhaskarhindi.com*
4. *प्रतिक काशल्लु : योग के साथ संगीत का संबंध www.sjrmanttra.com*
5. *ट्रसीकेली योग संगीत के लाभ, Sercontent.com*
6. *अरुण आपटे : 1 जनवरी 1998 संगीत और योग, पब्लिशर : रिताना बुक्स, नई दिल्ली, ISBN No. 8185250200, 9788185250205*

दादू साहित्य : हिन्दू मुस्लिम एकता का प्रतिरूप

भगवान सहाय शर्मा
शोधार्थी, महर्षि दयानंद सरस्वती विश्वविद्यालय, अजमेर

www.shodhshree.com

शोध सारांश

यह बड़े दुःख का विषय हैं, जहाँ एक ओर हम अपने आप को आधुनिक मानते हैं वहीं दूसरी और भारत वर्ष में आए दिन हिन्दू–मुस्लिम झगड़े होते रहते हैं। देश का बड़ा दुर्भाग्य है कि यहाँ धर्मगत, जातिगत, वर्गगत, भाषागत ईर्ष्या व द्वेष की भावना व्यक्तियों में भरी पड़ी हैं एवं यह समस्या वर्तमान दौर में एक ज्वलामुखी की भांति सम्पूर्ण वातावरण को विदग्ध करती रहती हैं। आज मानवीय मूल्य व विश्व मान्यताऐं परिवर्तित हो रही हैं। देश से देश की दूरियाँ कम होती जा रही है और विश्व के सभी मानव एक दुसरे के अति समीप आते जा रहे है। इसलिए, आज दिलों की दूरियों को समाप्त कर मानव धर्म अपनाने और समस्त विश्व को, एक परिवार के रूप में लाने की आवश्यकता हैं। ऐसे समय में संत दादूदयाल का साहित्य महत्वपूर्ण हैं जिन्होंने अपने काव्य व विचारधारा के माध्यम से इस हिंदू–मुस्लिम साम्प्रदायिकता की खाई को पाटने का प्रयास किया एवं समाज को सही दिशा प्रदान की है।

संकेताक्षर : *दादू, साम्प्रदायिकता, सतं साहित्य, हिन्दु मुस्लिम एकता।*

वर्तमान साम्प्रदायिक संकीर्णता के विषम वातावरण में संत साहित्य की उपादेयता बहुत हैं। संतों में दादूदयाल अपना महत्वपूर्ण स्थान रखते है। संत दादू एक सफल साधक, प्रभावशाली उपदेशक एवं युग– दृष्टा के रूप में विद्यमान रहे है। संत दादू का काव्य विचारों की भव्यता और हृदय की तन्मयता तथा औदार्य से परिपूर्ण है। इन्होनें अपने काव्य के सहारे अपने विचारों को भारतीय धर्म निरपेक्षता के आधार को युग–युगान्तर के लिए अमरता प्रदान की हैं एवं दादू ने धर्म को हमेशा मानव धर्म के रूप में स्वीकार किया है। सत्य और अहिंसा के समर्थक दादू हृदय के विचार सागर एवं वाणी में अभूतपूर्व प्रभाव लेकर अवतरित हुए।

आज से लगभग पांच सौ वर्ष पूर्व संत दादूदयाल नें साम्प्रदायिकता की जिस समस्या की और समाज का ध्यान दिलाया था, वह समस्या आज भी प्रस्तुत ज्वालामुखी की भांति भयंकर बनकर देश के वातावरण को विदग्ध करती रहती है। देश का यह बड़ा दुर्भाग्य है कि यहाँ धर्मगत, जातिगत और भाषागत ईर्ष्या व द्वेष की भावना समय असमय भयंकर ज्वालामुखी के रूप में भड़क उठती है एवं इसमें कितने ही व्यक्ति हताहत होते हैं, लाखों–करोड़ों की सम्पति नष्ट होती है। भय त्रास और अशांति का प्रकोप होता है। विकास की गती अवरुद्ध हो जाती हैं।

दादू के अनुसार हिन्दू–मुसलमान में शारीरिक दृष्टि में कोई भेद नहीं होता है। भेद केवल विचारों और भावों का है एवं इन विचारों और भावों के भेद को बल धार्मिक कट्टरता ओर साम्प्रदायिकता से मिलता है। हृदय की चर्मानुभूती की दशा में राम और रहीम में कोई अंतर नहीं होता। अंतर केवल उन माध्यमों से है जिनके द्वारा वंहा तक पहुचने का प्रयत्न किया जाता है। इसलिए दादू ने हिन्दू एवं मुसलमान दोनों ही धर्म के अनुयायियों को भ्रमित माना हैं।

दादू दोंन्यो भरम है, हिन्दू तुरक गँवार।
जे दुहुवाँ थे रहित है, सो गह तत्व विचार।।[1]

दादू कहते है यदि सारी दुनिया हिन्दू और मुसलमान में बट़ी हुई है तो यह धरती, आसमान, पवन, पानी, चंद्रमा, सूर्य किसके पंथ में हैं ? जिस प्रकार पानी के अनेक नाम रख दिए जाते हैं, फिर भी पानी तो एक ही है, इसी प्रकार जीव एक है। लोगों ने उसके नाम अलग-अलग रख दिए है।

दादू ये सब किसके पंथ में, धरती अर असमान।
पांणी पवन दिन राति का, चंद सूर रहिमान।।[2]

ईश्वर एक है और वह संसार के कण-कण में व्याप्त है। कोई उसको राम कहकर पुकारता है कोई अल्लाह कहकर पहचानता है, लेकिन उस 'धुनिया' का रहस्य कोई नहीं जान पाता। यह ईश्वर कीट पतंगों में भी है, जल और थल में भी है-

को स्वामी को सेष कहै, धुनिये का मरम न कोई लेह।
कोई राम कोई अलह सुनावे, अलह राम का भेद न पावे।
को हिन्दू को तुरक करि मांने, हिन्दू तुरक की षवरि न जाने।
यहु सब करनी दुन्यँ वेद, समझि परी तब पाया भेद।
दादू देषे आतम एक, कहिवा सुनिवा अनंत अनेक।[3]

हिन्दू हो या मुसलमान। सबको अपने-अपने कर्मो का फल मिलने वाला है, इन दोनों के बीच से साधुओं का रास्ता निकलता है। जहाँ ईश्वर रहता है, वहाँ न तो हिन्दुओं का देहुरा है और न मुसलमानों की मस्जिद ही है। दोनों को फटकारते हुए दादू कहते है-

दादू हिन्दू मारग कहें हमारा, तुरक कहें रह मेरी।
कोंण पंथ है कहौ अलष का, तुम तौ ऐसी हेरी।।
षंड षंड करि ब्रह्म कँ पषी पषी लिया बाँटी।
दादू पूरण ब्रह्म तजि, बंधे भ्रम की गाँठी।।[4]

दादू ने हिन्दुओं के ब्रह्मा, विष्णु, महेश और मुसलमानों के अल्लाह में किसी तरह का भेद स्वीकार नहीं किया है। इनके अनुसार सब एक ही परमात्मा के प्रतिरूप है, इसलिए हमें भी आपस में सद्भावना से रहना चाहिए।

ब्रह्मा विष्णु महेश का, कौन पंथ गुरुदेव।
सांई सिरजनहार तँ, कहिये अलख अभेद।।[5]
मुहम्मद किसके दिन में, जिब्राईल किस राह।
इनके मुर्शिद पीर की, कहिये एक अल्लाह।।[6]

समाज में एकरूपता तभी संभव है जब जातिभेद, वर्णभेद, वर्गभेद, नहीं हो। संतो ने धर्मगत एवं जातिगत भेद में विश्वास नहीं रखा, सदाचार ही सन्तो के लिए महत्वपूर्ण रहा है। इन्होने समाज में एकता, समानता तथा धर्मनिरपेक्षता की भावनाओं का प्रचार-प्रसार किया। संत दादू धर्म के नाम पर होने वाले व्यर्थ झगड़ों और हिन्दू-मुसलमानों की परस्पर विरोधी भावनाओं का खुलकर विरोध करने वाले कबीर का उदाहरण देकर भी समझाने का प्रयास करते है।

कबीर विचारा कह गया, बहुत भांति समझाइ।
दादू दुनिया बावरी, ताके संग न जाई।।[7]

दादू विश्व-धर्म-मानवता के समर्थक ज्ञान, भक्ति, वैराग्य तथा मानव धर्म के प्रेरक थे। इन्होने कहा की मनुष्य अगर ईश्वर को मंदिर-मस्जिद में ढँढने की अपेक्षा अपनी अंतरात्मा में ढूढें तो वह उस परमात्मा की प्राप्ति कर सकता हैं।

दादू जिन यहु दिल मंदिर किया, दिल मंदिर में सोई।
दिल माहीं दिलदार है, और न दूजा कोई।।[8]

वर्तमान समय में यह धार्मिक फूट देश को बर्बाद कर रही है इसलिए बुद्धिजीवियों का परम कर्तव्य है कि एकता, समानता, धर्मनिरपेक्षता और भ्रातत्व भावना का समाज में अधिकाधिक प्रचार-प्रसार करें। आज मानवीय मूल्य एवं विश्व मान्यताऐं परवर्तित हो रही है। देश से देश की दूरियां कम होती जा रही है और विश्व के सभी मानव एक दुसरे के अति समीप आते जा रहे है। इसलिए आज दिलों की दूरियों को समाप्त कर मानव धर्म अपनाने और समस्त विश्व को एक परिवार के रूप में लाने की आवश्यकता है।

संत दादू महान है। उनकी विचारधारा महान हैं। महानता के सर्वोच्च शिखर पर पहुचकर दादू ईर्ष्या, द्वेष, छूत-अछूत, उंच-नीच की संकीर्ण भावनाओं से दूर होकर भारतीय धर्म निरपेक्षता के प्रतीक बनकर उच्चादर्श तक पहुच जाते है। साम्प्रदायिक सद्भावना के स्वरूप बन जाते हैं।

सर्वे भवन्तु सुखिनः, सर्वे सन्तु निरामया।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु, माँ कश्चिद दुःख भाग भवेत।।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1 *श्री दादूवाणी टीकाकार मंगलदास स्वामी, पृष्ठ 287 सन्त बाबा रामपाल दास सेवा संस्थान (ट्रस्ट) सन् 2018*

2 *श्री दादूवाणी टीकाकार मंगलदास स्वामी, पृष्ठ 285 सन्त बाबा रामपाल दास सेवा संस्थान (ट्रस्ट) सन् 2018*

3. दादू दयाल, रामबक्ष, पृष्ठ 33 साहित्य अकादमी, सन् 2014
4. दादू दयाल, रामबक्ष, पृष्ठ 33 साहित्य अकादमी, सन् 2014
5. श्री दादूवाणी टीकाकार मंगलदास स्वामी, पृष्ठ 285 सन्त बाबा रामपाल दास सेवा संस्थान (ट्रस्ट) सन् 2018
6. श्री दादूवाणी टीकाकार मंगलदास स्वामी, पृष्ठ 286 सन्त बाबा रामपाल दास सेवा संस्थान (ट्रस्ट) सन् 2018
7. श्री दादूवाणी टीकाकार मंगलदास स्वामी, पृष्ठ 296 सन्त बाबा रामपाल दास सेवा संस्थान (ट्रस्ट) सन् 2018
8. श्री दादूवाणी टीकाकार मंगलदास स्वामी, पृष्ठ 350 सन्त बाबा रामपाल दास सेवा संस्थान (ट्रस्ट) सन् 2018

महिलाओं की परिवर्तित प्रस्थिति में इलेक्ट्रॉनिक मीडिया की भूमिका : एक समाजशास्त्रीय अध्ययन (रानीखेत तहसील के चिलियानौला क्षेत्र के विशेष संदर्भ में)

www.shodhshree.com

डॉ. आनन्द प्रकाश सिंह
एसोसिएट प्रोफेसर, एम. बी. जी. पी. जी. कॉलेज, हल्द्वानी (उत्तराखण्ड)

ज्योति जोशी
शोध छात्रा, बी. जी. पी. जी. कॉलेज, हल्द्वानी (उत्तराखण्ड)

शोध सारांश

राष्ट्र की अर्थव्यवस्था, सामाजिक संरचना और उससे सम्बन्धित परिप्रेक्ष्य का मूल्यांकन वहॉ की महिलाओं से होता है। महिलाऐं हमारे देश की आबादी का लगभग आधा हिस्सा है इसलिए राष्ट्र विकास के महान कार्य में महिलाओं की भूमिका तथा योगदान को पूरी तरह सही परिप्रेक्ष्य में रखकर ही राष्ट्र निर्माण के कार्य को समझा जा सकता है। वर्तमान समय में ग्रामीण क्षेत्रों में आधुनिकीकरण की प्रक्रिया तीव्र गति से चल रही है। आधुनिक इलेक्ट्रॉनिक वस्तुओं को अधिक से अधिक मात्रा में ग्रामीण महिलाऐं खरीद रही है। आधुनिक इलेक्ट्रॉनिक वस्तुओं का उपभोग सामाजिक-आर्थिक सम्पन्नता एवं प्रतिष्ठा को प्रदर्शित करता है। इलेक्ट्रॉनिक मीडिया के कारण महिलाओं के जीवन स्तर में गुणात्मक परिवर्तन आए है। इलेक्ट्रॉनिक मीडिया ने महिला उद्यमियों एवं कृषि क्षेत्र में कार्यरत महिलाओं के जीवन स्तर में सुधार कर उन्हें आर्थिक रुप से सशक्त किया है, महिलाओं के लिए चल रही योंजनाओं, ऋण सुविधाओं आदि की जानकारियां इलेक्ट्रॉनिकमीडिया के द्वारा उन तक पहुँच रही है। इलेक्ट्रॉनिक मीडिया से न केवल महिलाओं के सामान्य व्यवहार, उनकी आदतों और उनके दृष्टिकोण में परिवर्तन आया है, वरन् उनमें आत्मवि वास तथा समसामयिक घटनाओं के प्रति जागरुकता आयी है। मीडिया ने उन्हें स्वावलम्बी बनाने, उनकी आर्थिक, राजनीतिक स्थिति सुधारने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है।

***संकेताक्षर** : महिला, इलेक्ट्रॉनिक मीडिया, प्रस्थिति, रानीखेत, जीवन शैली।*

महिलाऐं हमारे देश की आबादी का लगभग आधा हिस्सा है इसलिए राष्ट्र विकास के महान कार्य में महिलाओं की भूमिका तथा योगदान को पूरी तरह सही परिप्रेक्ष्य में रखकर ही राष्ट्र निर्माण के कार्य को समझा जा सकता है। दुनिया में ऐसा कोई देश नहीं है जहां महिलाओं को हाशिऐ पर रखकर आर्थिक विकास संभव हुआ है। केन्द्र व राज्य सरकारों द्वारा महिलाओं एवं बालिकाओं के लिए समय-समय पर अनेक कल्याणकारी योजनाऐं जैसे-निःशुल्क और अनिवार्य शिक्षा व्यवस्था, साइकिल-लैपटॉप देना, अतिरिक्त पोषाहार वितरण, स्वास्थ्य जांच, रोजगार उन्मुखी कौशल प्रशिक्षण, तथा स्वयं सहायता समूह को बढ़ावा देना आदि के माध्यम से महिलाओं को सहायता दी जा रही है। ऐसे अनेक प्रयासों के फलस्वरुप महिलाओं में चेतना आयी है। अब वे पहले के मुकाबले अपने अधिकारों के प्रति सजग हो गई है जिसमें इलेक्ट्रॉनिक मीडिया माध्यमों की भूमिका महत्वपूर्ण रही है।[1]

वर्तमान युग दूरसंचार एवं सूचना क्रान्ति का युग है जिसमें इलेक्ट्रॉनिक मीडिया की विशेष भूमिका है। इलेक्ट्रॉनिक मीडिया का उपयोग करके देश के ग्रामीण विकास को नवीन आयाम दिया जा सकता है। संचार माध्यम सरकार एवं जनता के मध्य महत्वपूर्ण कड़ी के रुप में कार्य करते है। वे नीति निर्धारकों द्वारा बनाई गई योजनाओं, नीतियों, कानूनों इत्यादि के विषय में सूचनाऐं लोगों तक पहुँचाते है। इलेक्ट्रॉनिक मीडिया के प्रभाव से ग्रामीण महिलाऐं भी अछूती नहीं है। उनके सामाजिक, सांस्कृतिक तथा राजनीतिक व्यवहार को मीडिया निर्धारित तथा निर्देशित कर रहा है। इलेक्ट्रॉनिक मीडिया के कारण महिलाओं के जीवन स्तर में गुणात्मक परिवर्तन आए है।[2]

इलेक्ट्रॉनिक मीडिया ने महिला उद्यमियों एवं कृषि क्षेत्र में कार्यरत महिलाओं के जीवन स्तर में सुधार कर उन्हें आर्थिक रुप से सशक्त किया है, महिलाओं के लिए चल रही योंजनाओं, ऋण सुविधाओं आदि की जानकारियां इलेक्ट्रॉनिक मीडिया के द्वारा उन तक पहुँच रही है। इलेक्ट्रॉनिक मीडिया से न केवल महिलाओं के सामान्य व्यवहार, उनकी आदतों और उनके दृष्टिकोण में परिवर्तन आया है, वरन् उनमें आत्मविश्वास तथा समसामयिक घटनाओं के प्रति जागरुकता आयी है। मीडिया ने उन्हें स्वावलम्बी बनाने, उनकी आर्थिक, राजनीतिक स्थिति सुधारने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है।[3]

रेडियो, टेलीविजन, मोबाइल फोन, आदि द्वारा विज्ञापित विज्ञापनों का सामाजिक, राजनीतिक व्यवस्था, और सांस्कृतिक मूल्यों पर गहरा प्रभाव पड़ रहा है। विज्ञापनों द्वारा समाज परिवर्तित हो रहा है। आज विज्ञापनों का प्रभाव गाँवों पर भी पड़ रहा है। साक्षरता मिशन, परिवार कल्याण, टीकाकरण, स्वच्छता अभियान, कृषि मेला आदि विषयों पर विज्ञापन दिये जाते है। 'छोटा परिवार सुखी परिवार' जैसे विज्ञापन लोगों को परिवार नियोजन के प्रति सचेत करते है और देश में जनसंख्या वृद्धि रोकने में सहायता करते है। जनकल्याण विभाग द्वारा प्रसारित किये जाने वाले विज्ञापनों में 'सावधानी हटी दुर्घटना घटी', 'शराब घर का विनाश', इत्यादि ऐसे अनेक विज्ञापन है जिनका उद्देश्य जनता को जागरुक बनाना है।

साहित्य का पुरावलोकन

रश्मि त्रिवेदी (2009)[4] ने लिखा है कि, "जनसंचार माध्यम समाज में जागरुकता पैदा करके व चेतना का प्रसार करके सामाजिक संबंधों को संगठित करता है। अतः व्यक्तियों में स्वस्थ मूल्यों का सम्प्रेषण करने में, सामाजिक नियंत्रण में तथा सामाजिक परिवर्तन को अपेक्षित दिशा प्रदान करने में जनसंचार माध्यमों की सकारात्मक भूमिका अपेक्षित है।

संदीप कुमार सिंह (2010)[5] ने बताया है कि, "नए परिवेश में संचार व्यवस्था द्वारा नारी के विविध आयामों का समावेश हुआ है। आज की नारी कम्प्यूटर पर महारत हासिल कर देश दुनिया को सेवायें दे रही है। महिलाओं को सामाजिक स्तर पर ही नही बल्कि राजनैतिक, आर्थिक क्षेत्रों में भी महत्वपूर्ण उपलब्धि मिल रही है।

आरती रावत (2012)[6] ने अपने अध्ययन में पाया कि दूरदर्शन के प्रभाव से परिवार के सदस्यों की जीवन शैली प्रभावित हुई है, जिसमें व्यक्ति के रहन–सहन, शिक्षा, मूल्यों, खानपान, वेश–भूषा आदि पर प्रभाव दिखाई देता है। दूरदर्शन के प्रभाव से भारतीय संस्कृति भी अछूती नही है। भारतीय परम्परागत मूल्यों और मान्यताओं में परिवर्तन हो रहा है।

ओ.पी.मिश्रा एवं छाया तिवारी (2013)[7] ने लिखा है कि, वर्तमान समय में महिलाओं में आई चेतना के फलस्वरुप वे अपने अधिकारों के प्रति सजग हुई है। इसमें मीडिया की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। जनसंचार माध्यमों ने महिलाओं को केवल उनके अधिकारों के विषय में ही जागरुक नही किया है, वरन् उन्हें स्वावलम्बी बनाने, उनकी आर्थिक–राजनीतिक स्थिति सुधारने में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है।

शोध प्रारुप एवं प्रतिदर्श–प्रस्तुत शोध पत्र रानीखेत तहसील के चिलियानौला क्षेत्र के विशेष संदर्भ में है। यह रानीखेत तहसील से 5 किमी. की दूरी पर स्थित एक ग्रामीण क्षेत्र है। प्रस्तुत अध्ययन में तथ्यों की व्याख्या एवं विश्लेषण के लिए वर्णनात्मक शोध प्रारुप का प्रयोग किया गया है। प्रतिदर्श हेतु उद्देश्यपूर्ण पद्धति द्वारा 60 ग्रामीण महिलाओं को अध्ययन हेतु चुना गया है। प्राथमिक तथ्यों को संकलित करने के लिए असहभागी अवलोकन एवं साक्षात्कार अनुसूची तथा द्वितीयक तथ्यों के संकलन के लिए विभिन्न पुस्तकों, शोध पत्र–पत्रिकाओं आदि का प्रयोग किया गया है।

उद्देश्य

1. महिलाओं की बदलती जीवनशैली में इलेक्ट्रॉनिक मीडिया के प्रभाव का अध्ययन करना।

2. महिला सशक्तिकरण में इलेक्ट्रॉनिक मीडिया की भूमिका का अध्ययन करना।

उपलब्धियाँ

अध्ययन की प्रमुख उपलब्धियाँ निम्नानुसार है–

तालिका संख्या–1

इलेक्ट्रॉनिक मीडिया के उपलब्ध संसाधनों में सर्वाधिक उपयोग

क्र.सं.	प्रत्युत्तर	आवृत्ति	प्रतिशत
1	रेडियो	02	03.33
2	टेलीविजन	21	35.00
3	मोबाईल फोन	30	50.00
4	कम्प्यूटर	02	03.33
5	उपरोक्त सभी	05	08.34
	कुल योग	60	100

तालिका संख्या 1 में इलेक्ट्रॉनिक मीडिया के उपलब्ध संसाधनो के सर्वाधिक उपयोग के संदर्भ में उत्तरदाताओं से प्रत्युत्तर प्राप्त किया गया, सर्वाधिक 50 प्रतिशत उत्तरदाताओं का मानना है कि वे मोबाईल फोन का प्रयोग सबसे ज्यादा करते है, 35 प्रतिशत का मानना है कि वे टेलीविजन का उपयोग करते है, 3.33 प्रतिशत का मानना है कि वे कम्प्यूटर का प्रयोग करते है, 8.34 प्रतिशत का मानता है कि वे उपरोक्त सभी साधनों का प्रयोग करते है, शेष 3.33 प्रतिशत का मानना है कि वे रेडियो का प्रयोग करते है। अध्ययन से यह ज्ञात होता है कि ग्रामीण क्षेत्रो में भी इलेक्ट्रॉनिक जनसंचार माध्यम धीरे–धीरे प्रयोग मे लाये जा रहे है। रेडियो जैसे प्राचीन इलेक्ट्रॉनिक माध्यम का अस्तित्व वर्तमान में भी ग्रामीण क्षेत्रों में विद्यमान है। इलेक्ट्रॉनिक मीडिया के आधुनिक साधनों का प्रयोग कर ग्रामीण महिलाऐं न केवल स्वयं बल्कि अपने परिवार एवं समाज का भी विकास कर रही है।

तालिका संख्या–2
इलेक्ट्रॉनिक मीडिया के उपलब्ध संसाधनों का प्रतिदिन उपयोग

क्र.सं.	प्रत्युत्तर	आवृत्ति	प्रतिशत
1	1 घण्टे	17	28.33
2	2 घण्टे	21	35.00
3	3 घण्टे	08	13.33
4	3 घण्टे से ज्यादा	14	23.33
	कुल योग	60	100

तालिका संख्या–2 में इलेक्ट्रॉनिक मीडिया के साधनों के प्रतिदिन उपयोग के संदर्भ में उत्तरदाताओं से प्रत्युत्तर प्राप्त किया गया। सर्वाधिक 35 प्रतिशत उत्तरदाताओं का मानना है कि वे प्रतिदिन 2 घण्टे इलेक्ट्रॉनिक मीडिया के साधनों का प्रयोग करते है, 28.33 प्रतिशत 1 घण्टे, 23.34 प्रतिशत 3 घण्टे से ज्यादा तथा शेष 13.33 प्रतिशत का मानना है कि वे 3 घण्टे उपयोग करते है। अध्ययन से प्राप्त ऑकड़ों से स्पष्ट होता है कि इलेक्ट्रॉनिक मीडिया के साधनों की हमारे जीवन में पैठ धीरे–धीरे बढ़ते जा रही है, व्यक्ति अपने दिनचर्या का अधिक से अधिक समय इन साधनों के प्रयोग में व्यतीत कर रहा है।

तालिका संख्या–3
इलेक्ट्रॉनिक मीडिया के साधनों का दैनिक जीवन में कार्य

क्र.सं.	प्रत्युत्तर	आवृत्ति	प्रतिशत
1	तनाव से मुक्ति	12	20.00
2	समय बिताने के लिए	16	26.67
3	व्यक्तित्व विकास के लिए	19	31.67
4	समस्याओं से ध्यान हटाने के लिए	13	21.66
	कुल योग	60	100

तालिका संख्या 3 इलेक्ट्रॉनिक मीडिया के साधनों का दैनिक जीवन में कार्य के संदर्भ में है। 20 प्रतिशत ग्रामीण महिलाऐं तनाव मुक्ति हेतु, 26.67 प्रतिशत समय बिताने के लिए, 31.67 प्रतिशत व्यक्तित्व विकास के लिए, 21.66 प्रतिशत समस्याओं से ध्यान हटाने के लिए कार्य को मानती है। ग्रामीण महिलाओं का मानना है कि उन्हें तनाव से मुक्ति मिलती है जिसके लिए वह इलेक्ट्रॉनिक मीडिया के माध्यमों द्वारा प्रसारित नाटकों, नृत्यों, गानों, को देखती एवं सुनती है। समय बिताने के लिऐ वह, नाटकों के साथ–साथ फैशन सम्बन्धित कार्यक्रम, जागरूकता सम्बन्धी कार्यक्रम आदि देखती है। व्यक्तित्व विकास एवं समस्याओं से ध्यान हटाने के लिऐ महिलाऐं इलेक्ट्रॉनिक मीडिया के साधनों के माध्यम से व्यक्तित्व विकास सम्बन्धित कार्यक्रम देखती है। नाटकों, गानों, फिल्मों एवं अन्य कार्यक्रमों द्वारा अपनी दैनिक समस्याओं से अपना ध्यान हटाती है। ज्ञान व शिक्षा की प्राप्ति के लिए वह मीडिया द्वारा प्रसारित विज्ञापनों एवं कार्यक्रमों (सर्वशिक्षा अभियान, परिवार नियोजन, पल्स पोलियो अभियान, एड्स जागरूकता कार्यक्रम, स्वास्थ्य सम्बन्धित कार्यक्रम (कल्याणी) का प्रयोग करती है।

तालिका संख्या–4
इलेक्ट्रॉनिक मीडिया के साधनों द्वारा जीवन शैली में परिवर्तन

क्र.सं.	प्रत्युत्तर	आवृत्ति	प्रतिशत
1	सहमत	51	85
2	असहमत	03	05
3	कह नही सकते	06	10
	कुल योग	60	100

तालिका संख्या 4 से स्पष्ट होता है कि 85 प्रतिशत ग्रामीण महिलाऐं इलेक्ट्रॉनिक मीडिया द्वारा जीवन शैली में परिर्वतन से सहमत है। 5 प्रतिशत असहमत तथा 10 प्रतिशत कह नही सकते है। निष्कर्षतः अधिकांश ग्रामीण

महिलाओं के जीवन में परिवर्तन हुआ है। ग्रामीण महिलाओं के रहन–सहन के स्तर, खान–पान, व्यक्तित्व–व्यवहार, मनोवृत्तियों में इसका स्पष्ट प्रभाव दिखायी देता है।

तालिका संख्या–5

इलेक्ट्रॉनिक मीडिया द्वारा रहन–सहन के स्तर में परिवर्तन

क्र.सं.	प्रत्युत्तर	आवृत्ति	प्रतिशत
1	आधुनिक सुविधाओं से युक्त घरों का प्रयोग	41	68.33
2	व्यक्तित्व व्यवहार में परिवर्तन	12	20.00
3	परम्परागत व्यवसायों का ह्रास	07	11.67
	कुल योग	60	100

तालिका संख्या 5 इलेक्ट्रॉनिक मीडिया द्वारा महिलाओं के रहन–सहन के स्तर में परिवर्तन को स्पष्ट करती है। 68.33 प्रतिशत महिलाऐं आधुनिक सुविधाओं से युक्त घरों का प्रयोग, 20 प्रतिशत व्यक्तित्व व्यवहार में परिर्वतन, 11.67 प्रतिशत परम्परागत व्यवसायों का ह्रास को बताती है। ऑकड़ों द्वारा स्पष्ट है कि सर्वाधिक उत्तरदाताओं के रहन–सहन के स्तर में बदलाव हुआ है। ग्रामीण महिलाऐं आधुनिक सुविधाओं से युक्त घरों को प्राथमिकता दे रही है जिसमें मॉड्यूलर किचन, टी.वी., फर्नीचर एवं दैनिक आवश्यकताओं की समस्त चीजें आधुनिक फ्रिज, कूलर, ए.सी., कम्प्यूटर आदि है। व्यक्तित्व व्यवहार में परिवर्तन से तात्पर्य है कि ग्रामीण महिलाऐं आधुनिक नगरीय एवं महानगरीय समाज की स्त्रियों के साथ–साथ कदम से कदम मिलाकर चल रही है उनके बोलने, व्यवहार करने, व्यक्तित्व, शारीरिक चाल में इसका स्पष्ट प्रभाव देखने को मिलता है। परम्परागत व्यवसायों का ह्रास के अन्तर्गत ग्रामीण महिलाओं का मानना है कि टोकरी एवं झाड़ू बनाना, टाइपराइटर कार्य, कृषि कार्य जैसे परम्परागत व्यवसाय इलेक्ट्रॉनिक मीडिया के प्रभाव से क्षीण हो गये है। पराम्परागत व्यवसाय के ह्रास में महिलाओं ने मशीनीकरण की समस्या एवं आधुनिकीकरण को माना है उनका मानना है कि जिस कार्य को प्राचीन समय में मनुष्य स्वयं अपने हाथों से करता था उसका स्थान आज मशीनों ने ले लिया है। आधुनिकीकरण के कारण नगरों, महानगरों तथा विदेशों की चकाचौध को इलेक्ट्रॉनिक मीडिया के माध्यमों से ग्रामीण महिलाऐं देखती है और उसी के अनुसार कार्य करने लगती है जिसका प्रभाव उनके रहन–सहन के स्तर पर दिखायी देता है।

तालिका संख्या–6

इलेक्ट्रॉनिक मीडिया द्वारा खान–पान में परिवर्तन

क्र.सं.	प्रत्युत्तर	आवृत्ति	प्रतिशत
1	परम्परागत व्यंजनों का ह्रास	13	21.67
2	पश्चिमी व्यंजनों को बढ़ावा	24	40.00
3	खान–पान के नियमों में शिथिलता	14	23.33
4	खान–पान की विधियों का प्रबन्धन	09	15.00
	कुल योग	60	100

तालिका संख्या 6 इलेक्ट्रॉनिक मीडिया के माध्यमों के प्रयोग द्वारा खान–पान में परिवर्तन को प्रदर्शित करती है। 21.67 प्रतिशत महिलाऐं परम्परागत व्यंजनों का ह्रास, 40 प्रतिशत पश्चिमी व्यंजनों को बढ़ावा, 23.33 प्रतिशत खान–पान के नियमों में शिथिलता, 15 प्रतिशत खान–पान की विधियों का प्रबन्धन में परिवर्तन को बताती है। ऑकड़ों द्वारा ज्ञात होता है कि इलेक्ट्रॉनिक मीडिया के साधनों का खान–पान पर भी अत्यधिक प्रभाव पड़ रहा है। परम्परागत व्यंजनों का ह्रास एवं पश्चिमी व्यंजनो को बढ़ावा का तात्पर्य है की अध्ययन क्षेत्र उत्तराखड का कुमाऊँनी क्षेत्र है। कुमाऊँ के परम्परागत व्यंजनों यथा–चुड़कानी, डुबके, रायता–आलू, झोली–भात, चाय पकोड़ी आदि का स्थान आज चाऊमीन, मोमो, सूप, मैगी, मंचूरियन आदि पश्चिमी व्यंजनो ने ले लिया है। प्राचीन समय में महिलाऐं घरों में दोपहर का भोजन एवं रात्रि का भोजन नियमों के अनुसार बनाती थी तथा नियमानुसार ही उस परोसर कर खाया जाता था, जिसमें आज शिथिलता पायी गयी है। ऑकड़ों द्वारा स्पष्ट है कि इलेक्ट्रॉनिक मीडिया का खान–पान पर अत्यधिक प्रभाव पड़ा है।

तालिका संख्या–7

इलेक्ट्रॉनिक मीडिया द्वारा रीति–रिवाजों एवं मूल्यों पर प्रभाव

क्र.सं.	प्रत्युत्तर	आवृत्ति	प्रतिशत
1	विवाह के स्वरुप में परिवर्तन	34	56.67
2	प्राचीन परम्पराओं का अन्त	19	31.67
3	संस्कारों में परिवर्तन	07	11.66
	कुल योग	60	100

तालिका संख्या 7 ग्रामीण महिलाओं के रीति–रिवाजों एवं मूल्यों पर प्रभाव के संदर्भ में है। 56.67 प्रतिशत महिलाऐं विवाह के स्वरूप में परिवर्तन, 31.67 प्रतिशत

प्राचीन परम्पराओं का अन्त, 11.66 प्रतिशत संस्कारों में परिर्वतन बताती है। ऑकड़ों द्वारा स्पष्ट है कि सर्वाधिक प्रभाव विवाह के स्वरूप में पड़ा है। ग्रामीण महिलाऐं मानती है कि रीति–रिवाजों एवं मूल्यों पर प्रभाव पड़ा है। विवाह के स्वरूप में प्रभाव के संदर्भ में महिलाओं का मानना है कि पहले विवाह की विधियों एवं विवाह करने में समय अधिक लगता था। व्यक्ति घर वालों के अनुसार ही विवाह करता था, परन्तु वर्तमान समय में गान्धर्व विवाह का प्रचलन बढ़ गया है एवं विवाह की रीतियों एवं मूल्यों में परिवर्तन हुआ है, विवाह करने में समय भी बहुत कम लगता है। प्राचीन परम्पराओं का अन्त हुआ है इसके अन्तर्गत उनका मानना है कि पहले की तरह अब संस्कारों का पालन नही किया जाता उनमें शिथिलता आयी है। विधवा पुर्नविवाह को प्रोत्साहन मिला है, विधवाओं को समाज में सम्मानजनक स्थान एवं अपनी इच्छा से जीवन जीने का अवसर प्राप्त हुआ है। महिलाओं को अब केवल गृहणी के रूप में स्वीकार नही किया जाता बल्कि नौकरी एवं गृहकार्य में दक्षता का प्रचलन बढ़ गया है।

तालिका संख्या–8

इलेक्ट्रॉनिक मीडिया के साधनों के प्रयोग से सोचने–विचारने एवं व्यवहार पर प्रभाव

क्र.सं.	प्रत्युत्तर	आवृत्ति	प्रतिशत
1	सामाजिक विचारधारा में परिवर्तन	19	31.67
2	सामाजिक व्यवहार में परिवर्तन	08	13.33
3	व्यक्तित्व विकास में परिवर्तन	11	18.33
4	सकारात्मक एवं दूरदर्शी सोच का विकास	22	36.67
	कुल योग	60	100

तालिका संख्या 8 ग्रामीण महिलाओं के सोचने–विचारने एवं व्यवहार पर प्रभाव को प्रदर्शित करती है। 31.67 प्रतिशत सूचनादात्रियॉं सामाजिक विचारधारा में परिर्वतन, 13.33 प्रतिशत सामाजिक व्यवहार में परिर्वतन, 18.33 प्रतिशत व्यक्तित्व विकास पर प्रभाव, 36.67 प्रतिशत सकारात्मक एवं दूरदर्शी सोच का विकास को मानती है। ऑकड़ों द्वारा ज्ञात होता है कि इलेक्ट्रॉनिक मीडिया के साधनों के उपयोग से सूचनादात्रियों के व्यक्तित्व विकास पर सर्वाधिक प्रभाव पड़ा है। सामाजिक विचारधारा में परिवर्तन के अन्तर्गत महिलाओं के नौकरी एवं स्वरोजगार करने के प्रति सकारात्तमक प्रभाव आया है। अब महिलाऐं घर की चार–दिवारियों में कैद ना रह कर पुरूषों के साथ कंधे से कंधा मिलाकर कार्य कर रही है। घर के पुरूष सदस्य उन्हें प्रोत्साहित एवं गृह कार्य में उनकी सहायता करते है। महिलाऐं न केवल परिवार वरन् सामाजिक क्षेत्र में भी अपनी विचारों को बड़ी सरलता से सबके सम्मुख रखती है। पारिवारिक निर्णयों में अब उनके विचारों को प्राथमिकता दी जाने लगी है। ग्रामीण महिलाऐं राजनीतिक क्षेत्रों में भी प्रगति कर रही है। ग्राम पंचायतों एवं जिला पंचायतों में उनका प्रतिनिधित्व बढ़ने लगा है जिससे उनमें आत्मविश्वास की भावना और अधिक प्रबल हो गयी है उनकी सोचने–विचारने की क्षमता का विकास हुआ है। उनके व्यक्तित्व पर इसका स्पष्ट प्रभाव देखा जा सकता है। ग्रामीण महिलाओं में किसी भी सामाजिक मुद्दे के प्रति सकारात्मक एवं दूरदर्शी सोच का विकास हुआ है आज वह समस्याओं से घिरे रहने के बजाय उनका समाधान ढूढ़कर आगे बढ़ रही है।

तालिका संख्या–9

इलेक्ट्रॉनिक मीडिया के माध्यमों के प्रयोग से जीवन में चेतना एवं जागरुकता

क्र.सं.	प्रत्युत्तर	आवृत्ति	प्रतिशत
1	स्त्री शिक्षा को बढ़ावा	12	20.00
2	रुढ़िवादी परम्पराओं एवं अन्धविश्वासों में कमी	21	35.00
3	अधिकारों का संरक्षण	16	26.67
4	नये–नये विचारों की उत्पत्ति	11	18.33
	कुल योग	60	100

तालिका संख्या 9 स्पष्ट करती है कि इलेक्ट्रॉनिक मीडिया के माध्यमों से जीवन में किस प्रकार की चेतना एवं जागरुकता का विकास हुआ है। 20 प्रतिशत सूचनादात्रियों का मानना है कि स्त्री शिक्षा को बढ़ावा मिला है, 35 प्रतिशत रुढ़िवादी परम्पराओं एवं अन्धविश्वासों में कमी आयी है, 26.67 प्रतिशत अधिकारों का संरक्षण हुआ है, 18.33 प्रतिशत नये–नये विचारों की उत्पत्ति हुई है। ऑकड़ो द्वारा ज्ञात होता है कि ग्रामीण क्षेत्रों में भी वर्तमान समय में स्त्री शिक्षा को बढ़ावा मिला है एवं अन्धविश्वासों में कमी आयी है। महिलाऐं शिक्षित होकर अपना विकास कर रही है इनके शिक्षित होने के फलस्वरूप ही अन्धविश्वासों एवं सामाजिक कुरीतियों में कमी हुई है। यह संविधान द्वारा प्रदत्त सामाजिक, राजनीतिक एवं आर्थिक अधिकारों को

प्राप्त कर अपने व्यक्तित्व का विकास कर पूर्ण आत्मविश्वास के साथ प्रगति के पथ पर अग्रसर हुई है। आज ग्रामीण महिलाऐं प्राचीन दकियानूसी परम्पराओं एवं प्रथाओं को न अपनाकर स्वयं के लिए एवं परिवार, समाज के लिए प्रगतिशील आधुनिक विचारों को अपना रही है।

तालिका संख्या–10
इलेक्ट्रॉनिक मीडिया के माध्यमों की सशक्तिकरण में भूमिका

क्र.सं.	प्रत्युत्तर	आवृत्ति	प्रतिशत
1	महिला कल्याण अधिनियमों की जानकारी	17	28.33
2	अधिकारों के प्रति जागरुकता	20	33.33
3	महिला शिक्षा एवं रोजगार को प्रोत्साहन	23	38.33
	कुल योग	60	100

तालिका संख्या 10 इलेक्ट्रॉनिक मीडिया के माध्यमों की सशक्तिकरण में भूमिका के संदर्भ में है। 28.33 प्रतिशत ग्रामीण महिलाओं का मानना है कि उन्हें महिला कल्याण अधिनियमों की जानकारी हुई है, 33.33 प्रतिशत ने माना है कि अधिकारों के प्रति जागरुकता आयी है, 38.33 प्रतिशत ने महिला शिक्षा एवं रोजगार को प्रोत्साहन माना है। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् ही महिलाओं के उत्थान एवं विकास के लिए संविधान द्वारा विभिन्न अधिनियमों का क्रियान्वयन किया गया किन्तु उनका लाभ महिलाओं को प्राप्त नही हुआ। वर्तमान समय में इलेक्ट्रॉनिक मीडिया के साधनों ने महिला कल्याण अधिनियमों एवं अधिकारों की जानकारी प्रदान करके महिलाओं को जागरूक बनाया है। जिसका परिणाम है कि महिलाऐं विभिन्न कल्याण अधिनियमों यथा–महिला सशक्तिकरण 2001, घरेलू हिंसा अधिनियम 2005, दहेज निरोधक अधिनियम 1961, संशोधित 1986, विधवा पुर्नविवाह अधिनियम 1856, हिन्दू विवाह अधिनियम 1955 का उपयोग कर स्वयं की स्थिति में सुधार कर रही है। संविधान द्वारा प्रदत्त सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक अधिकारों का उपयोग कर महिलाऐं प्रत्येक क्षेत्र में अव्वल होते जा रही है। ग्रामीण महिलाऐं शिक्षा, तकनीकी ज्ञान प्राप्त कर निजी–सरकारी नौकरी एवं स्वरोजगार द्वारा आमदनी भी प्राप्त कर रही है। सरकारी, अर्द्धसरकारी, औद्योगिक प्रतिष्ठानों के साथ–साथ स्वरोजगार के क्षेत्र में भी इनका प्रतिशत शनैः शनैः बढ़ता जा रहा है।

निष्कर्ष

राष्ट्र की अर्थव्यवस्था, सामाजिक संरचना और उससे सम्बन्धित परिप्रेक्ष्य का मूल्यांकन वहॉ की महिलाओं से होता है। महिलाऐं हमारे देश की आबादी का लगभग आधा हिस्सा है इसलिए राष्ट्र विकास के महान कार्य में महिलाओं की भूमिका तथा योगदान को पूरी तरह सही परिप्रेक्ष्य में रखकर ही राष्ट्र निर्माण के कार्य को समझा जा सकता है।

अध्ययन द्वारा ज्ञात होता है कि ग्रामीण क्षेत्रों में भी आधुनिकीकरण की प्रक्रिया तीव्र गति से चल रही है। आधुनिक इलेक्ट्रॉनिक वस्तुओं को अधिक से अधिक मात्रा में ग्रामीण महिलाऐं खरीद रही है। आधुनिक इलेक्ट्रॉनिक वस्तुओं का उपभोग सामाजिक–आर्थिक सम्पन्नता एवं प्रतिष्ठा को प्रदर्शित करता है। ग्रामीण क्षेत्रो में इलेक्ट्रॉनिक जनसंचार माध्यम धीरे–धीरे प्रयोग मे लाये जा रहे है। रेडियो जैसे प्राचीन इलेक्ट्रॉनिक माध्यम का अस्तित्व वर्तमान में भी ग्रामीण क्षेत्रों में विद्यमान है। वर्तमान समय में महानगरीय एवं नगरीय महिलाओं की भॉति ग्रामीण महिलाओं के जीवन पर भी इलेक्ट्रॉनिक मीडिया का स्पष्ट प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। इलेक्ट्रॉनिक मीडिया के आधुनिक साधनों का प्रयोग कर ग्रामीण महिलाऐं न केवल स्वयं बल्कि अपने परिवार एवं समाज का भी विकास कर रही है।

इलेक्ट्रॉनिक मीडिया के साधनों की महिलाओं के जीवन में पैठ धीरे–धीरे बढ़ते जा रही है, महिलाऐं अपनी दिनचर्या का अधिक से अधिक समय इन साधनों के प्रयोग में व्यतीत कर रही है। महिलाओं का कथन है कि इन साधनों का प्रयोग कर उनमें जागरूकता, ज्ञानात्मक विकास, मानसिक संतुष्टि एवं समय का सदुपयोग हुआ है। जिससे उनकी जानकारी बढ़ती जाती है और वह प्रगति के मार्ग पर अग्रसर होते जा रही है। अधिकांश ग्रामीण महिलाओं का मानना है कि उनके जीवन में परिवर्तन हुआ है। ग्रामीण महिलाओं के रहन–सहन के स्तर, खान–पान, व्यक्तित्व–व्यवहार, मनोवृत्तियों में इसका स्पष्ट प्रभाव दिखायी देता है। महिलाऐं आधुनिक सुविधाओं से युक्त घरों का, रसोई में आधुनिक उपकरणों, विभिन्न प्रकार के विदेशी पकवानों एवं व्यंजनों, सकारात्मक सोच विचार की क्षमता का विकास कर अपनी जीवन शैली को परिवर्तित कर रही है। इलेक्ट्रॉनिक मीडिया के आधुनिक उपकरणों में मोबाईल फोन एवं कम्प्यूटर जैसे उपकरणों का प्रयोग कर

ऑनलाइन माध्यम से शॉपिंग, रिचार्ज, बिजली–बिल, टेलीफोन बिल, वस्तुओं रेलवे एवं बस का रिर्जवेशन कर अपने समय, श्रम की बचत भी कर रही है। दैनिक आव यकताओं एवं विलासिता पूर्ण वस्तुओं की खरीददारी यह समस्त उदाहरण उनकी परिवर्तित जीवन शैली को प्रदर्शित करते है।

ग्रामीण क्षेत्रों में भी वर्तमान समय में स्त्री शिक्षा को बढ़ावा मिला है एवं अन्धविश्वासों में कमी आयी है। महिलाऐं शिक्षित होकर अपना विकास कर रही है इनके शिक्षित होने के फलस्वरूप ही अन्धविश्वासों एवं सामाजिक कुरीतियों में कमी हुई है। यह संविधान द्वारा प्रदत्त सामाजिक, राजनीतिक एवं आर्थिक अधिकारों को प्राप्त कर अपने व्यक्तित्व का विकास कर पूर्ण आत्मविश्वास के साथ प्रगति के पथ पर अग्रसर हुई है। आज ग्रामीण महिलाऐं प्राचीन दकियानूसी परम्पराओं एवं प्रथाओं को न अपनाकर स्वयं के लिए एवं परिवार, समाज के लिए प्रगतिशील आधुनिक विचारों को अपना रही है। महिलाओं की विवेक, बुद्धि पर आधुनिक पाश्चात्य समाज की स्पष्ट छवि देखी जा सकती है, जो नये–नये विचारों की उत्पत्ति का कारण है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. *ओझा, प्रभांशु, ''इलेक्ट्रॉनिक मीडिया और गांवों का बदलता चेहरा'', कुरुक्षेत्र, वर्ष 62, अंक 4, 2016, पृष्ठ संख्या 11*
2. *भाग्यलक्ष्मी जे., 2001, 'ग्रामीण महिलाओं की संचार आवश्यकताओं की पूर्ति', योजना, वर्ष 45, अंक 7, पृष्ठ 8–10*
3. *दाधीच, बालेन्दु शर्मा, 2016, ''सूचना तकनीक से गाँवों में उद्यमिता का नया माहौल'', ''कुरुक्षेत्र'', वर्ष 62, अंक 4, 2016, पृष्ठ संख्या 25–27*
4. *त्रिवेदी रश्मि, 2009, 'जनसंचार माध्यमों के सामाजिक उत्तरदायित्व', राधाकमल मुकर्जी : चिंतन परम्परा, वर्ष 11, अंक 1, पृष्ठ 36–39*
5. *सिंह, संदीप कुमार, 2010, 'भूमंडलीकरण, मीडिया और नारी', (एड) गण वीरेन्द्र सिंह यादव, नई सहस्त्राब्दी का महिला सशक्तिकरण (अवधारणा, चिंतन एवं सरोकार) भाग–3, ओमेगा पब्लिकेशन, दिल्ली, पृष्ठ 299–300*
6. *रावत, आरती, 2012, 'दूरदर्शन कार्यक्रमों के प्रभाव का समाजशास्त्रीय अध्ययन', राधाकमल मुकर्जी : चिन्तन परम्परा, वर्ष–14, अंक–2, पृष्ठ 70–73*
7. *मिश्रा, ओ.पी. एवं तिवारी, छाया, 2013, 'ग्रामीण महिलाओं को सशक्त करता मीडिया', कुरुक्षेत्र, वर्ष 59, अंक 10, पृष्ठ 21–22*

मृणाल पाण्डे के साहित्य में नारी भावना

भारती
शोद्यार्थी, जय नारायण व्यास विश्वविद्यालय, जोधपुर

www.shodhshree.com

शोध सारांश

नारी विधाता की अमूल्य कृति है, सृष्टि संचालिका है। सामाजिक दायित्वों का निर्वाह करती हुई समाज का गौरव है। समय के साथ नारी का सामाजिक, धार्मिक, सांस्कृतिक व साहित्यिक सभी क्षेत्रों में विकास हुआ है। समाज को आगे बढ़ाने में नर व नारी दोनों समान रूप भागीदारी निभाते है, परंतु नारी को बेबस, कमजोर, सदियों से उपेक्षित माना गया। मृणाल पाण्डे ने बेबस नारी के विरूद्ध अपनी लेखनी चलाई।

संकेताक्षर : *किरदार, उपन्यास, मीडिया, सम्बंध, वात्सल्य, मतभेद, शोषित, स्वतंत्रता।*

मृणाल पाण्डे ने अपनी लेखन शैली के माध्यम से नारी को पारिवारिक, राजनीतिक क्षेत्र में स्थापित करते हुये अपने रचना कर्म में नारी को नये रूप में प्रस्तुत किया है। प्रगति की ओर अग्रसर उनके नारी पात्र समाज के प्रत्येक वर्ग से है। मृणाल पाण्डे ने अपने साहित्य में नारी के विविध रूपों का चित्रण किया है।उनके कथा साहित्य में प्राचीन व आधुनिक दोनों ही प्रकार के नारी किरदार नजर आते हैं।

'रास्तों पर भटकते हुये' उपन्यास की नायिका पार्वती का चित्रण एक 'वेश्या' के रूप में किया है व उसके माध्यम से राजनीतिज्ञों का चेहरा दिखाने का प्रयास किया गया है। इसी उपन्यास की एक और नायिका मंजरी रास्तों पर भटकते हुये सही गलत की खोज करती है। उसमें सत्य को जानने की छटपटाहट है। पहले बंटी व बाद में उसकी माँ की नृशंस हत्या और राजधानी के सुरक्षातंत्र की रहस्यमयी चुप्पी मंजरी को इन हत्याओं की तह तक जाने को बाध्य करती है। ''बंटी की स्मृति के सहारे तब मंजरी एक स्याह पाताली गंगा के दर्शन करती है। जो राजधानी के तलघर में कई भेदों को छुपाये बह रही है।''

'अपनी गवाही' उपन्यास की नायिका 'कृष्णा' पत्रकार है, उसके माध्यम से मृणाल पाण्डे ने एक औरत होने के साथ–साथ एक पत्रकार होने की परेशानियां बतायी है। मीडिया के बदलते स्वरूप व महिलाओं की पत्रकार के रूप में मीडिया में भागीदारी व चुनौतियों पर प्रकाश डाला गया है।

'हमका दियो परदेश' मृणाल पाण्डे का आत्मकथात्मक उपन्यास की झलक लगता है। इसमें एक संवेदनशील बच्ची की आंखों से देखे संसार के चित्रण में उनकी स्वयं के बचपन की झलक मिलती है।

'देवी' उपन्यास में उन्होंने महिलाओं की देवी शक्ति के रूप में ढेरों लोकगाथाओं व महागाथाओं को नये सिरे से व्याख्यायित किया है।'पटरंगपुर पुराण' में कहानियों–किस्सों की चलती–फिरती खान विष्णुकुटी की आभा की कथा को एक पुराण के रूप में ढ़ाला गया है। इनमें से किसी भी उपन्यास को देखे तो केन्द्रीय पात्र के रूप में एक महिला का सशक्त किरदार ही दिखाई देता है।

मृणाल पाण्डे की लेखनी में केन्द्रीय पात्र के रूप में विभिन्न महिला किरदारों के जीवंत चित्र प्रस्तुत किये गये है, जो उपन्यास को आगे बढ़ाने का कार्य करती है। 'विरूद्ध' उपन्यास मृणाल पाण्डे का प्रथम उपन्यास है। जो स्त्री अस्मिता की खोज का आख्यान है।

'रजनी' के मानसिक उहापोह का मार्मिक अंकन और यथार्थका तटस्थ चित्रण इस उपन्यास में किया गया है। 'विरूद्ध' उपन्यास के माध्यम से मृणाल पाण्डे ने अनमेल विवाह की समस्या को उठाया है। रजनी व उदय दोनों ही आपस में वैचारिक व पारिवारिक सामंजस्य की कमी के कारण मेल नहीं कर पाते। अंत में अनमेल विवाह की परिणिति विवाह सम्बंधों के खात्मे पर होती है।

इसी प्रकार मंजरी भी अनमेल विवाह की समस्याओं का सामना करती है, अंततः विवाह सम्बंधों में दरार व सम्बंध टूटना के रूप में ही परिणति होती है। सुशिक्षित रजनी व उदय के माध्यम से भी स्त्री पुरूष सम्बंधों को आख्यायित किया गया है। 'रास्तों पर भटकते हुये' उपन्यास की नायिका मंजरी के माध्यम से समाज के नारी पुरूष सम्बंधों पर प्रकाश डाला। मंजरी का पति एक जर्मन महिला से प्रेम के कारण उसे छोड़ कर चला जाता है, मंजरी के अकेलेपन व नारी विवशता व समाज के संम्बधों पर लेखिका ने नायिका के माध्यम से आख्यायित किया है। ''मंजरी के ससुर को पश्चाताप है कि उन्होंने अपने बेटे को अपनी पसंद की शादी में व्यर्थ बाँध डाला।"

'पंटरगपुराण' में भी लक्ष्मी को अकेलेपन का दंश सालता है। उसका पति रामदज्जी किसी अन्य के लिये लक्ष्मी को छोड़ देता है। मंजरी और उसके पति के बीच शादी जैसा कोई बंधन नहीं है मंजरी के पति को पिता द्वारा जबरन शादी करवायी गयी। इसमें लेखिका मंजरी के माध्यम से कहती है कि ''हमारे यहां एक आम वैवाहिक जिंदगी के बंधन को जो चीज टिकाऊ बनाती है, वह परस्पर प्रेम व आदर की भावना नहीं, एक डर होता है, अकेलेपन का डर, लोकनिंदा का डर, भविष्य में फिर–फिर वही गलती दोहराने का डर।''

लेखिका ने हिन्दू विधवा महिलाओं की स्थिति का भी सार्थक चित्रण किया है। 'देवी' उपन्यास में 'शोम्पा' एक विधवा है। घर वालों द्वारा निकाल देने पर नौकरी की आस में कलकत्ता चकले पर पहुँच जाती है। लेखिका के विविध उपन्यासों में कहीं न कहीं विधवा जीवन की समस्याओं का चित्रण किया ही गया है। एक विधवा या परिव्यक्त महिला को अपने जीवन की समस्याओं के अलावा अपने बच्चों के भविष्य की चिन्ता भी अनिवार्य रूप से करनी पड़ती है, और यही चिंता उसे नित नई परेशानियों ने रूबरू करवाती है।

नारी के विविध रूपों के चित्रण में मृणाल पाण्डे ने लगभग सभी उपन्यासों में 'वात्सल्यमयी' माता का चित्रण किया है। पटरंगपुर पुराण में लक्ष्मी को पति छोड़ जाता है, परंतु वह अभावों में संघर्ष करके भी अपने बच्चों को पालती है।

इसी की अन्य नायिका 'आमा' अपने बेटे को पढ़ाने की खातिर अपने परिवार से लड़ जाती है। आमा को कड़ी परीक्षा से गुजरना पड़ता है, परिवार के खिलाफ खड़ा होना पड़ता है, पर बेटे के लिए वह सभी कुछ सहन करती है। 'रास्तों पर भटकते हुये' उपन्यास में मंजरी व बंटी के बीच यही वात्सल्य सेतु रूप का चित्रण किया गया है।

बंटी उसका बेटा नही है, परंतु मंजरी उसे एक मां जैसा प्यार देती है। प्रत्येक कहानी में लेखिका ने कहीं न कहीं मां की महत्ता का परिचय अनिवार्य रूप से करवाया है।इसी प्रकार मृणाल पाण्डे ने 'विरूद्ध' उपन्यास में विद्रोही नारी के रूप में रजनी का चरित्र चित्रण किया है। लेखिका कहती है ''तो फिर उसका आक्रोश था किस पर, उदय की बात के अवश्यभावी सहीपन पर या उसकी बेलगाम तार्किकता पर''।

रजनी का उदय के प्रति आक्रोश उनके बीच के वैचारिक मतभेद से प्रतिबिम्बित होता है। वह प्रत्येक स्थान पर अपना अस्तित्व ढूँढ़ती सी नजर आती है। उसका अस्तित्व खंडों में बँटता हुआ सा चित्रित किया गया है। इसकी परिणति उसके विवाह विच्छेद से होती है।

वैचारिक मतभेद का अंतिम बिंदु या पराकाष्ठा सम्बंधों का टूटना ही होता है। मृणाल पाण्डे ने अपने उपन्यास 'देवी' में विभिन्न पुरातन कथा देवियों का वर्णन किया है। 'अहिल्या' का उदाहरण देते हुये लेखिका कहती है कि अपनी सुदंरता के कारण अहिल्या को शाप ग्रस्त होना पड़ा। अहिल्या, कुंती आदि प्राचीन देवियों के माध्यम से शोषित नारी की गाथायें प्रस्तुत की गई। कुंती राजकुमारी व राजमाता होते हुये भी जीवन भर वनों की खाक छानती रही व कौरवों के शोषण का शिकार होती रही।

मृणाल पाडे के उपन्यास व कहानियों में समाज के लैंगिक भेदों पर भी प्रकाश डाला गया। हमारे समाज में लड़कियों को आज भी हेय दृष्टि से देखा जाता है। लड़की को बोझ व अपमान के रूप में देखा जाता है। लेखिका लिखती है कि हमारी बुआ बेटियों के बारे में कहती थी कि "जब पिता के घर बेटी जन्मती है तो धरती दो अँगुल अंदर घुसती है"। लडकी का जन्म होता है, तो धरती सात अंगुल रसातल में चली जाती है।

लोगों का लड़कियों के प्रति खासकर स्त्रियों का दूसरी स्त्री के प्रति यह नजरियां मृणाल जी की लेखनी का मुख्य विषय बना। मृणाल जी ने पुत्र लालसा को इन पंक्तियों में

बताया ''पोते के नाम पर पैसा दनादन बढ़ रहा है, पुरानी लक्ष्मी ने सत्ता नई लक्ष्मी को सौंप दी है।''

मृणाल जी के कथा साहित्य में नारी के विविध स्वरूपों का चित्रण किया गया है। प्राचीन से आधुनिक नारी के हर रूप का चित्रण लेखिका के चरित्रों में मिलता है। चाहे सहनशील नारी का रूप या स्वछंद नारी, ममताययी मूर्ति के रूप में नारी या अर्धनारीश्वर की प्रेयसी के रूप में नारी, परम्परा से हटकर स्वतंत्र रूप में सामने आयी है।

'यानि की एक बात थी' कहानी संग्रह की कथा 'रूबी' में अनमेल विवाह की समस्या का चित्रण किया गया। रूबी के पिता व माता के बीच तारतम्य का अभाव है, पति का तिरस्कृत स्वभाव वह सह नहीं पाती, रूबी की मां चीख पड़ती है ''तुम सब मुझे एकदम बेवकूफ व गैरजरूरी समझते हो।''

सुपारी बुआ के पति के जाने के बाद ससुराल वालो ने उन पर बहुतेरे अत्याचार किये। जब उसे मायके लाया गया, तो लोगों को लगा, कि वह अब जिंदा नही रहेगी। ''उनके कानों की लोडियां पलट चुकी थी, देखकर लगता था कि लड़की की जान अब चली कि तब चली ।''

पितृदाय कहानी की सुमति पेशे से डॉक्टर है, पढ़ लिख कर अमेरिका बसी व शादी वही भारतीय युवक से हो गई, पति नशीले पदार्थो का आदी हो चुका था। सुमति कहती है ''सोचती हूँ सब छोड़कर वापस हिंदुस्तान लौट जाऊँ, लेकिन बावूजी भभक उठे, इस दरिद्र देश में आकर क्या अपना सिर खायेगी'' और सुमति हिंदुस्तान नहीं लौटती अततः अपने पति से उसका विवाह विच्छेद हो जाता है।

लेखिका ने नारी स्वतंत्रता का पक्ष लिया है व उसी के अनुरूप नारी चित्रण किया है। उन्होंने नारी जीवन के अच्छे व बुरे सभी पहलूओं का वर्णन किया है। नारी पुरूष को अन्योन्याश्रित बताया है कि यदि पुरूष नारी का सम्मान नहीं करेगा तो नारी भी मन से उसका सम्मान नहीं कर पायेगी।

आज नारी प्रत्येक क्षेत्र में पुरूषों के समान कार्य कर रही है। परंतु जिस सम्मान की वह हकदार है, अभी भी वह उसे नही मिल रहा। नारी का प्रत्येक क्षेत्र में शोषण होता है। इसके विरूद्ध खड़े होने व साहसी बनाने का यत्न लेखिका ने अपनी रचनाओं में किया है। मृणाल पांडे ने नारी की भूमिका के प्रत्येक प्रभाव को अपनी कहानियों में स्थान दिया है। उनकी ज्यादातर कहानियों में पुरूष की अपेक्षा नारी को महत्व दिया है, ताकि समय के अनुसार नारी की परिवर्तित स्थिति व महत्व पर लेखनी के माध्यम से रोशनी डाल सके।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. *रास्ते पर भटकते हुये – मृणाल पाण्डे*
2. *उपरोक्त*
3. *विरूद्ध मृणाल पाण्डे*
4. *विरूद्ध मृणाल पाण्डे*
5. *देवी विरूद्ध मृणाल पाण्डे*
6. *देवी विरूद्ध मृणाल पाण्डे*
7. *यानि की एक बात थी (मृणाल पाण्डे)*
8. *यानि की एक बात थी (मृणाल पाण्डे)*
9. *बचुली चौकीदारिन की कढ़ी (मृणाल पाण्डे)*

राजस्थानी लोक साहित्य मांय पंखेरूआं रा सुगन विचार

जितेन्द्र सिंह 'साठीका'
शोधार्थी, जय नारायण व्यास विश्वविद्यालय, जोधपुर

www.shodhshree.com

शोध सारांश

प्रस्तुत शोध पत्र में राजस्थानी लोक सहित्य मांय भांत-भांत पंखेरूआं रै माध्यम सूं सुगन संबंधी विचारों रौ लेखौ-जोखौ प्रस्तुत कर्‌यो गयो है। सगुन संबंधी अै विचार अठै रै लोक मानस रा लोक विस्वास है। जकां वैज्ञनिक नीं होवता थकां भी अजै भी प्रसांगिक है। इणांमें अठै री लोक संस्कृति रा निराला रूप सांमी आवै है। अठै रौ मानखौ तीतर, सुगन चिड़ी, चील, घूघू, कोचरी, कोयल, टीटोड़ी आद जीव-जिनावरां अर पंखेरूआं रा सुगनां मांय विस्वास राखै है।

***संकेताक्षर** : पर्यावरण, जियांजूण, संस्कृति, पंखेरू, संदेस, सुगन, लोक विस्वास, बैवार, बखत, अेहनांण, प्रकृति, नीजर, तीतर, कोचरी, कोयल, सुगन चिड़ी।*

राजस्थान बौ'त ही निरालौ परदेस रैयो है अर इत्तरो हीज इणरौ मिजाज है, अठांरौ लोक रंग-रंगीलो है तो सागै हीज आस्थावान, विस्वासी, पशु-पक्षी प्रेमी अर पर्यावरण रौ रूखालौ रैयो है। अठांरी संस्कृति हमेस 'जीवो अर जीवण दो' री नीति माथै रैयी, इणरौ जीवतो-जागतौ सबूत है कै अमृताबाई बिश्नोई रूखां री रक्षा सारू खुद रौ बलिदान'र दियौ, इण भांत रा लाखूं दाखलां राजस्थान रै लोक मांय बिखर्‌यौड़ा पड़िया है, अठांरा पशु-पंखेरू प्रेम रो हीज कारण है, कै देस मांय सबसूं जादा जीव-जिनावर इण प्रदेस मांय पाल्‌या जावै, जिकौ इणांरी जिया-जूण रौ आधार है अर अेक तरै सूं राजस्थानी लोगां रौ आरथिक आधार ही अठांरौ पशु रैयौ है। पशुवां रै सागै-सागै पंखेरूआं रै कानी भी अठै रा समाज रौ खास ध्यान रैयो है, चीड़ी, कमेड़ी, काग-गिरज, कबूतर, तोता, गिलारी अर इण भांत रा कैई जंगली अर पालतू पंखेरूआं रै प्रति आस्था, प्रेम अर विस्वास रैयो है अर इण पंखेरूआं नै आपरै जीवण रा सुख-दुःख रा भागीदार मान्या है अर जीवण रै साथै-साथै साहित्य अर संस्कृति मांय ठौड़ दिनी है, चाहै बै लोकगीत, लोककथा, लोकगाथा, पहेलियां, बात अर दूहा छंद हो आपां नै अध्ययन करण सूं ठा लागै'क हर ठौड़ अै पंखेरू आपरौ मेत्तव अर स्थान पक्कौ राखै, इणरौ कारण ही औ है कै राजस्थान प्रदेस रौ लोक इण पंखेरूआं नै अपणै आप सूं न्यारौ नीं समझै, आपरै ही'ज जीवण रौ अेक भाग मानै। इणी वास्तै जदै गौरी रौ संदेसो पीव तांई पूगाणौ हुवै तो वां कुरजाँ नै याद करै अर आपरै मन रा हाल बतावै-

कुरजाँ ए म्हाने भंवर मिला दो नीं ए .....

अर जदै मोर आपरी बोली सूं पीव री याद दिरावै तो विरहणी उणनै ओलबो देवती इण भांत कैवे-

मोरिया आछौ बोलियो रे ढलली रात में .....

म्हारै हिवड़े में बेगी रै कटार रै .....

मोरिया पिहू-पिहू री बाणी छोड़ दे .....

पुराणै बगत में जदै संचार रै साधना रौ बिगसाव नीं होयौ तदै संदेस वाहण रौ काम ही कबूतर करतौ हो तदै किरसां नै दिनुंगै बेगौ उठावण सारु मुरगो (कूकड़ो) बांग दैय'र सचैत करतौ, गांव रौ मिरत जिनावर नै खाय गिरजड़ा (गिद्ध) सफाई करता तो

सिराध पख मांय कागलो लैय बढेरां री आत्मा नै तिरपत करण रौ काम कागला ही करतां हा।

पंखेरू अर लोक री बात करां तौ ओ अपणै आप मांय अेक नुंवौ बिगसावी विसै बण जावै जिणनै थोड़े में ही घणौ समझणौ इण लेख सारू ठीक है। आपां बात करां इण पंखेरूआं रा सुगनां री जिणसूं अै आपां नै सावचेत करता भला–भूण्डा रौ कै आंगुच हौवण आली घटनां रा संकेत देवै। आ बात तौ आपां जाण चुक्या हां कै पंखेरू सकल मानव जात सारू घणौ महताऊ है अर पर्यावरण रै सागै–सागै समाज रौ खास अंग है। अबै राजस्थानी मांय अेक कहावत है कै 'जिणरी खावां बाजरी उणरी बजावां हाजरी' इणी बात नै अंगेजतां अै पंखेरू भी आपांनै आपरौ फरज निभावतां कैई बातां मांय मदद करे। इण लेख रै शीर्षक मुजब पंखेरूआं रा सुगनां री बात करां तो आपां नै ठा लागै कै अै किण–किण भांत सूं भावी मांय होवण आली बातां नै आपरै संकेतां सूं आपांनै समझावै अर जै मानखौ इण बातां'क, संकेत'क, सुगनां सूं जाण जावै तो कैई तरै रा असुभ सूं बच जावै तौ कैई सुभ काम कर सकै।

अठै अेक बात बतावणी चाहूँ 'क जिंया म्हूं इण लेख रै सरूवात मांय लिख्यौ' क राजस्थान रौ लोक आस्थावान अर विस्वासी हौवै उणनै आपरै लोक विस्वास माथै अटूट विस्वास हौवै। इणी लोक विस्वास मांय सुगन आपरी महताऊ ठौड़ राखै। सुगन अर सुगन–विचार, इणरा प्रभाव अै अेक न्यांरौ विसै है, पण थोड़े में आ कैय सकां कै लोक रौ विस्वास है कै प्रकृति आपांनै भावी (भविस्य) मांय होवण आली भली–भूंडी, शुभ–असुभ घटनावां रौ अेहनांण पैला ही करा देवै अर अै अेहनांण पशु–पक्षी, जीव–जन्तु, वैवार, बात–चीत, शरीर में होवण आ बकाव आद कैई तरीका सूं करा देवै, जिणनै ही आपां मोटा–मोटी तौर माथै सुगन, सवण, स्यौण आद कैवां। प्रकृति तो आपरौ काम करै पण इणनै समझणौ अर बैवार मांय लावण रौ काम खुद मानखै रौ है। जिका इण बात नै समझ गया वै सुगनी का सुगन–विचारक बाजियां अर जिकां उणानै विचार मांय बैवार मांय लाया, विस्वास करियौ, बानै उण भांत रौ ही फल मिलयो जैड़ा वै सुगन जाणिया। आधुनिक जुग मांय आ बात सफा बैढंगी लागै इण वास्तै घण करां विद्वान इणनै अंधविस्वास कैयनै नकार दे, पण कठैई–कठैई अै सुगन आपरौ मैतव राखै है अर लोक साहित्य मांय सुगनां रा भण्डार भरिया है, जकां इणरी प्रमाणिकता नै सिद्ध करै, इण सारू सुगन–विचार नै आपां लोक–विस्वास कैय सका अर साधारण बोलचाल मांय आपां कैवा ही हां 'क आ दुनिया विस्वास माथै टिक्योड़ी है।

आपां इणी विस्वास नै लैय 'र सुगनां री बात करां'क सुगन आपां नै किण–किण विद् सूं अेहनांण देवै का सचैत करै। इंया तौ सुगन कैई तरै सूं देख्या अर समझ्या जावै पण आपां लोक साहित्य सूं बै खास–खास चीजां माथै नीजर नाखां जिण मांय पंखेरूआं सूं जुड़्यां सुगन दीठमान हुवै –

तीतर रा सुगन तीतर पंखेरू गांवां मांय आसानी सूं दीखण वालो पक्षी है अर इणरां सुगन जग चावां है, आम बोलचाल मांय इणनै सुगनीड़ो भी कैयो जावै। इणरै बैठण अर बैठण रै अंदाज सूं सुगनां रौ ज्ञान करीजै, जातरा करती बगत तीतर रा सुगन विसैस रूप सूं पिताणिजै जकी प्रथा आज भी गांव–ढाणी मांय देखिजै है, तीतर रा सुगन बाबत लिखता विद्वान आ बात भी कैवैं कै गांव सूं प्रस्थान करती बखत तीतर डावी तरफ सूं बोले तो सुभ, जीवणी तरफ सूं बोले तो अशुभ अर अगनिकूंठ मांय चौथे पहर बोले तो घणौ सुभ हुवै। साहित्य मांय तीतर सुगन बाबत् दूहां भी दीठमान हुवै ज्यां–

तीतर डावो व्है तहां, चीड़ी जीमणी जाय।
नीच वंश रो नर मिलै, मत बड़जै घर माय।।
तीतर पंखी बादली, विधवा काजल रैख।
बा बरसै, बा घर करै, इणमें मीन न मैख।।
डावै तींतर डावै साल, डाव खर बोलै असराल।
डावै लूंकां डों डों करै, लंका रो राज विभिसण करै।।

इण भांत साहित्य मांय अलेखूं दूहा मिलै जिण मांय तीतर पक्षी रा सुगन–विचारां री जाणकारी मिलै।

सुगन चिड़ी रा सुगन राजस्थान मांय औ अेक विसेस तरै रौ पंखेरू है, जिणनै लोक मांय सुगन चिड़ी रै नांव सूं ही जाणिजै, जिंया इणरौ नांव है उण ही तरै आ सुगन बतावण रौ काम करै। इण रा सुगन चावां मान्या जावै। राजस्थान प्रदेस में सुगन चिड़ी नै लोक देवी आवड़ माता रौ रूप मान्यौ जावै अर इणरा दरसण होवणां, कोई सुभ काम करती वैला कै जातरा री बगत सुगन चिड़ी दिखणी अर इणरौ बोलणौ घणौ सुभ मान्यो जावै, राजघरानां मांय इणरी घणी महत्ता है, अठा तांई कै जैसलमैर रै भाटी राजवंस रौ राज चिन्ह मांय भी सुगन चिड़ी रौ चितराम मांडयोड़ो है। वै इणनै सगती रौ प्रतीक भी मानै। इणी बात री साख भरतां राजस्थानी रौ औ दूहो घणौ चावौ है कै–

हरे रूंख मातै बैठी सगती, दैवे है आसीस।
मन धन रा भण्डार भरेला, व्है पौ-बारा पच्चीस।।

इणरै सागै विद्वान सुगन चिड़ी रा सुगन बतावता लिखै 'खेत कानी जावतां टेम करसै रै जीवणै कानी सुगन चिड़ी बौले अर डावी कानी तीती बोले तौ अे चौखा सुगन मान्या जावै।'

सुगन चिड़ी नै लैय'र लोक मांय घणां सुगन अर कहावतां चलण में है। ''कै तौ जिमावै चूरमौ, कै तो भाला सूं भरपूर'' जै दिनुंगै 8 : 30 बज्यां सूं 9 : 30 रै बिचालै जावती बगत डावी कानी सुगन चिड़ी बोलै अर उणरै तुरन्त पछै जीवणी कानी बोलै, तौ जिण काम सारू मिनख घर सूं जाय रैयौ है बौ अवस ही उण बगत होय ज्यावैला अर उण बगत नीं हौया पछै कदैही नीं होवेला। सिंझ्या रा घरै जावती बगत जै सुगन चिड़ी जीवणी कानी बोलै, तो औ पतो चालै कै घर पूग्या कोई मेहमाण मिलैला, अैड़ा सुगन बढ़िया अर सुवादिस्ट जीमण मिलन रा अेहनांण भी होवै।

इण भांत सुगन चिड़ी नै सुगन बतावण रौ महताऊ पंखेरू मान्यो जावै है, जकौ राजा-महाराजा सागै किरसां अर आम जन रै हिताऊ है।

चील (संवली) रा सुगन चील भी पंखेरूआं मांय ही आवै। औ पंखेरू बिंया तौ आजकाल कम देखण नै मिलै पण अकाल रा दिनां में गांव-गांव मांय गाय ढांढ़ा रै मरिया औ ठैड़-ठैड़ दीख ज्यांवतौ पण आजकाल गांवां मांय भी जिनावरां री कमी हुयगी अर चीलां री भी। चीलां रा भी सुगन देख्या जावै जकां इण भांत है-

ऊंची चीलां आकाश बोलै, सासरै जाती धीया रोवै।
संमी बेल गंधती आवै, लंका रो राज विभिषण पावै।।

मतलब कै आकास में ऊंची उड़ती हुयी चीलां, सासरै जावती, रौवती थकी छोरी, सामी कद गाड़ी मांय जुतियोड़ा कद, अणुता सुभ मान्या जावै।

इणी तरै और भी हजारूं हजार अैड़ा पंखेरू है, जिणां रा सुगन अठांरौ मानखौ रोज नित आपरी जियांजूण मांय लेवतौ आयो है अर उणी सुगनां रै आधार माथै आपरी जूण रा कामां सारू सुभ-असुभ तय करतौ आयौ है।

इण जगत मांय घणाई सारा लोग भलांई आं सुगनां नै अंधविस्वास मानता हुकै, पण अै अंधविस्वास नीं होय 'लोक-विस्वास' है अर हर मिनख री जूण मांय अणूतां जरूरी है। अै जूण रा घणखरां कामां रा काम होवण सूं पैली ही संकेत देय देवै। असल में औ अेक विज्ञान है जकौ प्रकृति अर पर्यावरण सूं जुड़ियोड़ो है। इण मांय प्रकृति रा लूठा संकेत है।

जकांनै हर कोई नीं समझ सकै या समझण मांय फरक रैय जावै। इण सारू वो इणानै अंधविस्वास कैय'र नकार देवै, पण जितौ मोटौ विग्यान औ सुगनां माय है। उणसूं मोटो विग्यान कठैई नीं है। इण सारू सार रूप मांय औ कैयो जा सकै कै जै जियांजूण नै सही ढ़ंग सूं समझणी है तो प्रकृति नै समझणी है, पर्यावरण नै समझणो है तो सबसूं पैली आपानै इण सुगनशास्त्र नै समझणो पड़सी, जाणणो पड़सी, जीवण में उतारणो पड़सी।

कवड़ीया रा सुगन कवड़ियो अेक खास तरै रौ पंखेरू होवै जकौ आडै दिन देखण नै नीं मिलै। वो अमूमन दियाळी रै दिन ही दिखै अर दियाळी रै दिन नीं दिखण सूं जादातर लोग तो उणनै देख ही नीं पावै। इण सारू घणखरां लोग तो आज भी इण पंखेरू सूं अणजाण है कै औ कवड़ियो पंखेरू कांई होवे ? किणने कैवे ?

कवड़िया रा भी घणा सुभ असुभ सुगन हौवै, जकां इण भांत देखण में आवै-''कवड़िया दिवाली रै दिन देखीजै, तीणरौ विचार कहै। कमल रा फूल उपरै, घर उपरै, हाथी उपरै, घोड़ा उपरै, सांफ रा फण उपरै अर फफिया-फुफिया बिरख उपरै, इतरा ठांम रो कवड़ीया भली घणो। श्रीकार सुभ कहे। राख हाड चामड़ो, कास्ठ, पासाण, सूका तीणा उपरै इतरा ठामै कवड़ीयो देखीजै तो महा भूंडो तीको बरस पीण करवरौ हुवै। इति कवड़िया रा सुगन जाणवां।''

घूघू रा सुगन घूघू रौ ही नावं उल्लू है। बिंया औ लिछमी जी रौ वाहन है अर अैड़ा मान्यो जावै कै जठै उल्लु याने घूघू दिखै उठै लिछमी जी आवै। इण घूघू नै दिन में दिखै कोनी। इण सारू औ जादातर रात रा ही सफर करै। रात रा इणनै सैचण दिखै। उल्लू सूं कांई-कांई सुगन होवै जकां इण भांत देखण नै मिलै-''गाम चालता डावो भलो जीवणो भय दिखावे पूठि पाछ्लो बोलै तौ घणौ भय दिखावै। कै घणा वैरी उपजावै वार 21 दिन 7 घर उपर बोलै तो घर रो धणी मरै, दिन 3 बोलै तो चोर धाड़ पाड़ सर्व लैय जावै।''

उल्लू नै याने घुघु नै कहावत मांय 'रात रौ राजा' भी कैयो जावै। रात रौ राजा रौ मतलब उणनै रात रा दिखण सूं ही है। रात री बखत ही वो जादा सतर्क रैवे अर आवागमन करै। इण बाबत औरू किं सुगनां रौ बखांण मिकै जकौ इण भांत है-'गाम चालतौ डावौ राजा आणद सुख करै। जीमणौ राजा भय दिखाड़ै। पूठ पाछै बोलै तो आपणौ आपणै हाथ आवै। बोल उर आवै सही। सतमूर्ख रा राजा बोलियो भय जणावै सही। वार-वार बोलै तो घणो दुख

दिखावै। घर उपर बोले तो दिन 6 माहे अस्त्री ने कस्ट कहै। अथवा लक्ष्मी री हाण कहै तथा चोर भय दिखावै। घर लूसे। गांम चालतो डावो गणो श्रीकार। ग्राम रे प्रवेस तथा पाछा वलतां जीमणो श्रीकार। घर उपरै राजा बोली ने वेसे तो सुभ, विसुसते सुभावि भली बोले तो लाभ करै। अस्त्री गर्भवती होय तो जनमें। घर उपरै कुरलावतो बोले तो रोगियो हुवै तो रोग जावै। अर निरोगी हुवै तो मरै। प्रसाद, गढ, कुआ उपर बोले तो नगर देस छः मास माहे उजड़ करो। इति राजा रा सुगन जाणवा।

सूवटा रा सुगन गांव जावती बगत सूवटो जीवणौ बोलै तो भलौ। डावौ बोलै तो किं नुकसाण होवै। सामो करि-करि बोलै तो बंदी-खाना में पड़ै। हरख थका बोलै तो कल्याणकारी, सूखा काठ माथै तो भय दिखावै। इण भांत सूवटा यानै तोता रा सुगन होवै। वैसे सूवटा बाबत औ भी मान्यो जावै कै सूवटो मिनखां री भासा समझ भी सकै अर बोल भी सकै। साथै ही सूवटा नै दूजां पंखेरूवां सूं सुगनां रौ जादा ठा पड़ै। इणी सारू लारला लम्बा बगत सूं मोटा-मोटा सेठ-साहुकार, राजा-महाराजा, प्रेमी-प्रेमिका अर दूजां घणाई लोग सूवटां नै पालण रौ सौक राखतां दीखै। उणा सब रै लारै मैताऊ कारण उणरौ सुगन पंख नै जादा समझणौ ही है।

चकवा-चकवी रा सुगन राजस्थान में चकवा-चकवी रो घणौ मैतव रैयो है। राजस्थान री घणकारी लोक-कथावां तो चकवा-चकवी सूं ही सुरू होवै 'के रे चकवा बात' ? घर बीती के पर बीती ? अर इणरै पछै बात सुरू होवै। आं रौ प्रेम आखी दुनियां मांय जग चावौ। इण सारू इणारा सुगन सुभ ही होवै, चाहै कनै बैठा मिलै या उड़ता मिलै। सायद इणी सारू डॉ. हुकमसिंह भाटी संपादित ग्रंथ सं. 8634 में लिख्योड़ौ मिलै-''गांम चालतां घणा एकठा बैठे तो घणौ लाभ। भयभीत उड़ै तो घणो लाभ।''

कोचरी रा सुगन-कोचरी नै कैई ठौड़ असुभ कैयो जावै हांलाकी इणरौ बोलणौ, सुभ नीं मान्यो गयौ है, लोगां रो मानणौ है कै कोचरी सुन्याड़ चावै इण सारू आ जठै भी बोले बो घर उजड़ ज्यावै पण जातरा करण जावती बगत डावा-जीवणा सुगण होवण सूं कैई बार सुभ अर असुभ दौनू तरै रा सुगन होवै, ज्यूं राजस्थानी रौ अेक दूहा मांय आयो है, कोचरी जीवणी बोल्योड़ी ही ठीक है, डावी ठीक कोनी, देखो -

कुंभ, करेवा कोचरी, हड़मंत नै हिरणाह।
इतरा दाया ही भला, परभाते निरणाह।।

कोयल रा सुगन-विद्वानां रौ मानणो है कै जातरा करती बगत आम रा रूंख माथै बैठी कोयल चाणचक दिख ज्यांवै तो घणी ई बढ़िया सुगन होवै ज्यूं कैयो गयौ है-

कोयल हरियल आम के तरू पर बैठी होई।
गनमत में ताको दरश, करै बटोही कोई।।
सफल काज मेरे भये, निश्चिय ले सौ जान।
शकुन बड़ो अनमोल यह, आखे जन विद्वान।।

टीटोड़ी रा सुगन गांव जावती बगत पाणी रै मईनै बोलै तो लाभ अर सुख होवै। पाणी सूं बारै बोलै तो अपसुगन होवै। इण सारू जिण दिन सुगन सांतरा नीं होवै उण दिन गांवतरै नीं जावणौ।

इणी भांत आपां देख सका कै सुगनां बाबत पंखेरू कितरौ मैतव राखै, ईयां आपां इण लेख मांय किं खास-खास, पंखेरूआं रा सुगन देख्या पण हर अेक पंखेरू आप-आपरी तरीकां सूं सुगन बताया करै, चाहे कबूतर, कमेड़ी, मोर, कूकड़ा, चिड़ी, मैना, भंवरौ अर इण भांत रा कैई पंखेरूआं रा सुगन मानीजै, जिणनै विद्वानां साहित मांय जोड़नै घणौ लूंठो काम करियौ जिणरौ फायदौ शोधार्थियां अर रूचि राखण वाला नै मिलै। साथ ही आपां नै आपां रा बढ़ेरा रौ औ ग्यान अर लोक विज्ञान या लोक विस्वास अर पंखेरू-पर्यावरण री समझ रौ ठा लागै। जिण माथै म्हानै घणौ गुमैज है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. *परम्परा-सकुन विचार अंक-राजस्थानी शोध संस्थान, चौपासनी, जोधपुर*
2. *परम्परा-लोकदेवता अंक-राजस्थानी शोध संस्थान, चौपासनी, जोधपुर*
3. *मुहता नैणसी री ख्यात-भाग 3*
4. *राजस्थानी लोक साहित्य-नानूराम संस्कर्ता*
5. *लोक साहित्य विज्ञान-डॉ. सत्येन्द्र*
6. *लोक देवता तेजाजी-डॉ. महीपालसिंह राठौड़*
7. *घाघ भली रा दोहा-मौखिक साहित्य*
8. *हस्तलिखित ग्रंथ-राजस्थानी शोध संस्थान चौपासनी, जोधपुर*
9. *राजस्थान के लोकगीत*

प्राचीन भारत में कानून एवं न्याय की अवधारणा

महेश कुमार दायमा
असिस्टेन्ट प्रोफेसर, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर

www.shodhshree.com

शोध सारांश

भारत में विश्व के सबसे प्राचीनतम न्यायपालिका ने सर्वप्रथम प्रतिष्ठित होकर कार्य करना शुरू किया। आद्य ऐतिहासिक काल के अभिलेख अपठनीय होने से वैदिक काल से ही न्याय प्रणाली का क्रमबद्ध विकास दृष्टिगोचर होता है। वैदिक काल में प्रचलित परम्परागत प्रथाओं, कुल, गोत्र व जन की आचार सहिंताओं व समाज की न्यायिक व सामाजिक संस्थाओं ने देश व काल के अनुरूप कानून सहिंताबद्ध होने लगा। विधि व कानून का विकास विभिन्न सोपानों से गुजरते व परिष्कृत होते हुए स्मृतिकाल तक समाज में पूर्ण रूप से प्रतिस्थापित हो गए। प्राचीन भारतीय विधि सहिंता पर धर्म व पितृसत्तात्मक प्रणाली ने न्यायिक असमानता उत्पन्न करने में योगदान दिया। लिपिबद्ध विधि प्रणाली नहीं होने से मौखिक कानूनी दस्तावेजों की व्याख्या ने विभिन्न समस्याओं व वर्गभेद को प्रोत्साहन दिया। मौर्यकाल के बाद न्यायालय के स्वरूप में परिवर्तन आने लगा तथा न्याय प्रणाली में राजा प्रथम व प्रमुख न्यायाधीश के रूप में प्रतिष्ठित हो गया तथा न्याय प्रणाली से संबद्ध अन्य संस्थाएं गौण हो गई। कालान्तर में समय व स्थान में भिन्नता आने से न्यायिक तरीकों में भिन्नता आने लगी, धर्म को अनन्त सत्य के रूप में स्वीकार करके विधि पर थोपा गया, जिससे सामाजिक असमानता को बढ़ावा मिलना शुरू हो गया। जिसकी परिणति एक वर्ग विशेष की समाज में उच्चतम स्तर पर विधि के माध्यम से ही पदस्थापित कर दिया गया फिर भी भारतीय कानून ने ही मानव सभ्यता को उच्चतम स्तर पर प्राप्त करने में योगदान दिया।

संकेताक्षर : *ऋत, व्यवहार, सर्वसमयविद्, अक्षपटल, प्राङ्विवाक, धर्माधिकरण, प्रकाश तस्कर, धम्मपणिका।*

न्याय कानूनी या दार्शनिक सिद्धांत है जिसके द्वारा निष्पक्षता का प्रबंध किया जाता है। न्याय की अवधारणा प्रत्येक संस्कृति में भिन्न होती है। ऋग्वैदिक काल में उपलब्ध साक्ष्यों से मानव के सामाजिक विकास के साथ राजनीति व न्याय व्यवस्था का सरल तथा त्वरित विकास दृष्टिगोचर होता है। राजकीय सत्ता के विकास के साथ भौगोलिक क्षेत्रों में विस्तार होने से न्याय तथा विधि का क्रमशः विकास हुआ। वैदिक काल में सर्वप्रथम राजतंत्र का प्रादुर्भाव हुआ, उसके उपरांत विधि का विकास हुआ तथा विधि संहिता स्मृतिकाल में जाकर लिपिबद्ध हुई। वैदिक युग से ही विधि एवं विधिक संस्थाओं की स्थापना प्रारंभ हो गयी थी। वैदिक साहित्य में विधि द्वारा न्याय करने के संकेत मिलते हैं। उत्तर-वैदिक काल में धर्मशास्त्रों, सूत्र साहित्यों तथा स्मृतिग्रन्थों में विभिन्न प्रकार से विधि का स्वरूप निर्मित हुआ। सूत्र साहित्य में विधि का मुख्य आधार वेदों को ही माना गया है। भगवान श्रीकृष्ण ने गीता में अर्जुन को कहा – **तस्माच्छास्त्रं प्रमाण ते कार्याकार्यव्यस्थितै। ज्ञात्वा शास्त्रविधानोक्तं कर्म कर्तुमिहार्हस।।** (श्रीमद्भगवदगीता 16. 24) अर्थात् कर्त्तव्य-अकर्त्तव्य के निर्णय करने में तुम्हारे लिए शास्त्र ही प्रमाण है, शास्त्रों में कहे गये कर्म को तुम्हें इस संसार में करना है।

राज्य की नियन्त्रक शक्ति के पूर्व भी ऋत पर आधारित समाज था। इसमें विधि की सर्वोच्चता थी। प्राचीन काल में ऋत की

धारणा ऋग्वेद में धर्म भावना ने ले ली। ऋत शब्द ऋग्वेद में परमोच्च या सर्वातिशायी नियम या व्यवहार (कानून) अथवा अखिल ब्रह्माण्ड की व्यवस्था का द्योतक है, जिसके द्वारा अखिल विश्व और यहाँ तक कि देवगण भी शासित होते हैं और जो यज्ञों से अविच्छेद रूप से संबंधित हैं।[1] ऋग्वेद में ऋत का दस बार उल्लेख हुआ है जो उसकी महत्ता तथा सामाजिक नियंता का द्योतक है। प्राचीन काल के प्रारंभ में न्यायिक व्यवस्था के क्रमिक विकास में सभा, समिति, विदथ तथा कहीं कहीं पर वृद्धों की सभा द्वारा न्याय किया जाता था।[2] ऋग्वेद में आया है कि सोम ने एक ऐसा पुत्र प्रदान किया जो सादन्य, विदथ्य एवं सभेय है,[3] जिससे प्रकट होता है कि ''सभा'' शब्द ''विदथ'' शब्द से भिन्न अर्थ रखता है। वाजसनेयी संहिता में लगता है कि सभाचर का अर्थ सभासद है अर्थात् न्याय संबंधी सभा का सदस्य। अथर्ववेद में सभा व समिति को प्रजापति की दो पुत्रियां कहा गया है।[4] प्रारंभिक वैदिक काल में सभा, समिति, विदथ जैसी सामाजिक संस्थाएं सम्प्रभु थी। सभा, समिति के साथ राजा का भी महत्त्व बढ़ रहा था। ऋग्वेद में एक स्थल पर समिति का अर्थ सभा या सभा स्थल के अतिरिक्त ओर कुछ भी प्रतीत नहीं होता है।[5] वैदिक काल में सभा या समिति का निर्माण कैसे होता है यह कहना मुश्किल है, केवल अनुमान है कि यह एक ऐसी जनसभा थी, जहाँ राजा, विद्वान लोग तथा अन्य लोग जाते थे तथा न्यायिक कार्य करते थे। सम्भवतः यह ऐसे लोगों की अस्थायी सभा थी जिसमें लोग जाना या उपस्थित रहना पसंद करते थे। डॉ. काशीप्रसाद जायसवाल का कहना है कि समिति वैदिक काल में (सभी लोगों की) एक राष्ट्रीय सभा थी और उसमें उपस्थित रहना राजा का कर्त्तव्य था।[6] प्राचीन काल में राजा का विधान संबंधी कार्य बहुत सीमित था क्योंकि उन दिनों समाज की संरचना ऐसी ही थी। इस प्रकार प्रारंभिक सामाजिक निर्माण में सभा, समिति, प्रधान तथा वृद्ध सभा के माध्यम से न्यायिक प्रशासन चलता रहा कालान्तर में प्रधान की शक्ति, राजशक्ति का रूप धारण कर लेती है और वृद्ध सभा को उसमें समाविष्ट कर उसे राजसभा का रूप दे दिया जाता है। अन्ततः राजा के न्याय का रूप आ जाता है और राजा न्यायिक प्रशासन का प्रधान बन जाता है।

अवैदिक जातियों से निरन्तर संघर्ष होने से राजा की सैनिक तथा न्यायिक शक्ति में विकास होता रहा।[7] न्यायिक विकास में व्यवहार शब्द का प्रयोग कई अर्थों में भिन्नता के साथ प्रयुक्त हुआ है। व्यवहार शब्द सूत्रों एवं स्मृतियों द्वारा कई अर्थो में प्रयुक्त हुआ है। इसका एक अर्थ ''लेन–देन'' है। व्यवहार का दूसरा अर्थ झगड़ा या मुकदमा है।[8] व्यवहार का तीसरा अर्थ है लेन–देन में प्रविष्ट होने से संबंधित न्याय सामर्थ्य,[9] व्यवहार का चौथा अर्थ ''किसी विषय को तय करने का साधन''[10] अर्थात् तस्य व्यवहारों वेदों धर्मशास्त्राणी अंगानि आदि आदि। इस लेख में ''व्यवहार'' शब्द को मुकदमा या कचहरी में गये हुए झगड़े एवं न्याय संबंधी विधि के अर्थ में प्रयुक्त किया है। व्यवहार शब्द में उपसर्ग ''वि'' का प्रयोग बहुत के अर्थ में ''अव'' का प्रयोग संदेह के अर्थ में तथा ''हार'' का प्रयोग हटाने के अर्थ में प्रयोग हुआ है अर्थात् व्यवहार नाम इसलिए पड़ा क्योंकि यह बहुत से सन्देहों को हटाता या दूर करता है। यह परिभाषा न्याय प्रशासन को बहुत उच्च पद दे देती है। व्यवहार पद का अर्थ है झगड़े या मुकदमें का विषय। कौटिल्य एवं नारद स्मृति ने व्यवहार पद के स्थान पर ''विवादपद'' का प्रयोग किया है। मनुस्मृति से पता चलता है कि ''पद–– का अर्थ स्थान है (8/8)। याज्ञवल्क्य ने इसका अर्थ बताया है – यदि कोई व्यक्ति जो दूसरों द्वारा स्मृति–नियमों एवं रुढ़ियों के विरोध में तंग किया जाता है, वह राजा या न्यायाधिकारी को सूचित करता है तो इसे व्यवहारपद कहते हैं (2/5)। बहुत प्राचीनकाल से 18 व्यवहारपदों की गणना होती आयी है, इसका तात्पर्य यह है कि मनुष्यों के बहुत से झगड़े 18 शीर्षकों में बांटे जा सकते हैं। स्वयं मनु (8/8) ने लिखा है कि यह संख्या कोई आदर्श नहीं है लेकिन इसमें मुख्यतः सभी झगड़े आ जाते हैं। मनु अठारहों व्यवहारपदों के विषय में कह लेने के उपरांत कहते हैं कि राजा को बहुत से कण्टकों (कांटे, हानिकारक व्यक्तियों) को दूर करना चाहिए। मनु एवं अन्य स्मृतिकारों में व्यवहारपदों की संख्या एवं संज्ञा को लेकर पर्याप्त भिन्नता है। कौटिल्य ने बड़े विस्तार के साथ अपराधों का वर्णन किया है, उनकी तालिका की विशालता ''आधुनिक भारतीय दण्डविधान'' की विशालता से कम नहीं है। कात्यायन ने भी कहा है कि झगड़े के मूल दो है – (1) जो देय है उसे न देना (2) हिंसा। यद्यपि इस रीति से 18 प्रकार के अर्थमूलक एवं हिंसामूलक झगड़े थे, किन्तु उन्हें निपटाने के नियमादि एक साथ ही थे। वे एक ही प्रकार के न्यायालयों में सुने–सुनाये जाते थे। आधुनिक काल की भांति दो प्रकार के न्यायालयों की परम्परा नहीं थी।

प्राचीन काल में न्यायिक प्रशासन के मूलतः दो उद्देश्य

होते हैं – सत्य का ज्ञान प्राप्त करना और न्याय से सम्बद्ध वादों में नियमों का पालन करना, कराना। मनु एवं नारद ने राजा की तुलना शल्य चिकित्सक से की है जो आवश्यकता पड़ने पर अंगच्छेद भी करता है। इसी प्रकार महाभारत में भी राजा को सत्य से न हटने के लिए सावधान किया गया है। निर्णय के पूर्व न्यायिक प्रक्रिया की पूर्णता अत्यन्त आवश्यक मानी गयी। दिव्य साक्षियों (तप्त लौह, तप्त तेल या जल, अग्नि) एकदेशीय थी और उन्हें मानुष प्रमाण के सामने महत्त्व नहीं दिया गया। इस प्रकार सत्य का ज्ञान प्राप्त करना मुख्य उद्देश्य था। स्मृतिकाल तक राजा न्याय का आस्पद बन गया। इस काल में सर्वोच्च न्यायालय राजसभा हो गयी। राजा का प्रमुख कार्य निष्पक्ष न्याय करना एवं अपराधी को दण्ड देना। राजा न्याय का स्रोत माना जाता था। मिताक्षरा (याज्ञवल्क्य 2/1) का कहना है कि प्रजा रक्षण राजा का सर्वोच्च कर्त्तव्य है, यह कर्त्तव्य बिना अपराधियों को दण्डित किये पूर्ण नहीं हो सकता। मनु (8/12) ने न्याय शासन को धर्म का प्रतीक माना है। मेगस्थनीज (फ्रैगमेण्ट 27, पृष्ठ 70–71) ने लिखा है कि ''राजा दिनभर कचहरी में रहता है और उसके काम में कोई बाधा नहीं आने देता।'' स्पष्ट है न्यायानुशासन एक बहुत ही पवित्र कर्त्तव्य है।

स्मृतिकाल तक राजा न्याय का आस्पद बन गया। इस काल में सर्वोच्च न्यायालय राजसभा हो गयी। राजा प्रारम्भिक एवं अंतिम न्यायालय था। राजा न्यायसभा में नियमित जाने लगा।[11] सभा में प्रवेश करते समय उसे अपने साथ ब्राह्मण और मंत्री रखना आवश्यक था।[12] यदि अन्य आवश्यक कार्यों के कारण राजा न्याय कार्य देखने में अपने को असमर्थ पाये तो उसे तीन सभ्यों के साथ किसी विद्वान ब्राह्मण को इस कार्य में लगा देना चाहिए। इस प्रकार न्याय करना राजा का पदेन कर्त्तव्य बन गया। राजा का प्रमुख कर्त्तव्य था प्रजा की रक्षा करना। यह तभी सम्भव था जब उसे न्यायिक शक्तियां प्राप्त हो। फलतः न्याय राजा का मुख्य ''धर्म'' माना गया। इस प्रकार उचित न्याय व्यवस्था की स्थापना और उसका व्यवहार ही राजा का सबसे बड़ा यज्ञ था। राजा द्वारा न्यायाधीशों की नियुक्ति अपनी ईच्छा से नहीं करके विधि के आधार पर ही करता था। न्यायिक प्रशासन समाज एवं राज्य द्वारा स्वीकृत विधि के आधार पर होता है। राज्य के सप्तांग सिद्धांत में उसके विभिन्न अंगों के परस्पर सम्बन्ध, उनका स्वतंत्र अस्तित्व उनमें राजा का प्रथम स्थान अभिव्यक्त होता है।[13] ब्राह्मणकाल में राजा का वंशानुगत रूप स्थिर होता है फलतः संरक्षण और पितृ सिद्धांत स्वीकार किये गये। यहीं से राजा को ''दण्ड एवं कर'' की दो शक्तियां प्राप्त होती हैं, जो उसकी सम्प्रभुता पूर्ण करती है। संरक्षण में ही ''कर सिद्धांत'' स्वीकार करने से राजत्व का आधार लोकरक्षा एवं लोकस्वीकृति हो गया और ''राजा विधि का संरक्षक'' माना गया। इसी में धर्म उसका सहयोगी रहा। विधि के कार्यान्वयन में ''पितृत्व सिद्धांत'' है इसे मनुस्मृति तथा अर्थशास्त्र दोनों ने स्वीकार किया है।[14] राजा का देवत्व उसके व्यक्तित्व एवं राजासन नहीं करके उस विधि पर आधारित है जो उसे सामान्य व्यक्ति के स्थान पर राजा बनाती है।[15] राजत्व के स्तर के संबंध में कहा गया कि राज्य की सप्त प्रकृतियों में राजा का प्रमुख स्थान है।[16] वह राज्य प्रशासन का केन्द्र है।[17] राजा के व्यक्तित्व का निर्माण विधि द्वारा होता है। अर्थशास्त्र में राजशक्ति के विकास का उल्लेख मिलता है। मौर्य साम्राज्य में नौकरशाही के विकास को गति मिलती है। न्यायिक प्रशासन में सरकार के विभिन्न अंगों के अतिरिक्त सभी जातियों, वर्गों, सम्प्रदायों, क्षेत्रों एवं लौकिक व्यवहारों का आधार अनिवार्य रूप से मानना पड़ता है। न्याय व्यवस्था के संचालन में इस बात पर विशेष ध्यान दिया जाता रहा है कि जो अदण्ड्य है वे दण्डित और जो दण्ड्य हैं वे मुक्त न हो जाएं। इसका उत्तरदायित्व राजा पर है।[18] राज्य में निरपराध व्यक्तियों को दण्ड देने पर राजा को नरक का भय, साथ ही जनता को राजा के प्रति विद्रोह करने का भी अधिकार दिया गया।[19]

निरपराध को दण्ड देने के परिणाम से जातक कथाऐं भरी पड़ी हैं। न्याय में राजा को अपने सहायकों से परामर्श अनिवार्य रूप से लेना पड़ता है।[20] राजा के पास ऐसे विषय भी आते थे जिनका निर्णय राजा को ''स्वमत'' या स्वविवेक से ही करना पड़ता है। ऐसे विषय को ''प्रकीर्णक'' कहा जाता है।[21] स्मृतिकाल तक राजा न्यायिक शक्ति का अंतिम आस्पद बन गया किन्तु न्यायपालिका का संचालन अकेले और अपनी ईच्छा से नहीं कर सकता है, अंतिम निर्णय का उत्तरदायित्व राजा पर ही था किन्तु निर्णय के लिए राजा, ब्राह्मण, मंत्री और पुरोहित से परामर्श अवश्य करता है। निर्णय या न्यायपालिका के संचालन में राजा या उसके कर्मचारी एवं न्यायाधीश को अपने मतानुकूल चलने के स्थान पर धर्मशास्त्र के आधार पर ही कार्य करना मुख्य था। विवाद

के ऐसे अवसर पर जहां धर्मशास्त्रों की सूची से अतिरिक्त विषय का प्रवेश हो, राजा को विचार तथा निर्णय का निजी अधिकार बड़े ही नियन्त्रित रूप में स्वीकार किया गया है। देश, कुल आदि की वही परम्पराएं मान्य हैं जो श्रुति, स्मृति और वेदों के अनुकूल हों। कुछ ऐसे अवसर आते हैं जहां धर्मशास्त्रों, देश, कुल, जाति आदि की परम्पराओं का भी सम्बन्ध स्पष्ट नहीं हो पाता। इस स्थिति में राजा ही अंतिम प्रमाण माना जाता है।[22] इसमें संदेह नहीं है कि उत्तरकालीन स्मृतिकारों ने राजा के ''निर्देशक अधिकारों'' में वृद्धि की गई। राजा को अध्यादेश तथा आवश्यकतानुसार देश, कुल आदि की परम्परा के साथ स्वयं निर्णय करने का अधिकार मिल गया। राजा के इस नये अधिकार के साथ भी संवैधानिक प्रतिबंध लगे हुए थे। राजा न्याय में प्राड्विवाक के साथ सम्मिलित होता। उत्तरकालीन स्मृतियों में राजा की सभा का जो उल्लेख मिलता है, उसमें सभासदों की नियुक्ति राजा करता था, किन्तु वे ''विधि'' के विषय में राजा के प्रति उत्तरदायी न होकर धर्मशास्त्रों के प्रति उत्तरदायी थे। राजा के न्यायिक अधिकार जिस रूप में बढ़े उनके साथ दो विशेषताओं का भी विकास होता गया। राजा को विधिशास्त्र के मर्मज्ञों, समाज के विभिन्न घटकों के प्रतिनिधियों[23] तथा सभा के सम्पर्क में आना अनिवार्य हो गया। दूसरी विशेषता स्थायी न्यायाधीशों और विभिन्न प्रकार के न्यायालयों का संगठन आवश्यक हो गया। सम्प्रभुता के तीन अंग व्यवस्थापन, शासन और न्याय यदि एक स्थान पर केन्द्रीभूत हो जाएं, साथ ही समाज और व्यक्ति की शक्तियां पंगु हो जाएं तो राज्य ''सर्वप्रभुता सम्पन्न'' बन जाता है। प्राचीन भारत में उक्त तीनों शक्तियां अलग-अलग अन्योन्याश्रित थी। वैदिक काल से सूत्रकाल में राजा का दैवीरूप स्मृतियों तक अपने समग्र प्रकार में अभिव्यक्त हुआ किन्तु उसे व्यवस्थापन का अधिकार नहीं मिल सका। राजा न्यायिक प्रशासन का प्रधान बन गया, लेकिन मात्र कार्यान्वयन की दृष्टि से ही उसका यह रूप था। बृहस्पति ने राजा को वक्ता, अध्यक्ष और शास्ता कहा है। प्रथम दो का संबंध न्यायालय से और तीसरे का सम्बन्ध प्रशासन से है।

कौटिल्य ने शासनाधिकार का पूरा अध्याय ही दिया है। शासनाधिकार की सूची देखने पर स्पष्ट प्रतीत होता है कि इसमें कभी भी विधायिका शक्ति नहीं है अपितु विधि के कार्यान्वयन का एक प्रकार है, इसका तात्पर्य प्रशासन का उद्धेश्य भी है। शासन प्रसारित करने के लिए जिस लेखक की नियुक्ति होती है उसे ''सर्वसमयविद्'' होना चाहिए और वह अमात्य-स्तर का होता है। इस प्रकार का शासन जब समाज में प्रसारित किया जाता है तब समाज की विशेषताओं पर ध्यान देना आवश्यक है।[24] राजा का आदेश जिस लेखक (अमात्य स्तर) के माध्यम से आगे चलता है उसे ''सर्वसमयविद्'' होने और राजाज्ञा के साथ समन्वय के अधिकार का स्पष्ट तात्पर्य है कि राजाज्ञा देश, जाति, कुल आदि की विधि और आचार के विपरीत न हो।

शुक्र के अनुसार राजशासन की घोषणा ढोल पीटकर एवं चौराहों पर स्तम्भ स्थापित करना चाहिए, जिसमें राजाज्ञा के उल्लंघन पर दण्ड की सूचना होती है। अशोक ने अपने स्तम्भों में जिस शासन की स्थापना की उसका सम्बन्ध विशेषतः समाज के नैतिक अंश से था। समाज की विधि व्यवस्था से उसका कम संबंध हो पाया। राजा का अधिकार विधायी शक्ति की अपेक्षा न्यायिक था[25] लेकिन आर.के. मुखर्जी मानते हैं कि राजशासन राजा को विधायी शक्ति का रूप देता है और राजशासन विधि का स्रोत है। राजशासन एवं अक्षपटल के कार्यक्षेत्र में धर्म, चरित्र और व्यवहार का समावेश कौटिल्य ने किया है। संन्यास लेने के लिए धर्मस्थ की आज्ञा लेना आवश्यक हो गया। यहाँ कौटिल्य संन्यास पर राजशासन के माध्यम से राज्य द्वारा नियन्त्रण स्थापित करते हैं। कण्टकशोधन न्यायालय राजशासन के आधार पर निर्णय करता है, कितने ही धर्मस्थनीय के विवाद धर्मस्थीय से कण्टकशोधन न्यायालय में लाये जाते हैं, स्पष्ट है कि यहां राजा को ''अर्ध विधायी शक्ति'' का रूप मिल जाता है और राजशासन धर्म के स्रोतों में आ जाता है।[26] इस प्रकार की विधियां न्यायालय में स्वीकृत थीं। यहां राज्य केन्द्रीकरण की ओर अग्रसर होता है।[27] नारद ने राजशासन का स्थान बड़ा उच्च बना दिया है। कौटिल्य ने लिखा है कि राजा को धर्म, व्यवहार, संस्था और न्याय के निर्देशन में न्यायिक प्रशासन करना चाहिए। न्याय को प्रमाण में मूलरूप देना उस युग में एक क्रांतिकारी प्रयास था।[28]

सदाचार और परम्परा धर्म के आधार पर ही प्रमाणिक होने की परम्परा चल रही थी। न्यायाधीशों को विवके एवं स्वयं निर्णय करने की शक्ति को बल मिला। राजा का कर्त्तव्य विधि का कार्यान्वयन है। राजशासन कभी विधि का स्रोत नहीं था और धर्म, व्यवहार, चरित्र और राजशासन व्यवहार के चार पाद हैं। प्रधान न्यायाधीश को प्राड्विवाक या धर्माध्यक्ष कहा है। मनुस्मृति में प्रधान

न्यायाधीश को धर्मवक्ता कहा है[29] किन्तु प्राड्विवाक प्राचीन शब्द है।[30] तैत्तिरीय ब्राह्मण, वाजसनेयी संहिता एवं गौतम धर्मसूत्र में प्राड्विवाक और प्रश्नविवाक के विवेचन से प्रतीत होता है कि ईसा से शताब्दियों पूर्व भारत में कार्यपालिका एवं न्यायपालिका अलग हो चुकी थी। राजा के कार्य अधिक होने के कारण प्राड्विवाक को नियुक्त करता था जो राजा के स्थानापन्न कार्य करता था अन्यथा प्रशासन का प्रधान राजा ही था। न्यायाधीश की सामान्य योग्यता उदार, कुलीन, स्थिर, क्रोधवर्जित, धर्मिष्ठ आदि गुणों से युक्त होना आवश्यक माना गया है। न्यायाधीश की योग्यता पर अधिक ध्यान दिया गया है। उसे विद्वान कुलीन, वृद्ध, प्रज्ञासम्पन्न और धर्म के प्रति जागरूक रहना प्रायः सभी शास्त्रकार मानते हैं।

कात्यायन के अनुसार वह इन्द्रियजित, कुलीन, निष्पक्ष, मधुरभाषी, तीव्र कार्य करने वाला, परम धार्मिक और मानवीय विकार से दूर हो। मृच्छकटिका, मानसोल्लास आदि में भी इसी प्रकार की योग्यता का व्यवहार पाया जाता है। प्रधान न्यायाधीश विद्वान ब्राह्मण ही होना चाहिए। ब्राह्मण के अभाव में क्षत्रिय या वैश्य न्यायाधीश हो सकता है किन्तु शूद्र कदापि न्यायाधीश नहीं हो सकता। मनु ने यहां तक कहा है कि मूर्ख ब्राह्मण न्यायाधीश पद पर नियुक्त किया जाना चाहिए, किन्तु विद्वान शूद्र नहीं। जिस राज्य में शूद्र न्यायाधीश पद पर कार्य करता है, निश्चय ही वहां धर्म का लोप हो जाता है। दण्डापराध विधि में अन्य जातियाँ भी न्यायाधीश हो सकती थी। जहां शूद्र और वृषल का मनु ने निषेध किया और याज्ञवल्क्य ने उनका अनुसरण किया है वहां शूद्र और वृषल से तात्पर्य परिवर्तित जातियों से हैं, जो बाद में बौद्ध हो गयी।

न्यायाधीश की नियुक्ति राजा करता था लेकिन उसकी पदच्युति के प्रकार का उल्लेख नहीं मिलता। न्यायाधीश 'राजा के विधान' के प्रति नहीं, शास्त्र के प्रति उत्तरदायी थे। कण्टकशोधन के न्यायाधीश सरकारी कर्मचारी के रूप में थे। उन पर राजनियन्त्रण अवश्य था किन्तु कहीं भी ऐसी स्थिति नहीं थी कि राजा शासन विधि के स्थन पर अपनी इच्छा की पूर्ति में न्यायपालिका का उपयोग कर सके। उसे प्राड्विवाक को पदच्युत करने का अधिकार नहीं था। विधि के साथ समय, सदाचार और विभिन्न जातियों के आचार-विचार भी न्यायपालिका के आधार थे। उनका परम्परा प्राप्त एवं संहिताबद्ध विधि के साथ समन्वय आवश्यक होता था। वेदों से स्मृतियों तक यह कार्य परिषद, विद्वान ब्राह्मण, शिष्ट एवं न्यायाधीश करते रहते थे। फलतः न्यायाधीशों को संहिताबद्ध विधि और राजशासन दोनों से स्वतंत्र होकर भी कार्य करने का अवसर मिला। इससे वह समय, सदाचार, व्यवहार और परम्परा का समन्वय इस प्रकार कर पाया कि धर्म के वास्तविक स्वरूप और उद्देश्य की रक्षा हो पायी और राजशासन के साथ समन्वय भी हुआ। ऐसी स्थिति में न्यायाधीश समाज, राज्य और विधि के मध्य में अनिवार्य कड़ी के रूप में हो गया। प्रधान न्यायाधीश के साथ तीन सभ्यों को सहायक रूप में नियुक्त किया जाता था। सभ्य भी प्रथमतः ब्राह्मण, विकल्प में क्षत्रिय एवं वैश्य नियुक्त किये जाते थे। शूद्र को वह स्थान कदापि नहीं दिया जाता था। राजा से अधिकृत तीन विद्वान ब्राह्मण जहां भी एकत्र हो जायें उसे ही 'सभा' का रूप दिया जा सकता है। सभ्यों में नास्तिक, शूद्र तथा द्विजाति को मनु कभी स्वीकार नहीं करते थे।[31] कौटिल्य भी सभ्यों की संख्या धर्मस्थनीय में 3 मानते थे, जिन्हें अमात्य के समान योग्यता और अधिकार उपलब्ध हैं। इस प्रकार की सभाएं संग्रहण, द्रोणमुख और स्थानीय की सीमाओं पर होती है। बृहस्पति सभ्यों की संख्या 7, 5 या 3 मानते हैं। जहां इस संख्या में राजाधिकृत ब्राह्मण उपस्थित होकर व्यवहार निर्णय करने लगे वह सभा ''यज्ञ'' के समान हो जाती है। सभ्यों की योग्यता पर विशेष ध्यान दिया गया है। वे वेदाध्ययन सम्पन्न, धर्मज्ञ, सत्यवादी और शत्रु-मित्र में समान भाव रखने वाले होते हैं। वे लोभी न हो और साथ ही निर्धन भी न हो। इस प्रकार ब्राह्मणों में भी विभिन्न गुणों से सम्पन्न होने के साथ धनवान होना भी आवश्यक है। प्रायः सभी शास्त्रकारों ने वंशानुगत गुण को प्रधानता दी है। जिन्हें देश की परम्परा, आचार, धर्मशास्त्र आदि का ज्ञान नहीं एवं नास्तिक है, लोभ, क्रोध आदि विकारों से ग्रस्त हैं, वे सभ्य नहीं हो सकते। राजा सभा भवन में प्राड्विवाक, अमात्य, ब्राह्मण, पुरोहित और सभ्यों के साथ प्रवेश करता है। ब्राह्मण अनियुक्त और सभासद नियुक्त होते हैं। याज्ञवल्क्य (2/2) पर टीका करते हुए मिताक्षरा ने नियुक्त, अनियुक्त में भेद किया है।

उनके अनुसार नियुक्त सदस्य केवल उचित निर्णय की घोषणा से ही संबंध नहीं रखते अपितु उन्हें इस प्रकार के निर्णय करते समय राजा को रोकना चाहिए। जो अनियुक्त है उन पर राजा को रोकने का उत्तरदायित्व नहीं है। याज्ञवल्क्य (2/4) पर टीका करते हुए सुबोधिनी ने ''सभ्यों को कठोर दण्ड देने की व्यवस्था की है यदि वे

अन्यायपूर्वक निर्णय का समर्थन करते हैं। कात्यायन भी इसी प्रकार का मत व्यक्त करते हैं। सुबोधिनी ने इस प्रकार के दण्ड की व्यवस्था नियुक्त और अनियुक्त दोनों के लिए की है लेकिन विधि की व्याख्या में नियुक्त सदस्यों को ही अधिकार है। अनियुक्त को नियुक्त की अपेक्षा साधारण दण्ड दिये जाते हैं। अनियुक्त के ऊपर शास्त्र द्वारा प्राप्त उत्तरदायित्व है लेकिन नियुक्तों पर शास्त्र और राजसभा दोनों का उत्तरदायित्व है। अनुचित निर्णय में भाग लेने वाले सभ्यों को ''प्रकाश तस्कर'' कहा है।[32] निर्णय के लिए सभा उत्तरदायी थी जिसमें राजा, न्यायाधीश और सभ्य समान रूप से उत्तरदायी है। सभ्यों के निर्णय के बाद राजा द्वारा उनका शासन होता है। सभ्य राजा के द्वारा नियुक्त होते हैं किन्तु उन्हें राजा के स्थान पर विधि (धर्मशास्त्र) के प्रति उत्तरदायी होना पड़ता है। सभ्यों का कर्त्तव्य था कि वे राजा द्वारा विधि के उल्लंघन होने पर उसे उचित मार्ग पर लाने का प्रयत्न करें। राजा को न्याय और कर्त्तव्य मार्ग पर लाना उनका कर्त्तव्य है। पुरोहित को राज्य का आधा अंश माना गया है और वैदिक काल से धर्मशास्त्रों तक उसका अस्तित्व पाया जाता है। उसे राष्ट्र का रक्षक (राष्ट्रगोपा) कहा गया है। वह राजपरिवार और उसके धार्मिक अंश के अतिरिक्त लौकिक विषयों पर भी अपना मत देता है।[33] वह राजा और प्रजा के मध्य शक्ति का माध्यम है। भारद्वाज ने दिवोदास की रक्षा की थी। पुरोहित राजा के साथ युद्ध में भी जाता है कुछ प्रमाण ऐसे हैं जिनसे ज्ञात होता है कि एक ही पुरोहित दो राज्यों में पौरोहित्य करता है, इस महत्त्वपूर्ण स्थिति में रहते हुए भी उन्होंने राजशक्ति प्राप्त करने का कभी प्रयास नहीं किया। पुरोहित की योग्यताओं से स्पष्ट होता है कि वह ब्राह्मण हो, विधिज्ञ हो और सदाचार का पालन करने वाला हो, उसे केवल धर्मकार्य करने वाला न समझकर, राज्य संगठन में योग देने वाला समझा जाना उपयुक्त होगा। वह युद्ध से शांति तक के प्रश्न पर अपना मत देता रहा है। सभा के 10 अंगों में उसका उल्लेख नहीं है, लेकिन सभा में प्रवेश करते समय राजा के लिए नियम था कि वह प्राड्विवाक, विद्वान, ब्राह्मण, मंत्री और पुरोहित के साथ प्रवेश करे। राजा, सभी के साथ परामर्श के बाद अंत में पुरोहित के साथ परामर्श करता है। पुरोहित का स्थान राजा के घर, प्रशासन और सभा दोनों में है। न्यायिक प्रशासन में वह निर्णय और राजा के कार्य एवं व्यवहार का निरीक्षण करता है। जिस समय राजा सभा की अध्यक्षता करता है उस समय पुरोहित का स्थान प्राड्विवाक से भी महत्त्वपूर्ण हो जाता है, लेकिन दोनों पद अलग–अलग है। अपने ज्ञान, अनुभव एवं समाज से संबंध होने से वह राजा का निर्देशन करता है। कौटिल्य ने मन्त्री एवं सेनापति के समान ही, पुरोहित का भी वेतन निर्धारित किया है। उनके अनुसार पुरोहित का यह भी कार्य है कि वह न्यायाधीशों एवं अन्य कर्मचारियों के न्याय संबंधी कार्यों का निरीक्षण करे लेकिन अर्थशास्त्र, पुरोहित का संबंध सीधे न्यायिक प्रशासन से नहीं करता। धर्मशास्त्रों में भी पुरोहित का सम्बन्ध न्यायिक प्रशासन से अधिक नहीं है। राजशक्ति के विकास के साथ पुरोहित का न्यायिक प्रशासन में भी महत्त्व कम होता गया। वैदिक काल में ग्रामणी का महत्त्वपूर्ण स्थान है। वह न्यायिक प्रशासन में स्थानीय इकाई का प्रधान है। वेदों के ''ग्रामवादिन'' को मैकडॉनल और कीथ, ग्राम सभा का अध्यक्ष मानते हैं,[34] आगे चलकर ग्रामणी की नियुक्ति राजा के द्वारा होने लगी। धर्मसूत्रों के बाद ग्रामों का संगठन केन्द्र के निर्देशन पर होने से ग्राम का प्रधान, राजकर्मचारी के रूप में परिवर्तित हो गया। वह ग्राम प्रशासन में अपने से ऊपर के अधिकारी के मातहत होने के साथ उसे स्थानीय प्रशासन की सूचना देने लगा। इस अवसर पर यह पद वंशानुगत हो गया। वह कर संग्रह आदि के साथ ग्राम की रक्षा के लिए भी जिम्मेदार है। व्यवहार विधि के विवाद के निर्णय में उसे महत्त्वपूर्ण अधिकार प्राप्त है। सभासदों, सभ्यों, पुरोहित एवं ग्रामणी के कार्य से स्पष्ट प्रतीत होता है कि न्यायिक प्रशासन का उद्धेश्य राजसत्ता, शासन या राजा की ईच्छा के स्थान पर जनकल्याण एवं जनता के न्यायिक अधिकार की रक्षा करना है। अनियुक्त सभ्य भी न्याय में सहायता दें इस व्यवस्था का एकमात्र उद्धेश्य न्याय प्राप्त करने की सुविधा की सर्वोच्च व्यवस्था है। सभ्यों में समाज के विभिन्न वर्गों के प्रतिनिधि हैं। न्यायालय केवल संहिताबद्ध विधि पर ही निर्भर नहीं कर सकता था। विभिन्न जातियों, श्रेणियों एवं समुदायों में व्यवहार थे, जो संहिताबद्ध नहीं थे। उन्हें न्यायाधीश स्वयं जान सकता है लेकिन उनके अधिकार की रक्षा के लिए आवश्यक था कि उनके प्रतिनिधि स्वयं उसमें स्वीकृति दे। उनसे प्राप्त व्याख्या पर न्यायाधीश अपने ''न्याय'' का प्रयोग कर सकता है। इसका परिणाम यह हुआ कि न्याय की सार्वभौम व्यवस्था हो पायी।

प्राचीन काल में न्यायाधीशों के लिए आचार संहिता

कौटिल्य ने लिखा है कि ऐसे न्यायाधीशों को दण्ड दिया जाता है जो आवेदकों या प्रतिवेदकों को धमका कर टेढ़ी

भौंहें दिखाकर चुप कर देते हैं या गाली देते हैं। जो न्यायाधीश ठीक से प्रश्न नहीं पूछते हैं, व्यर्थ में देरी करते हैं या सुने-सुनाये मुकदमों को व्यर्थ में पुनः सुनते हैं या जो अपराधी को जेल से छुड़ाने के लिए या नारी से बलात्कार करने वाले अपराधी को अर्थदण्ड देकर छोड़ देते हैं, उन्हें दण्डित किया जाता है। मुख्य न्यायाधीश तथा अन्य न्यायाधीश मुकदमा चलते समय मुकदमेंबाजों से किसी प्रकार की बातचीत नहीं कर सकते थे। ऐसा करने पर वे दण्ड के भागी होते थे। (कात्सायान 70) अनुचित न्याय करने वाले एवं घूसखोर सभ्यों को देश निष्कासन का दण्ड देने का प्रावधान था या उनकी सारी सम्पत्ति हड़प लेने का प्रावधान था।

न्यायिक कार्यविधि

मनु के अनुसार राजा को भलीभांति सज्जित होकर, शांत रूप से न्यायालय में आना पड़ता है और देवों एवं आठ दिक्पालों को प्रणाम करने के उपरांत न्याय संबंधी कार्य करना होता है। न्याय कार्य के चार स्तर होते थे – किसी व्यक्ति से सूचना प्राप्त करना, उस सूचना को व्यवहार पदों के अनुकूल किसी एक में रखना, दोनों दलों की बहसों एवं साक्षियों पर विचार करना तथा निर्णय करना। (नारद स्मृति 1/36)

वकील

प्राचीन भारत में मुकदमों की पैरवी करने के लिए वकील करने की परंपरा का पता चलता है। स्मृतियों में वकील करने की बात का पता नहीं चलता किन्तु यह स्पष्ट है कि स्मृति विधानों में पांरगत लोग कचहरी में नियुक्त रहते थे और वे किसी दल के मुकदमे की पैरवी अवश्य करते थे। मिलिन्दपन्हो (जिल्द 36, पृ. 238) से भी प्रकट होता है कि प्राचीनकाल में वकील (धम्मपणिका) होते थे।

शुल्क

प्राचीन भारत में मारपीट या फौजदारी के विवादों में कोई न्यायालय शुल्क नहीं देना पड़ता था। जो अपराधी सिद्ध होता था उसे स्मृतियों द्वारा निर्धारित एवं निर्णीत दण्ड भरना पड़ता था। आरम्भ में कुछ भी नहीं देना पड़ता था। विवाद के निर्णय के उपरान्त कुछ ऐसा धन देना पड़ता था जिसे न्यायालय शुल्क की संज्ञा दे सकते है। (कौटिल्य 3/2) याज्ञवल्क्य स्मृति (2/33, 171 एवं 188)।

न्यायालय के प्रकार व कार्यप्रणाली

प्राचीन भारत में न्यायालय के चार प्रकार थे – प्रतिष्ठित – जो किसी पुर या ग्राम में प्रतिष्ठित हो, अप्रतिष्ठित – जो एक स्थान पर प्रतिष्ठित न हो। मुद्रित – जो राजा द्वारा नियुक्त हो और जो राजा की मुहर प्रयोग में ला सके, तथा शासित या शास्त्रित – वह न्यायालय जहां का न्याय स्वयं राजा करे।[35]

राजप्रासाद के पूर्व में न्यायालय होना चाहिए और उसका मुख पूर्व की ओर होना चाहिए। सभा को धर्माधिकरण कहा जाता था। इसे धर्मस्थान, धर्मासन या सदस् भी कहा गया है (वशिष्ठ 26/2)। न्यायालय के कार्य का समय प्रातःकाल होता था (मनुस्मृति 7/245)। अवकाश के दिन न्यायिक कार्य नहीं होता था जैसे – अष्टमी, चतुर्दशी, पूर्णिमा तथा अमावस्या।[36] बृहस्पति के अनुसार न्यायिक सभा के दस अंग थे – राजा, मुख्य न्यायाधीश, सभ्य, स्मृति, गणक, लेखक, सोना, अग्नि, जल तथा स्वपुरुष। सभा के दस अंगों को क्रमशः सिर, मुख, बाहु, हाथ, जंघाएं (गणक एवं लेखक), आंखें (सोना एवं जल) हृदय एवं पैर कहा गया है। न्याय कक्ष में राजा पूर्वाभिमुख बैठता है। न्यायालय कक्ष को अधिकरण कहा जाता था।

निष्कर्ष

भारतीय विधि का बीजारोपण वेदों से ही होता है और उसके आवरण में ही विकास व परिवर्तन चलता रहा। प्राचीन भारत में विधि के क्रमिक विकास में तत्कालीन समाज एवं व्यक्ति के जीवन के उद्धेश्य, राजनीतिक संघटन, धार्मिक तथा सामाजिक मान्यताएँ, आर्थिक व भौगोलिक परिस्थितियों ने विशेष योगदान दिया। समय के अनुसार प्राचीन विधि संहिता में स्थायित्व, परिवर्तन, आवश्यकता एवं मांग में संतुलन हमेशा बना रहा। विधि के द्वारा ही समाज, व्यक्ति एवं राज्य के परस्पर सम्बन्धों में सामंजस्य बना रहा, राजा द्वारा कभी भी विधि सम्प्रभुता या विधि की अपौरुषेयता का आवरण पहनकर तानाशाह बनने की चाह कभी नहीं रही। यही सकारात्मक पहलू प्राचीन भारतीय विधि संहिता को विश्व की अन्य विधि संहिताओं से अलग ही नहीं करती है बल्कि उसे सम्मानजनक स्थिति में पदस्थापित भी करती है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. *सोनह्लके, एन.एस. एवं कांसीकर, जी.सी. (संपा.), ऋग्वेद संहिता (सायण भाष्य) 1/68/2(1/105/12) 1/136/2, वैदिक शोध मण्डल, पूना, प्रथम भाग, 1975, चतुर्थ भाग, 1983*
2. *झा, जी.एन.,हिन्दू लॉ एण्ड इट्स सोर्स, इण्डियन प्रेस, इलाहाबाद, 1993, पृ. 101-110*

3. वही
4. अथर्ववेद संहिता (सायण भाष्य) एस.पी. पण्डित द्वारा सम्पादित 7/12/1, आनन्द आश्रम, संस्कृत सीरिज, पूना
5. ऋग्वेद संहिता 10/11/3, उपरोक्त
6. जायसवाल, डॉ. काशीप्रसाद, हिन्दू पॉलिटी, भाग प्रथम, चौखम्भा संस्कृत प्रतिष्ठान, वाराणसी, 1934, पृष्ठ 11
7. अथर्ववेद संहिता 3/3/4, उपरोक्त
8. मनुस्मृति 7/2, ए.एन. माण्डलिक द्वारा संपादित, आनन्दाश्रम, संस्कृत सीरिज, पूना
9. गौतम धर्मसूत्र 10/48(वशिष्ठ 26/8)
10. गौतम धर्मसूत्र 10/19
11. कौटिल्य, अर्थशास्त्र 1/19, गणपति शास्त्री द्वारा संपादित, अनन्तशयनम संस्कृत सीरिज, त्रिवेन्द्रम
12. मनुस्मृति 8/1–3, उपरोक्त
13. कौटिल्य, अर्थशास्त्र 1/19/39, उपरोक्त
14. याज्ञवल्क्य स्मृति 1/30 मिताक्षरा, व्यवहार, बालम्भह्नी एवं वीरमित्रोदय सम्पादित, चौखम्भा संस्कृत सीरिज, बनारस, 1973
15. आंयगर, रंगास्वामी, के.वी., सम आस्पेक्टस ऑफ एन्शियन्ट इण्डियन पॉलिटी, इस्टर्न बुक लिंकर्स, नई दिल्ली, 1988, पृ. 117–118
16. कुमास्वामी, डॉ. आनन्द, स्प्रिचुअल एण्ड टेम्पोरल पॉवर इन इण्डियन थ्योरी ऑफ गवर्नमेण्ट, मुन्शीराम मनोहरलाल पब्लिशिंग प्राइवेट लिमिटेड, नई दिल्ली, 1978, पृ. 84–85
17. कौटिल्य, अर्थशास्त्र, 8/1/12, उपरोक्त
18. हिन्दू पॉलिटी थ्योरीज, पृ. 131, उपरोक्त
19. मनुस्मृति 8/128(बु) हारित 7/194, उपरोक्त
20. मनुस्मृति 8/128, 9/249, उपरोक्त
21. मनुस्मृति 8/336, उपरोक्त
22. नारद स्मृति 1/4(जॉली सम्पादित, कलकत्ता, 1885)
23. मनुस्मृति 8/1–2, जार्ज बुहलर सम्पादित, डॉ. सुखराम, परिमल पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 2017
24. कौटिल्य, अर्थशास्त्र 1/10/1–5, उपरोक्त
25. कौटिल्य, अर्थशास्त्र 2/10/7, उपरोक्त
26. कौटिल्य, अर्थशास्त्र 2/7/2, उपरोक्त
27. बनर्जी, पी., पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन इन एन्शियन्ट इण्डिया, लंदन,, 1973, पृ. 137
28. सिन्हा, एच.एन., सोवेरेन्टी इन एन्शियंट इण्डियन पॉलिटी, लुजाक एण्ड कम्पनी, लंदन 1938, पृ. 147
29. बनर्जी, आर.डी., द एज ऑफ इम्पीरियल गुप्ता, फेसिमाइल पब्लिशर, नई दिल्ली, 2015, पृ. 110
30. मनुस्मृति 8/20, उपरोक्त
31. वही
32. मनुस्मृति 8/9, उपरोक्त
33. ऋग्वेद संहिता 7/60/121, उपरोक्त
34. त्रिपाठी, डॉ. हरिनाथ, प्राचीन भारत में राज्य और न्यायपालिका, मोतीलाल बनारसीदास, वाराणसी, 1965, पृ. 117–154
35. काणे, डॉ. पांडुरंग वामन, धर्मशास्त्र का इतिहास, भाग द्वितीय, उत्तरप्रदेश हिन्दी संस्थान, लखनऊ, 1982, प. सं. 703–729
36. बंसल, डॉ. मुक्ता एवं डॉ. मुकेश, प्राचीन भारतीय न्यायिक व्यवस्था, 2011, पृ. संख्या 37–46

मानव संसाधन लेखांकनः भारत हैवी इलैक्ट्रीकल्स लिमिटेड के संदर्भ में

www.shodhshree.com

संजय कुमार
सहायक आचार्य, सेठ आर एल सहरिया राजकीय पी.जी. महाविद्यालय, कालाडेरा

शोध सारांश

''मानव संसाधन व्यवसायिक सफलता की कुँजी है।'' व्यवसाय की सफलता माल, सम्पत्ति, वित्त व सम्वर्धन संबंधी निर्णय के साथ मानव संसाधन के प्रभावी तथा सार्थक उपयोग पर निर्भर करती है। मानव संसाधन की भर्ती, चयन, प्रशिक्षण तथा विकास कार्यक्रमों पर किये गये व्ययों का योग मानव संसाधन सम्पत्ति के रूप में वित्तीय विवरणों में दिखाया जाना चाहिए। मानव सम्पत्ति का वित्तीय विवरणों में लेखाकंन से औद्योगिक उत्पादकता में मानव संसाधन की उपयोगिता का भाग निर्धारित होता है। इससे मानव संसाधन का विकास, मूल्याकंन, पदोन्नति, पुरस्कार तथा सम्मान संबंधी योजनाओं का निर्धारण होता है।

संकेताक्षर : *प्रंबध, लेखाकंन, कर्मचारी, व्यवसाय, मानव संसाधन, सम्पत्ति, सूचना प्रणाली, सेवा क्षेत्र।*

मानव संसाधन लेखांकन प्रबंधकीय निर्णय का प्रारम्भिक तथा सृजनात्मक कारक है। इस पर सभी वित्तीय एवं गैरवित्तीय क्रियाओं की सफलता निर्भर करती है। प्रंबधकीय निर्णय, लेखाकंन निर्णय, कार्यालय कर्मचारी, कारखाना कर्मचारी तथा अन्य सभी कर्मचारियों की योग्यता व कुशलता पर व्यवसाय की सफलता आधारित है।

मानव संसाधन संबंधी अवधारणा

यह अवधारणा सत्रहवीं शताब्दी से प्रारम्भ मानी जाती है। इसका उपयोग सर्वप्रथम सर विलियम पेट्टी ने 1681 में किया। पेट्टी के अनुसार श्रमिक " The Father of wealth" हैं। इसकी शुरूआत 18वीं शताब्दी यूरोप से भी मानी जाती है। रॉबर्ट ऑवन (1771–1858) तथा चार्ल बेबेज (1791–1871) ने औद्योगिक क्रांति के दौरान मानव संसाधन संबंधी विचार दिये। मानव संसाधन एक सम्पत्ति है। इसका श्रेय विलियम पेटोन (सन् 1920) को जाता है। 20वी शताब्दी के शुरूआत में फ्रेडिक विन्सलो टेलर ने सांइटिफिक मैनेजमेंट में उत्पादन किया के मुख्य तत्व में श्रमिक को सम्मिलित किया था। पहली बार दा इंसीट्यूट फॉर अकाउटिंग ने 1967 में मानव सम्पत्ति शब्द का उपयोग किया।

गणन तकनीक

मानव संसाधन की मौद्रिक मूल्य में गणना करना कठिन है। इसकी गणना हेतु विभिन्न मॉडलस् का विकास हुआ है। इसकी मुख्य तकनीक निम्नलिखित है।

Human Resource Cost Accounting (HRCA)

इसमे मानव संसाधन पर किये गये व्ययों का पूँजीकरण किया जाता है। इसमें भर्ती, चयन, प्रशिक्षण, विकास तथा अन्य लागतों को सम्मिलित किया जाता है। इस लागत तकनीक में मानव संसाधन की गणना हेतुं निम्नलिखित पद्धतियां है।

1. Historical Cost Approach
2. Replacement Cost Approach
3. Opportunity Cost Approach

4. Standard Cost Approach
5. Current Purchasing Power Approach

Human Resource Valuation Accounting (HRVA)

इसमें मानव संसाधन के वर्तमान मूल्य की गणना की जाती है। वर्तमान मूल्य की गणना में वर्तमान मूल्य कारक का उपयोग किया जाता है। इस तकनीक में निम्नलिखित महत्त्वपूर्ण मॉडल सम्मिलित है।

1. The Hermanson Model 1964
2. Lev and schwartz model 1971
3. Flamholtz model 1971
4. Jaggi and Laus Model 1972
5. Robbinson and Giles Model 1972
6. Morse Model 1973
7. The Ogans Model 1976
8. Chakraborty Model 1976
9. Dasgupta's Model 1978

मानव संसाधन लेखाकंन की समस्याऐ

1. प्रत्येक कर्मचारी की असाधारण योग्यता होती है। उसका निर्धारण कठिन है।
2. मानव उत्पादकता उसकी संतुष्टि पर निर्भर करती है। एक संतुष्ट कर्मचारी तुंरत नवाचार को ग्रहण कर भविष्य में उचित परिणाम देगा। जबकि असंतुष्ट कर्मचारी में इसकी कमी होगी।
3. मानव संसाधन लेखांकन एक व्ययपूर्ण कार्य है।
4. कम्पनी अधिनियम में मानव संसाधन मूल्यांकन स्पष्ट नही है।
5. वित्तीय विवरणों में लेखाकंन नही किया जाता है।
6. मानव संसाधन लेखांकन संबंधी कोई लेखा मानक नही है।
7. मानव संसाधन मूल्यांकन के सर्वोत्तम मॉडल का निर्धारण कठिन है।
8. मानव संसाधन की गणना में वर्तमान मूल्य कारक का प्रतिशत का निर्धारण कठिन है।
9. मानव सम्पति पर मूल्यह्रास गणना करना कठिन है।
10. मानव संसाधन का अनुमानित जीवनकाल तय करना कठिन है।
11. आन्तरिक सूचना प्रणाली सुदृढ होनी चाहिए। जिससे मानव संसाधन की योग्यता का उचित उपयोग किया जाना संभव हो सके।
12. मानव संसाधन लागत का उचित अंकेक्षण होना चाहिए।

भारत हैवी इलैक्ट्रीकल्स लिमिटेड के संदर्भ में

भेल भारत की Heavy Electricals Equipment industry के रूप में सुदृढ संगठन है। यह 1964 से कार्य कर रही है। यह कम्पनी डिजाइन, इंजीनियरिंग, उत्पादन, निर्माण परीक्षण, प्रर्वतन तथा सर्विसिंग क्षेत्रों में कार्य कर रही है। सेवा क्षेत्र में पावर, ट्रांसमिशन उद्योग, परिवहन, नवकरणीय उर्जा, तेल व गैस तथा रक्षा क्षेत्र सम्मिलित है।

भेल सामाजिक कल्याण पर कार्य करती है। इसमें समुदायिक विकास, स्वास्थ्य, शिक्षा, पर्यावरण संरक्षण, आपदा प्रंबंध, प्रतिभा उन्नयन तथा कुशलता विकास सम्मिलित है।

भेल कर्मचारियों को National Apprenticeship promotion scheme में निम्नलिखित अवार्ड प्राप्त हुए है।

- Prime Minister's shram Award =07 कर्मचारियों को
- Vishwakarma Rashtriya puraskar=08 कर्मचारियों को
- National safety awards=05 कर्मचारियों को

भेल को Golden Peacock award तथा निगमिय सामाजिक उतरदायित्व के लिये ब्लयू इकॉनोमी Skoch award तक प्राप्त हुआ है।

भेल अपनी सभी औद्योगिक इकाईयों तथा परियोजना स्थलों पर सभी कर्मचारियों को सुरक्षित तथा स्वस्थ वातावरण प्रदान करती है। इसके लिए कम्पनी निम्नलिखित प्रोग्रोम चलाती है।

1. Occupational Health Services (OHS) Centre's.
2. Awareness Traning on Material Safety Data Sheet (MSDS)
3. Safe Operating Procedure's (SOP)
4. Health & Safety Related Traning Sessions for regular employee, Contract worker's & Trade apprentices.
5. Traning at Workplace for crane

operator's, Rigger's and Helper's for material handling

6. Corporate Learning & Development through-
   - Class room traning
   - Digital Learning
   - Blended learning
   - Outbound traning
   - Certification courses
   - Sponsored cource.

7. E-Larning-950 participants on project management

8. Certification course on achievement motivation.

भेल में कार्यरत कर्मचारियों में सभी वर्गो का ध्यान रखा गया है।

No. of Employee's during preceding calendar year

Group	SC	ST	OBC	Other	Total
A	2106	899	2746	6945	12696
B	1624	546	1785	4596	8551
C	4214	1194	7618	5319	18345
D (Excl.sw)	118	18	245	294	675
D (sw)	39	01	01	07	48
Total	**8101**	**2658**	**12395**	**17161**	**40315**

No. of Appointment's by Direct Recruitment

Group	SC	ST	OBC	Other	Total
A	14	03	27	48	92
B	00	00	00	00	00
C	00	00	00	01	01
D (Excl.sw)	02	00	05	15	22
D (sw)	00	00	00	00	00
Total	**16**	**03**	**32**	**64**	**115**

No. of Disability Person

Group	No. of Employee's (as on 31.12.2016)				Direct Recruitment in 2016				
					No. of Vacancies Reserved	Appoitment's			
	VH	HH	CH	TOTAL	VH/HH/CH	VH	HH	CH	Total
A	06	20	227	12696	34	00	01	33	92
B	04	12	191	8551	00	00	00	00	00
C	21	36	396	18345	00	00	00	00	01
D	01	06	14	723	00	00	00	01	22
Total	32	74	828	40315	34	00	01	34	115

VH=Visually Handicapped (Person's Suffering from Blindness or Low vision)
HH=Hearing Handicapped (Person's Suffering from Hearing impairment)
CH=Orthopaedically Handicapped (Person's Suffering from Locomotor Disability or cerebral palsy)
भेल में कम्पनी में कार्यरत मानव संसधान की वर्षवार स्थिति इस प्रकार हैः–

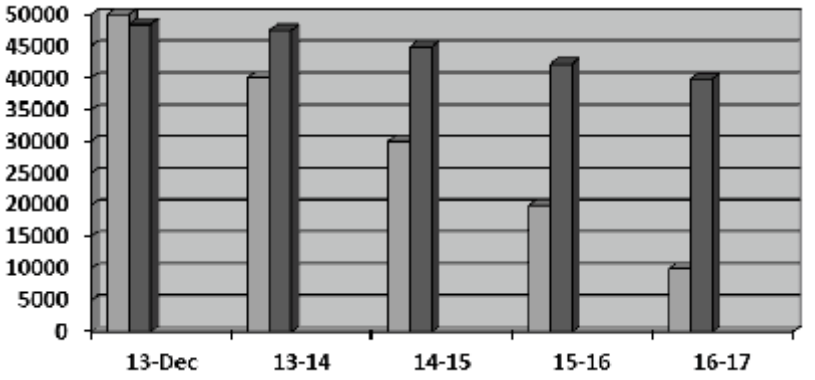

उपरोक्त साधारण दण्ड चित्र में वर्षवार कर्मचारियों की संख्या तालिका निम्नानुसार हैः–

वर्ष	12–13	13–14	14–15	15–16	16–17
कर्मचारियों की संख्या	48399	47525	44905	42198	39821

गतवर्ष 2016–17 में कम्पनी ने मानव संसधान की सुरक्षा तथा कुशलता में निरन्तर सुधार के लिये उपरोक्त कार्यक्रमो के अन्तर्गत प्रशिक्षण दिया है।

कुल कर्मचारियों की संख्या–39821

अस्थाई कर्मचारियों की संख्या–शून्य

स्थाई महिला कर्मचारियों की संख्या–2251

विशेष योग्यजन कर्मचारियों की संख्या–929

प्रति कर्मचारी औसत प्रशिक्षण दिन–3.9

सुरक्षा तथा कुशलता विकास प्रशिक्षण दिये जाने का प्रतिशत निम्नानुसार है–

स्थाई कर्मचारी–35.04

स्थाई महिला कर्मचारियों–46.06

विशेष योग्यजन कर्मचारियों–39.18

संविदा कर्मचारी –23.19

वर्तमान समय में मानव संसाधन लेखाकंन एक आवश्यकता है। औद्योगिक संस्थान एक कर्मचारी को सक्षम रूप से तैयार करने में प्रशिक्षण व विकास पर व्यय करती है। सेवा तथा तकनीकि क्षेत्रों में यह व्यय अधिक मात्रा में होता है। मानव संसाधन लेखांकन व अंकेक्षण से इसकी सार्थकता सुनिश्चित होती है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. *अग्रवाल एन.पी., जैन एस. सी., गुप्ता पी. ''मानव संसाधन लेखांकन'' राज पब्लिशिंग हाउस जयपुर*
2. *सुधा जी. एस. ''मानव संसाधन प्रबंध'' आर. बी. डी. जयपुर*
3. *रेड्डी वाई. आर. के. ''स्ट्रेटेजिक अप्रोच टू एच. आर. एम.'' विली ईस्टर्न लिमिटेड*
4. *जैन डी सी, खण्डेलवाल एम. सी, पारीक एच. एस. ''एकाउटिंग थ्योरी एण्ड प्रैक्टिस'' आर. बी. डी. जयपुर*
5. *डब्लयू डब्लयू डब्लयू.बीएचईएल.कॉम*

रघुनंदन त्रिवेदी की कहानियों में चिकित्सा संस्थान और मानवीय संघर्ष

निधि देवड़ा
शोधार्थी, जयनारायण व्यास विश्वविद्यालय, जोधपुर

www.shodhshree.com

शोध सारांश

समकालीन हिंदी कहानी–गगन के दैदीप्यमान नक्षत्र रघुनंदन त्रिवेदी सहज–सरल व्यक्तित्व के धनी एवं मारवाड़ की आंचलिकता को हिन्दी कहानी में नैसर्गिक रूप से प्रस्तुत करने वाले समर्थ कथाशिल्पी थे। इस लेख 'रघुनंदन त्रिवेदी की कहानियों में चिकित्सा संस्थान और मानवीय संघर्ष' चिकित्सा संस्थानों में विद्यमान मानवीय संघर्ष पर प्रकाश डालता है। अस्पतालों में बीमारी के अतिरिक्त अर्थसंकट और डॉक्टरों की अर्थलोलुपता से जूझते मरीजों का मार्मिक चित्रण किया है। डॉक्टरों के पास भटकते मरीज, डॉक्टरों की संवेदनहीनता, सरकारी अस्पतालों में गन्दगी और वहाँ पर बोलचाल की अत्यंत फूहड भाषा पर करारा व्यंग्य किया गया है।

***संकेताक्षर** : पूंजीवादी दृष्टिकोण, स्वास्थ्य, तनाव, अस्पताल, चिकित्सक, परामर्श।*

चिकित्सा संस्थानों की विसंगतियों से जूझते मरीजों व परिजनों की व्यथा–गाथा जैसे– डॉक्टर के पाँव पकड़ते मरीज परंतु पैसों के अभाव में ऑपरेशन नहीं करने पर बच्चे की लाश को लेकर घर लौटना, मरीजों के परिजनों और डॉक्टरों की नोंकझोंक – हाथापाई तथा चिकित्सा क्षेत्र में मानवीयता से शून्य पूंजीवादी दृष्टिकोण आदि का वर्णन किया गया है। मानव–मन में काम भावनाओं को केन्द्र में रखकर चिकित्सा–उपकरणों का व्यवसाय, चुपचाप मरीजों के गुर्दे निकालना, कचरे में फेंकी हुई डिस्पोजेबल सीरिंजे फिर से बिकने के लिए दुकानों पर पहुँच जाना आदि विसंगतियों का चित्रण किया गया है।

इस प्रकार इक्कीसवीं सदी के चिकित्सा क्षेत्र में संभावित विकास एवं विसंगतियों का चित्रण विभिन्न कहानियों के साक्ष्यों के आधार पर प्रस्तुत किया गया है।

कुछ प्रसिद्ध कहावतें है – 'पहला सुख निरोगी काया', 'स्वास्थ्य ही परम धन है' और 'हेल्थ इज वेल्थ' इत्यादि। व्यावहारिक तौर पर आधुनिक युग में स्वस्थ रह पाना बहुत कठिन है। पारिवारिक, सामाजिक, आर्थिक एवं अन्य दबावों के बीच संतुलित स्वास्थ्यचर्या अब केवल किताबी अर्थ में ही कीर्तिशेष है। रघुनंदन त्रिवेदी ने अपनी कहानियों में अथक श्रम करके दो जून की रोटी कमाने वाले कई पात्रों को स्वास्थ्य खोते हुए दर्शाया है। चिकित्सकों को भगवान माना जाता है परंतु समुचित धन के अभाव में अधिकांश डॉक्टर मरीज के उपचार में विलम्ब करके उसे मृत्यु–मुख में धकेलने के गुनहगार है।

रघुजी ने अस्पतालों में बीमारी के अतिरिक्त अर्थसंकट और डॉक्टरों की अर्थलोलुपता से जूझते मरीजों का मार्मिक चित्रण किया है। 'गड्ढ़ा' कहानी में खुशीराम की सास सलाह देती है कि ''अस्पताल में कोई ढंग से नहीं देखता, एक बार उसे (खुशीराम की पत्नी) प्राइवेट दिखला दें। रोग का निदान हो जाएगा।''

सभी शहरों की विडम्बना है कि वहां ताजा हवा उपलब्ध नहीं है। 'नारायणराव' जैसे अनेक मरीज एक के बाद एक कई डॉक्टरों के पास भटकते रहते है जहाँ डॉक्टर उनको आराम करने, स्वास्थ्यप्रद भोजन करने, ताजा हवा लेने और तनावमुक्त रहने की सलाह देते है परंतु ये बातें दैनिक जीवन में बिरलों को ही नसीब है।

'सेफ्टी वॉल्व' कहानी में पात्र छगनबाबू और उनकी पत्नी एक सर्जन डॉक्टर के पाँव पकड़ लेते हैं परंतु पैसों के अभाव में वह उनके बेटे का ऑपरेशन नहीं करता है और यह दंपति बच्चे की लाश लेकर घर लौट जाता है। इसी कहानी में आगे चलकर छगन बाबू एक फिल्म देखते हुए कल्पना लोक में खो जाते है जहाँ वह डॉक्टर को जहर का इंजेक्शन लगाकर प्रतिशोध लेते है। इस कहानी की ही तरह हम समाचारपत्रों में आए दिन मरीजों के परिजनों और डाक्टरों की नोंकझोंक – हाथापाई के समाचार पढ़ते–सुनते हैं। रघुजी की कहानी के पात्र 'अनिकेत' जैसे हृदयरोग विशेषज्ञ को भी भारी कष्ट झेलना पड़ता है।

'हमारे शहर की भावी लोककथा' कहानी बताती है कि सरकारी अस्पतालों में जच्चा वार्ड सबसे गन्दा होता है और यहाँ बोलचाल की भाषा भी अत्यंत फूहड़ होती है। 'अनिकेत के बारे में' कहानी तो अधिकांशतः चिकित्सा संस्थानों की विसंगतियों से जूझते मरीजों व परिजनों की व्यथा–गाथा ही है। एक उदाहरण द्रष्टव्य है –

"मेरी पत्नी अस्पताल में भर्ती थी और जनाना अस्पताल में मरदों को रात के वक्त वार्ड में अन्दर सोने की इजाज़त नहीं होने से मुझे अस्पताल के बाहर बरामदे में, जहाँ पूछताछ वाला काउण्टर था, सोना पड़ता था। मेरी तरह उस बरामदे में सोने वाले और भी कई लोग थे और हम सभी आपस में बातचीत के दौरान उस साल की तेज़ सर्दी और अस्पताल के प्रशासन को, जो मरदों को भीतर नहीं सोने देता था, कोसते रहते थे।

अस्पताल के भीतर जाने का मुख्य रास्ता उसी बरामदे में से था इसलिए रात में नर्सों और अस्पताल के कर्मचारियों के अलावा नये भर्ती होने वाले मरीजों को लेकर आते हुए लोगों की हड़बड़ी नींद में खलल डालती थी। परंतु बार–बार नींद उचट जाने से कहीं ज्यादा तकलीफदेह था बरामदे का फर्श जो सीमेन्ट का था और इतना ठंडा रहता था कि सुबह तक मेरी पीठ अकड़ जाया करती थी।

शहरों में ख्यातिप्राप्त डॉक्टरों के घर ही चिकित्सालय बन जाते हैं। 'अनिकेत के बारे में' कहानी बताती है कि प्रसिद्ध डॉक्टर भारी फीस लेकर भी विभिन्न वर्ग के प्रभावशाली लोगों से कालांतर में कई फायदे उठाते हैं। एक उदाहरण द्रष्टव्य है –

''घर पर भी उससे परामर्श लेने आने वाले रोगियों की संख्या प्रतिदिन सौ के करीब होती है। घर पर उसका मरीजों को देखने का समय सुबह छह से आठ और शाम को पाँच बजे से रात साढ़े दस बजे का होता है। सुबह आठ बजे से मध्याह्न एक बजे तक वह अस्पताल में रहता है। घर पर दिखाने के लिए आने वाले रोगियों को फीस देनी पड़ती है। अनिकेत की फीस ऊँची है। फीस में रियायत वह तभी करता है, जब रोगी खुद या उसे लेकर आने वाला व्यक्ति कोई बड़ा प्रशासनिक अधिकारी या राजनेता होता है। इस रियायत के एवज में वे लोग कितने ही मामलों में अनिकेत की सहायता करते हैं।"

आगे चलकर इसी कहानी में बताया गया है कि कार्यभार बढ़ने से साधारण व्यक्ति ही नहीं, स्वयं डॉक्टर भी रुग्ण हो जाते हैं –

''घरेलू तनाव और काम–काज की अधिकता के कारण अनिकेत की सेहत गिरती जा रही है। अपने मरीजों को शराब से परहेज की हिदायत देने वाला डॉक्टर खुद रात को दो पैग लिये बिना सो नहीं सकता। मरीज की नब्ज देखते वक्त उसके हाथ कांपते हैं। सीढ़ियाँ चढ़ते हुए सांस फूल जाती है। अनियमितता के कारण उसे रक्तचाप की शिकायत रहने लगी है।"

इसी तरह 'दो हजार पचास में परीकथा' कहानी का अधिकांश भाग भी चिकित्सा संस्थानों में विद्यमान मानवीय संघर्ष पर प्रकाश डालता है। नकुल की माँ एक 'ऑक्सीजन बार' में रिसेप्शनिस्ट है जो कार्यालय समय में भी कृत्रिम मुस्कान से इतना थक जाती है कि घर पर उसे मुसकराने से ही परहेज हो जाता है।

रघुनंदन त्रिवेदी ने इक्कीसवीं सदी के ठीक मध्यवर्ष में चिकित्सा क्षेत्र में संभावित विकास का लेखा–जोखा करते हुए इसी कहानी में यह बताने का प्रयत्न किया है कि तब मानव–मन में काम भावनाओं को केन्द्र में रखकर चिकित्सा–उपकरणों का व्यवसाय फलेगा–फूलेगा जबकि प्राकृतिक मातृत्व और गर्भधारण के झंझटों से छुटकारा पाने के लिए ललनाएँ अधिक लालायित रहेगीं। निम्नलिखित उदाहरण द्रष्टव्य है –

''मेरे बेटे का धंधा भी अजीब है। वह एकाकी जीवन के इच्छुक लोगों की काम तुष्टि के लिये बनाये जाने वाले कृत्रिम उपकरणों का व्यापार करता है।

कुछ साल पहले इस तरह की चीज़ों के विज्ञापन, जिनमें यह दावा किया जाता था कि यंत्रों से अति मानवीय सुख हासिल होता है और वे मानवीय सम्बन्धों में फिजूल खर्च होने वाले समय को बचाते हैं, मुझे हास्यास्पद लगते थे। मैं सोचता था कि वर्जनाओं से मुक्त होते जा रहे इस समाज में काम तुष्टि के लिए बनायी जाने वाली इन चीज़ों की खपत नहीं होगी, लेकिन अब जबकि ज्यादातर

लोग किसी भी रिश्ते को चप्पल में ठुकी हुई उल्टी कील की तरह देर सबेर दुःख देने वाली बात मानते हुए यंत्रों से जुड़े रहना पसंद करने लगे हैं तो मैं खिसियाते हुए अपनी पुरानी राय बदलने के लिए तैयार हूँ क्योंकि नकुल के पिता का व्यवसाय इन दिनों खूब तरक्की पर है। लगभग ऐसा ही एक और व्यवसाय जिसके तहत शहरों में गर्भ की सही देखभाल करने वाले क्लीनिक खोले गये थे, शुरू में मुझे घाटे का धंधा मालूम होता था। पर इन दिनों यह व्यवसाय भी खूब मुनाफे वाले धन्धों में से एक है। पन्द्रह लाख की आबादी वाले हमारे इस शहर में ही लगभग पचास ऐसे क्लीनिक हैं जहाँ स्त्रियाँ अपने गर्भ में आ जाने वाले भ्रूण को विकसित करने के लिए कृत्रिम बच्चेदानी में छोड़ सकती हैं। इन क्लीनिकों में 'इन विट्रो फर्टिलाइजेशन' की सुविधा भी उपलब्ध है, जिसके माध्यम से 'जेनेटिक स्क्रीनिंग' की जाती है।

इस कहानी में चिकित्सा विषयक गंभीर विचार विमर्श देखने को मिलता है। रघुजी ने पात्रों के मानसिक उथल-पुथल का चित्रण करते हुए बताया है कि निजी दैहिक सौन्दर्य की अक्षुण्णता एवं कामतृप्ति आदि मुद्दों को किस प्रकार समाजशास्त्रीय एवं राजनीति शास्त्रीय दृष्टिकोण से देखने की पूंजीवादी षड्यंत्रपूर्ण नीतियाँ सफल हो रही हैं। यहाँ निम्नलिखित उदाहरण प्रस्तुत किया जा सकता है –

''एक समय था जब चिकित्सा क्षेत्र से जुड़े विशेषज्ञ जेनेटिक स्क्रीनिंग की तकनीक को 'नाजीकरण' की संज्ञा देते रहे थे और 'बुलेटिन ऑफ मेडिकल एथिक्स' जैसे पत्रिकाएँ इसका विरोध कर रही थीं, मगर आखिरकार इस व्यवसाय को मान्यता मिल गयी। चिकित्सा के व्यवसाय से मेरा कोई ताल्लुक नहीं मगर मुझे हैरत होती है, जब इस व्यवसाय से जुड़े लोग यह तर्क देते हैं कि रोगों की रोकथाम में होने वाले खर्च को बचाने के लिए बीमार बच्चों की पैदाइश रोकना ज़रूरी है। पिछली सदी तक लोग 'मर्सी कीलिंग' के बारे में भी एकमत नहीं थे और कैन्सर जैसी यातनादायक बीमारी से ग्रस्त आदमी को भी जीवित रखने के लिए तमाम कोशिशें की जाती थीं, मगर अब जनमत 'जेनेटिक स्क्रीनिंग' के पक्ष में दिखायी देता है।

नकुल की माँ, और उसके पिता को भी इस बात का अफसोस है कि नकुल की पैदायश के दिनों में 'जेनेटिक स्क्रीनिंग' की सुविधा आम नहीं थी। यदि ऐसा होता तो नकुल भी अपनी माँ की कोख की बजाय ऐसे ही किसी क्लीनिक में रखी कृत्रिम बच्चेदानी में इन्सान की शक्ल लेता या फिर जेनेटिक स्क्रीनिंग की प्रक्रिया के दौरान यदि उसमें बीसवीं सदी के बच्चों की तरह दस-बारह साल लम्बे बचपन की संभावनाएँ पायी जातीं तो निश्चय ही उसे जन्म लेने से वंचित कर दिया जाता।"

'तुम्हें जानता हूँ' कहानी चिकित्सा क्षेत्र में मानवीयता से शून्य पूंजीवादी दृष्टिकोण पर करारा व्यंग्य किया गया है–

यदि हम इस जीवन के बाद भी किसी जीवन का अस्तित्व मानते हैं तो फिर कैसे चुपचाप मरीजों के गुर्दे निकाल लेते हैं, कैसे खाने-पीने की चीज़ों में मिलावट करके उन्हें जहर बना देते हैं (कैसे कचरे में फेंकी हुई डिस्पोजेबल सीरिंजे फिर से बिकने के लिए दुकानों पर पहुँच जाती हैं ?

इस प्रकार रघुनंदन त्रिवेदी की कहानियाँ चिकित्सा संस्थानों में विद्यमान मानवीय संघर्ष पर प्रकाश डालती है। रघुजी ने अस्पतालों में बीमारी के अतिरिक्त अर्थसंकट और डॉक्टरों की अर्थलोलुपता से जूझते मरीजों, डॉक्टरों के पास भटकते अनेक मरीज, डॉक्टरों की संवेदनहीनता, सरकारी अस्पतालों में गन्दगी और वहाँ पर बोलचाल की अत्यंत फूहड भाषा, चिकित्सा संस्थानों की विसंगतियों से जूझते मरीजों व परिजनों की व्यथा-गाथा, चिकित्सा क्षेत्र में मानवीयता से शून्य पूंजीवादी दृष्टिकोण आदि पर करारा व्यंग्य किया गया है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. *त्रिवेदी, रघुनंदन – संपूर्ण कहानियाँ, पृ.सं. 29*
2. *त्रिवेदी, रघुनंदन – संपूर्ण कहानियाँ, पृ.सं. 102*
3. *त्रिवेदी, रघुनंदन – संपूर्ण कहानियाँ, पृ.सं. 117*
4. *त्रिवेदी, रघुनंदन – संपूर्ण कहानियाँ, पृ.सं. 120*
5. *त्रिवेदी, रघुनंदन – इन्द्रजाल तथा अन्य कहानियाँ, पृ.सं. 43-44*
6. *त्रिवेदी, रघुनंदन – हमारे शहर की भावी लोककथा, पृ.सं. 45*
7. *त्रिवेदी, रघुनंदन – संपूर्ण कहानियाँ, पृ.सं. 299*
8. *त्रिवेदी, रघुनंदन – इन्द्रजाल तथा अन्य कहानियाँ, पृ.सं. 38*
9. *त्रिवेदी, रघुनंदन – इन्द्रजाल तथा अन्य कहानियाँ, पृ.सं. 43*
10. *त्रिवेदी, रघुनंदन – इन्द्रजाल तथा अन्य कहानियाँ, पृ.सं. 44*
11. *त्रिवेदी, रघुनंदन – इन्द्रजाल तथा अन्य कहानियाँ, पृ.सं. 89*
12. *त्रिवेदी, रघुनंदन – इन्द्रजाल तथा अन्य कहानियाँ, पृ.सं. 90*
13. *त्रिवेदी, रघुनंदन – इन्द्रजाल तथा अन्य कहानियाँ, पृ.सं. 90-91*
14. *त्रिवेदी, रघुनंदन – इन्द्रजाल तथा अन्य कहानियाँ, पृ.सं. 54*

रामसनेही सम्प्रदायाद्याचार्य संतकवि दरिया साहब की परंपरा में प्रयुक्त साधना पद्धति

www.shodhshree.com

डॉ. सतीश कुमार
प्रवक्ता, रा.आ.व.मा.वि., कृष्णपुरा, पानीपत (हरियाणा)

शोध सारांश

रामसनेही सम्प्रदाय निर्गुण–भक्ति–मार्ग समृद्ध शाखा है जिसका प्रादुर्भाव स्वामी रामानंद के शिष्य अनंतानंद की शिष्य–परंपरा में दरिया साहब (मारवाड़ वाले), हरिरामदास तथा रामचरण के द्वारा भिन्न–भिन्न कालों में पृथक्–पृथक् एवं स्वतंत्र साम्प्रदायिक इकाई के रूप में हुआ। तीनों रामसनेही सम्प्रदायों में सर्वप्रथम प्रवर्तन संत दरिया साहब के द्वारा 'रेण' नामक स्थान पर किया गया। साधना के संदर्भ में सुरति का सहज ही अर्थ आत्मा तथा शब्द का अर्थ ब्रह्म निष्पन्न होता है। संतों के काव्य में सुरति जीवात्मा तथा निरति ब्रह्म के अर्थ में प्रयुक्त हुई मिलती है। हठयोग साधना पद्धति के अन्तर्गत ध्यान की विधि विशेष के द्वारा 'मूलचक्र' में स्थित 'कुंडलिनी' नामक शक्ति को जाग्रत करके 'इंगला' और 'पिंगला' नामक नाड़ियों के बीच में स्थित सुषुम्ना नाड़ी के भीतर से उर्ध्वगमन कराया जाता है । इस साधना पद्धति को 'पूर्व का मार्ग' भी कहा जाता है। दरिया साहब सहित समस्त संतों नें नाभि के पश्चात् 'मूलचक्र' की स्थिति अपनी वाणी में वर्णित की है। ब्रह्म साक्षात्कार के पश्चात् 'द्वैतभाव' समाप्त हो साधक 'ब्रह्म' हो जाता है। अतः यहाँ से साधक का पतन नहीं होता। यही पंरब्रह्म, ररंकार और अगम का देश भी है जहाँ 'अहम्–त्वम्' का भाव समाप्त हो जाता है।

संकेताक्षर *: रामसनेही सम्प्रदायाद्याचार्य, सुरति–शब्द–योग,पूर्व एवं पिच्छम का मार्ग, भुरकी ,साधना सैंपान, त्रिकुटी, अगमदेश, बंकनाल।*

रामसनेही सम्प्रदाय कबीर प्रवर्तित निर्गुण–भक्ति–मार्ग की ज्ञानाश्रयीधारा की एक अल्पविख्यात किंतु समृद्ध शाखा है जिसका बीज रूप में प्रादुर्भाव राजस्थान के तीन स्थानों क्रमशः 'रेण' (नागौर), 'सिंहथल' या 'सिंहथल–खेड़ापा' और 'शाहपुरा' में स्वामी रामानंद के शिश्य अनंतानंद की शिष्य–परंपरा में आविर्भूत भिन्न–भिन्न तीन संतों क्रमशः दरिया साहब (मारवाड़ वाले), हरिरामदास तथा रामचरण के द्वारा 'सतनामी सम्प्रदाय'[1] की भाँति एक ही शीर्षक 'रामसनेही सम्प्रदाय' की संज्ञा से अभिहित भिन्न–भिन्न कालों में पृथक्–पृथक् एवं स्वतंत्र साम्प्रदायिक इकाई के रूप में हुआ। साम्प्रदायिक नाम तथा कुछ सिद्धांत साम्यता के अतिरिक्त इनका एक–दूसरे से किसी प्रकार का कोई संबंध नहीं है। डॉ. माधव प्रसाद पांडेय के अनुसार , ''राजस्थान में रामसनेही नाम से तीन पंथ जाने जाते हैं। बहुत कुछ सैद्धांतिक निकटता होने के बाद भी तीनों पंथों के उद्गम–स्थल और उद्गाता अलग–अलग हैं। यह एक संयोग की बात है कि तीनों भिन्न पंथ–प्रवर्तकों ने अपने–अपने पंथ का नाम रामसनेही रख दिया।''[2]

आलोच्य तीनों सम्प्रदायों में सर्वाधिक अर्वाचीन रामसनेही सम्प्रदाय, शाहपुरा है। इसके प्रवर्तक संत रामचरण जी के द्वारा वि. सं. 1808 में दीक्षा ग्रहण करने का पता चलता है।[3] इससे सिद्ध होता है कि उन्होंने अपने सम्प्रदाय विशेष की स्थापना उक्त समय के बाद ही कभी की होगी। 'सिंहथल–खेड़ापा' रामसनेही सम्प्रदाय के प्रवर्तक संत हरिरामदास जी माने जाते हैं जिन्होंने वि. सं. 1800 में दीक्षा ग्रहण की थी, ऐसा पता चलता है।[4] स्पष्ट है कि इनके द्वारा भी अपने सम्प्रदाय विशेष की स्थापना उक्त समय के बाद ही कभी की गई होगी। रामसनेही सम्प्रदाय, 'रेण' के प्रवर्तक संत दरिया साहब के द्वारा वि. सं.

1769 में दीक्षा ग्रहण किये जाने का उल्लेख मिलता है[5] और उनके द्वारा अपने प्रथम शिष्य पूरणदास को वि. सं. 1772 में दीक्षित कर[6] ''सुन रामसनेही तात''[7] कहकर संबोधित करना तथा तत्कालीन जनसमाज द्वारा निषि–बासर 'राम–नाम' का वासोच्छ्वास रटन करती उनकी शिष्यमंडली को ''रामसनेही जकै सभा सरब संगत बैठी'' कहकर उन्हें रामसनेहियों के रूप में पहचान देकर उनके रामसनेही होने की पुष्टि किये जाने का उल्लेख भी मिलता है।[8] उपरिलिखित वाणीगत अंतर्साक्ष्यों के परिप्रेक्ष्य में स्वतः सिद्ध हो जाता है कि रामसनेही सम्प्रदाय के आदि प्रवर्तक एवं आद्याचार्य संतकवि दरिया साहब हैं। यह विडंबना ही है कि उपर्युक्त तथ्यों को आवरित कर सर्वाधिक अर्वाचीन रामस्नेहीपीठ ''शाहपुरा'' के संस्थापक संत रामचरण जी को रामसनेही सम्प्रदाय का आदि प्रवर्तक होने का श्रेय दिया जाता है। यहाँ तक कि उच्चस्तरीय प्रतियोगी परीक्षाओं में भी इसी आशय की तथ्यविहीन जानकारी सांझी की जाती रही है जो कि उपरिवर्णित साक्ष्यों के प्रकाश में किंचित भी समीचीन नहीं जान पड़ती और स्वतः निर्मूल सिद्ध हो जाती है।

विडंबना यह भी है कि इस पीठ की परंपरा के संत भी अंतर्मुखी और लोकेषणोपेक्षी प्रवृत्ति के होने के कारण – ''गवाह चुस्त और मुद्दई सुस्त वाली लोक कहावत''[9] अथवा कबीर की यह उक्ति- ''बाजन दे बाजंतरी कलि ककुही जनि छेड़, तुझे बिरानी का परी तू अपनी आप निबेर''[10] को चरितार्थ करते हुए इस ओर झाँकते तक नहीं हैं।

साहित्यिक विद्वान भी साक्ष्यों के प्रकाश में रामसनेही सम्प्रदायों की पीठों में ''रेण'' पीठ को सर्वाधिक प्राचीन स्वीकार करते हैं। कुछ आलोचक संत दरिया साहब के कथन – ''मतवादी जाने नहीं ततवादी की बात'' को आधार बना कर उनको सम्प्रदाय विरोधी सिद्ध करने की चेष्टा करते हैं। कबीर, नानक, दादू आदि के न चाहते हुए भी उनके शिष्यों अथवा अनुयायियों द्वारा सम्प्रदाय की स्थापना हुई। इसी प्रकार रामसनेही सम्प्रदाय का प्रवर्तन संत दरिया साहब के द्वारा हुआ माना जाना चाहिए। संत रामचरण जी का प्रादुर्भाव तो रामसनेही सम्प्रदाय की तीनों पीठों में सबसे बाद में होना सिद्ध है। ऐसे में उन्हें रामसनेही सम्प्रदाय का प्रवर्तक मानना किसी भी दृष्टि से उचित नहीं ठहराया जा सकता है। इस भाँति से संत दरिया साहब ही रामसनेही सम्प्रदाय के आद्याचार्य एवं प्रवर्तक सिद्ध होते हैं। उन्हें ही इसका श्रेय दिया जाना चाहिए।

जैसा कि पूर्व में उल्लेख किया जा चुका है कि तीनों रामसनेही सम्प्रदायों में सर्वप्रथम प्रवर्तन संत दरिया साहब के द्वारा 'रेण' नामक स्थान पर किया गया। इसीलिए अन्य रामसनेही सम्प्रदायों से भिन्न दर्शाने के लिए इसे इसके प्रवर्तन स्थान 'रेण' के नाम से 'रेण–रामसनेही सम्प्रदाय' अथवा 'रामसनेही सम्प्रदाय पीठ 'रेण' की अभिधा से पहचाना जाता है। यहाँ रामसनेही सम्प्रदायाद्याचार्य संतकवि दरिया साहब की परंपरा में प्रयुक्त साधना पद्धति से अभिप्रायः 'रेण' रामसनेही सम्प्रदाय में प्रयुक्त की जाने वाली साधना पद्धति से ही है ।

संत दरिया साहब कबीर तथा दादूदयाल के सदृश निर्गुण ब्रह्म के उपासक थे – ''सोई कंथ कबीर का, दादू का महाराज। सब संतन का बालमा, दरिया का सिरताज।।''[11] इससे इनकी साधना 'ज्ञानमार्गी' होने का संकेत मिलता है जिसमें ज्ञान से अभिप्रायः साधना के क्रम में अनुभूति–जन्य 'ज्ञान' से होता है। इस हेतु इन्होंने ततनाम से 'प्रीति' रूपी सहज भक्ति पर बल दिया– ''दरिया जागै गुरुमुखी, ततनाम से प्रीति।''[12]

जीवात्मा के द्वारा तत्तनाम से प्रीति ही संतमत में 'सुरति–शब्द–योग' है, जो मंत्र योग के सदृश साधना पद्धति है। 'सुरति– शब्द–योग' में 'सुरति' और 'शब्द' के विषय में विद्वानों में विचार भिन्नता है। डॉ बड़थ्वाल सुरति का संबंध उपनिषदों से स्थापित करते हुए इसे संस्कृत के 'स्मृति' शब्द से व्युत्पन्न मानकर 'स्मृति' के अर्थ में ग्रहण करते हैं तथा इंद्रियों की अंतर्मुखी होने की दशा को निरति मानते हैं।[13] आचार्य क्षितीमोहन सेन सुरति का अर्थ प्रेम तथा निरति का अर्थ वैराग्य करते हैं।[14] डॉ. संपूर्णानन्द सुरति को चित्तवृत्ति की अंतर्मुखीवृति तथा निरति को बाह्य प्रवृति की निवृति मानते हैं।[15] आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी सुरति कैं अंतर्मुखी वृति' तथा निरति कैं बाहरी प्रवृति की 'निवृति' मानते हैं।[16] राधास्वामी मत के अनुसार जीवात्मा ही सुरति है।[17] आचार्य परशुराम चतुर्वेदी ने इसे जीव का निर्मल रूप कहा है।[18] डॉ. त्रिगुणायत के शब्दों में सुरति जीव का शब्दगत रूप है।[19] डॉ. राधिकाप्रसाद त्रिपाठी ने सुरति का अर्थ ध्यान किया है।[20] डॉ. पूर्णदास इसे चित्तवृति का पर्याय मानते हैं।[21]

विद्वानों ने सुरति शब्द के प्रसंगानुकूल जो भी अर्थ किए हों किंतु जब हम संतों की साधना पद्धति को

सुरति–शब्द–योग से अभिहित करते हैं तो साधना के संदर्भ में सुरति का सहज ही अर्थ आत्मा तथा शब्द का अर्थ ब्रह्म निष्पन्न होता है। संतों के काव्य में सुरति जीवात्मा तथा निरति ब्रह्म के अर्थ में प्रयुक्त हुई मिलती है। कबीर की निम्नलिखित पक्तियाँ द्रष्टव्य हैं– ''सुरति समांणी निरति मैं, निरति रही निरधार। सुरति निरति परचा भया, तब खुले स्वयं भू दुवार ।।''[22] डॉ. त्रिगुणायत ने भी प्रस्तुत पक्तियों में प्रयुक्त 'सुरति' और 'निरति' का अर्थ 'साधक आत्मा' और 'साध्य आत्मा' करते हुए कहा है, ''इन पंक्तियों का अर्थ औपनिषदिक परम्परा के अनुकूल साधक आत्मा और साध्य आत्मा भी लिया जा सकता है। निरति या साध्य, आत्मा का शुध्द बुद्ध नित्यरूपणी होती है। सुरति 'साधक आत्मा' है जब वह उससे तादात्म्य स्थापित कर लेती है तो शंभु अर्थात् भगवान के दर्शन हो जाते हैं।"[23] निम्नलिखित पदांश द्रष्टव्य है–

ध्यान में सुरता डुबी जाय ध्यान में सुरता डुबी जाय।।
टेर।।

सुरता केवे ग्यान से कीजे ब्रह्म मीलाप।
ऐसो योगज ना मिले तो कर सत्संग को लाभ।।[24]

उक्त पद में 'सुरता' का अर्थ स्पष्टतः 'आत्मा' ध्वनित है । संत प्रवर दादूदयाल तथा पलटू साहब ने भी क्रमशः 'सुरति' को ध्यान से पृथक् 'आत्मा' के अर्थ में व्यंजित करते हुए क्रमशः कहा है– "ज्ञान ध्यान मोहन मोही दीजे, सुरति सदा संग तेरे। दीनदयाल दादू को दीजे, परमज्योति घर मेरे।।"[25] तथा ''सुरति कमान करि, नाम निसाना मा'' कहकर सुरति को जीव या आत्मा के रूप में ही ध्वनित किया है।[26]

रेण–रामसनेही संतों की वाणी में भी सुरति 'जीवात्मा' तथा शब्द और निरति 'ब्रह्म' के रूप में प्रयुक्त हुए हैं। दरिया साहब की साखी द्रष्टव्य है– ''सुरत ब्रह्म का ध्यान धर, जाइ ब्रह्म में परस। जन दरिया जाहं ऐक सा, दिवस एक सौ बरस।।"[27] संत किसनदास भी सुरति और निरति को जीवात्मा तथा ब्रह्म के रूप में ग्रहण करते हुए कहते हैं– "ग्यान गस्त गुरू शब्द ले, षट चक्र सुर माय। सुरत पहुँची निरत घर, मिली प्राण बर जाय।।"[28] संत सुखराम कृत वाणी– ''गगन नाद गाजे, सुरत ध्यान लागे"[29] में भी सुरति 'आत्मा' के अर्थ में ही व्यंजित दीख पड़ती है। संत चैनराम भी सुरति को आत्मा के पर्याय में ग्रहण करते प्रतीत होते हैं– "त्रकूटी मांहि अनंतसुष, दुष को नांही लेस। सुरत सबद एके भय, वो कोई अनबे देस ।।''[30] संत पूरणदास ने तो 'शब्द' और 'सुरति' को क्रमशः 'ब्रह्म' और 'जीव' के पर्याय में परिभाषित करते हुए, स्पष्ट कहा है– "शब्द अखंडित ब्रह्म है, सब घट आतमराम। सुरत जीव का नाम है, सो नही निगमागम ।।"[31]

'सुरति–शब्द–योग' का अर्थ 'आत्मा' और 'ब्रह्म' का योग अथवा मिलन निःसृत होता है । संतों के सुरति–शब्द–योग से अभिप्रायः मंत्र योग तथा लय योग पर आधारित उस साधना विशेष से है जिसमें साधक आत्मा गुरु प्रदत्त भगवन्नाम रूपी शब्द को ग्रहण कर उसका विधि विशेष से अविराम रटन करती है, जिससे एक लय उत्पन्न होती है। इसी लय के सहारे साधक आत्मा 'शब्द' का रटन करते – करते अंततः शब्दत्व को प्राप्त हो जाती है ।

हठयोग साधना पद्धति के अन्तर्गत ध्यान की विधि विशेष के द्वारा 'मूलचक्र' में स्थित 'कुंडलिनी' नामक शक्तिको जाग्रत करके 'इंगला' और 'पिंगला' नामक नाड़ियों के बीच में स्थित सुषुम्ना नाड़ी के भीतर से उर्ध्वगमन कराया जाता है । उर्ध्वगमन करते हुए 'कुंडलिनी शक्ति' क्रमशः मणिपुर (स्वाधिष्ठान), नाभि, अनाहत (हृदय), कंठ तथा आज्ञा नामक षटचक्रों का भेदन करते हुए 'ब्रह्मरंध्र' (सहस्रार) में स्थित हो 'ब्रह्मरूप' को प्राप्त होती है । यही साधक के 'कैवल्य' प्राप्ति की स्थिति है। चूँकि इन षटचक्रों की स्थिति शरीर के पूर्व (अग्र) भाग में मानी गई है और कुंडलिनी नामक शक्ति शरीर के पूर्व भाग से होते हुए ही 'ब्रह्मरंध्र' में स्थित होती है, इसलिए इस साधना पद्धति को 'पूर्व का मार्ग' भी कहा जाता है।

संतों की 'सुरति–शब्द–योग' नामक साधना पद्धति में उपर्युक्तचक्रभेदन का क्रम उलटा चलता है। सुरति कंठ चक्र से प्रारंभ होकर क्रमशः हृदय, नाभि, मणिपुर तथा मूलचक्र अर्थात् पूर्व मार्ग के पाँच चक्रों तक नीचे की ओर गमन करती है। मूलचक्र से यह शरीर के पृष्ठभाग में स्थित मेरुदंड जिसे बंकनाल भी कहा जाता है, की बीस गांठों (किसी – किसी साधक ने इनकी संख्या इक्कीस भी कही है) का छेदन करते हुए उर्ध्वगमन करती है तथा त्रिकुटी (आज्ञाचक्र) से होते हुए ब्रह्मरंध्र में प्रवेश करके शब्दत्व अथवा ब्रह्मरूप हो जाती है। चूँकि इस साधना पद्धति में सुरति 'शब्द' के सहारे 'शब्द' को ही उपलब्ध हो जाती है। इसलिए इसे सुरति–शब्द–योग कहते हैं। शरीर के पृष्ठभाग में स्थित मेरुदंड अर्थात् बंकनाल को संतों ने 'पिछम का मार्ग' कहा है – "उडया हे आकाश, पिछम पार बासा"[32] तथा "खुलिया घाट पिछम का मारग, उलट बंक दिस आया''[33] सुरति के द्वारा इस 'पिछम मार्ग' का

अनुसरण करने के कारण इस साधना पद्धति को 'पिछम का मार्ग' के नाम से भी जाना जाता है।

'सुरति–शब्द–योग' में योग का अभिप्रायः 'जीव' और 'ब्रह्म' के मिलन मात्र से नहीं है अपितु एकाकार हो जाने से है। जीवात्मा ब्रह्म में समाकर उसी प्रकार से ब्रह्म हो जाती है जिस प्रकार से जल की बूँद सागर में समाहित हो, सागर रूप हो जाती है।

रेण–रामसनेही संतों की साधना पद्धति 'सुरति–शब्द–योग' पर अवलंबित एक विशिष्ट साधना पद्धति है, जिसमें 'राम' शब्द के वासोच्छ्वास ध्यानपूर्वक स्मरण पर बल दिया जाता है जो सतगुरु के द्वारा शिष्य को राम–नाम की महिमा सुनाने से ही प्रारंभ हो जाती है–

प्रथम शब्द श्रवना आया,
भिन्न भिन्न करके सतगुरु समझाया।
याकूं भजी तजी मत भाई, दुजी दिशा भूल मत जाई।
श्रवण लक्षण अैसा होई, जैसे म्रघ नाद बस होई।।[34]

तब सतगुरु शिष्य को 'राम' शब्द का भेद प्रकट करता है– "कहूँ शब्द का भेद, जा के भवसागर तिरे। राम शब्द उपदेश, ता से चौरासी टरे।।"[35] और 'शब्द' को रसना के द्वारा स्मरण करने का उपदेश देता है– "जन दरिया गुरुदेव जी, सब विधि दई बताय। जो चाहो निजनाम को, तो सांस उसांसों ध्याय।।"[36] संत बीरमदास ने उपर्युक्त विधि विशेष की पुष्टि करते हुए कहा है– "दोय बरस रसना सूँ रटिया, कीया प्रेम निवासा। आठ पहर हिरदा मंझ रहिया, सुमिरण सास उसासा।।"[37] संत उमाराम ने भी साधना की इसी विधि विशेष की साक्षी देते हुए कहा है– ''मूष में भूरकी मेला भाइ, सास उसासा लागी घाई।[38]

यों 'भुरकी' का स्थूल अर्थ 'धूलकण' अथवा 'धूली' होता है।[39] यह शब्द संभवतः हठयौगिक साधना की शब्दावली से निःसृत हुआ है। हठयोग साधना में भी 'भुरकी' का स्थूल अर्थ 'धूलि' ही होता है। किंतु यहाँ यह सामान्य 'धूलि' के रूप में प्रयुक्त नहीं हुआ है अपितु हठयोगी साधुओं के द्वारा हठयोग साधना के अंतर्गत अपने शरीर को तपाने के लिए प्रयुक्त की गई लकड़ी या उपलों की अग्निरूपी 'धूनी' की 'राख' या 'धूलि' के लिए प्रयुक्त किया गया है। इसे लोक में 'भभूति' भी कहते हैं। ये साधु किसी भी व्यक्ति के हर प्रकार के कष्ट निवारण के लिए, प्रभावित करने के लिए अथवा सम्मोहित करने के लिए इसे मुठ्ठी में भरकर उस व्यक्ति के ऊपर छिड़क दिया करते थे। इसे ही 'भुरकी डालना' कहा जाता है। संतमत में इस 'भुरकी' को उपर्युक्त 'राख' या 'धूलि' के स्थूल रूप में ग्रहण न करके गुरु प्रदत्त राम–नाम रूपी मूल मंत्र के प्रतीकात्मक अर्थ में ग्रहण किया गया है। संत दादूदयाल 'भुरकी' को स्पष्ट करते हुए कहते हैं– "दादु भुरकी राम है, सबद कहे गुरु ग्यान! तिन सबदों मन मोहिया , उनमन लाग्या ध्यान।।"[40]

संत दरिया साहब ने 'भुरकी' को राम–नाम रूपी उपदेश के रूप में इसके सूक्ष्म अर्थ में ही ग्रहण किया है–

लोक कये कूडर तारे, भजन भुरकी डारू। जनम जनम का पाप सबेही, भजन प्रतापे जारू।।टेक।।

के या भुरकी संकर सूनाई, पारबती उपदेसू। सूषदेव ने सुणगुपत सो, मीटे कष्ट कलेसो।।1।

नारद सारद सनकादिक भूरकी, नवजोगेसर लीनी। अनेक जीव भूरकी सो तरीया, वीसवामीत्र चीनी।।2।।

रामानंद कबीर राशी, पीपा ने परचाई। सेना धंना हरीचंद सरीषा, रगरग रूम रूम्याई।।3।

दादू रजब गोरष जोगी, भूरकी नक भरमाया। दे उपदेस चरण जीव लीना, मूगती माये मीलाया।।4।।

रामानंद का भूरकी साची, सूरा को समजावे। नूगरा देश दूर से भागे, जम पूर दोडया जावे।।5।।

सूगरा होये सो प्रेम से लेवे, मन में मोद बढावे। सतगुरु जी की करे चाकरी, मोष पटा जब पावे।।6।।

संतदास स्वामी की भूरकी, प्रेम गुरु जी दीनी। जन दरीयाव आतूर होके, हात जोड़र लीनी।।8।।[41]

संत सुखरामदास भी भुरकी कैं इसी अर्थ में ग्रहण करते हुए कहते हैं–

संतदास स्वामी में भुरकी, गुरु आकाश सुणाई। माला तजो भजो मुख रखना, प्रेमदास भल पाई।।

संवत् अठारह बरस चौबीस में, सतगुरु कृपा कीनी। कह सुखराम भागधिन मेरो, सतगुरु बिरम दीनी।।[42]

रेण–रामसनेही संतों की साधना के अंतर्गत यह 'भुरकी' रूपी 'राम–नाम' मंत्र मुख से प्रारंभ होकर 'कंठचक्र' में प्रवेश करता है जहां चार पंखुड़ियों का कमल खिला हुआ रहता है– ''मन पवना लिव बंध्या सासा, सबद कीया जाय कंठ मैं बासा। च्यार पांख कंठ का है कंवला, सुरत उलट जाहां किया संवला।।''[43] यहाँ से साधक को विरहानुभूति होनी प्रारंभ हो जाती है–

नेण सलुणा मधुर मुख, पीलो बदन सईस। किसन लच्छ कंठ के, जानों बीसवाबीस।।
ब्रह हिलोल रुंध घट, नेणा अखंडित धार। किसनदास

जन पारखा, आदू चहन विचार।।[44]

कंठ में गतिवत् हो शब्द 'हृद्य' में प्रविष्ट होता है, जहाँ आठ दलों का कमल विकसित रहता है– ''उरध कंवल सुरध भयो, हिरदै थान मंझार । अष्ट पंशुड़ी शुल रही, सबद करत गुंजार।"[45] हृद्य के पश्चात् विष्णु का निवास नाभिचक्र आता है जहाँ श्याम, पीले, श्वेत, लाल तथा हरे वर्ण की बत्तीस पंखुड़ियों का कमल खिला रहता है, नौ सौ नाड़ियाँ नृत्य किया करती है अूर 'अनाहत नाद' सुनाई पड़ने से साधक का रोम–रोम चेतन हो जाया करता है–

बत्तीस पंख कंवल नाभी में,
विष्णु निवास जान ताही में।।[46]
पीला हरया ज सेत है, लाल बरण अरू सांम। अै नाभी का चहन है, जाहां बिराजत रांम।।[47]

तथा –

एक दिन नाभ घर आया, गिगन नाद घन गाजे। रोम रोम झालर झणकारा, तार अखंडित बाजे।।
रसणांमाय रस मीठा, अनंत स्वाद मोहि आया। रोम चेतन जब हूवा, नाभ नाद गरणाया।।
नव सो नाड़ नाभ के मांहि, अमृत रूप सिंचाई। नव सूं छिकी नव सो नाड़ी, उलटी गंग हिलाई।।[48]

यद्यपि दरिया साहब सहित समस्त संतों नें नाभि के पश्चात् 'मूलचक्र' की स्थिति अपनी वाणी में वर्णित की है। किंतु संत पूरणदास के द्वारा अपने ग्रंथ 'ब्रह्मध्यान का अंग' में सद्गुरू के समक्ष जिज्ञासा प्रकट किए जाने पर संत दरिया साहब ने 'शब्द का भेद' बताते हुए 'नाभि' और 'मूलचक्र' के बीच में एक और स्थान का वर्णन किया है। परन्तु इन्होंने इस स्थान का नाम नहीं दिया है। इन्होंने इस स्थान पर ब्रह्मा का निवास मानते हुए सोलह दल के कमल की स्थिति स्वीकार करते हुए कहा है– "अब तो शब्द पंयाला भागा, छै पांक दस वहां है जागा। लाल रंग ब्रह्मा का देखा, सुरत सुंदरी जानी रेखा।।"[49] तदुपरांत शब्द 'मूलचक्र' में पहुँचता है। दरिया साहब ने यहां चौसठ दलों वाले कमल की स्थिति स्वीकार करते हुए, इसे गणपति का निवास स्थान कहा है– "चौंसठ पंकदल गणपति बासा, मूल चक्र दल कंवल प्रकाशा।।"[50] संत किसनदास ने इसे 'गुदाचक्र' की संज्ञा से अभिहित कर, वर्णन करते हुए कहते हैं– ''गुदाचक्र के घाट में, गंगा चले सुभाय। किसनदास न्हावण किया, उलट अपूठा आय।।"[51]

संत दरिया साहब के अनुसार 'मूलचक्र' से सुरति मेरुदंड की बीस गांठो का छेदन करते हुए बंकनाल के मार्ग से उर्ध्वगमन करती है – ''अब तो शब्द पिच्छम दिश चाल्या, मेरुदंड के मारग हाल्या। बीसूं गांठ मेरु की लांगी, बंकनाल होय सुरता जागी।।''[52] संत चैनराम बंकनाल के मार्ग में मेरुदंड के बीस घाट तथा इक्कीस गांठों का छेदन मानते हैं –

सुरत सिषर दिश संचरी, चली बंक कै घाट। पीठध्यान बंध लाइया, सुरत पैंनी भई निराट।।
सुरत पैंनी भई निराट, घाट जांहां बीस फिरोलै। कीयो सबद संचार, ईकीसों ताला शोले।।
मेर सिषर कै उपरै, चैन मुगत का हाट। सुरत सिषर दिस संचरी, चली बंक कै घाट।।[53]

संत किसनदास ने भी मेरुदंड की इक्कीस गांठो के छेदन का वर्णन किया है– "सुरत पलीता पवनसर, लगे उसासा धूण। गाँठ इकीसों छेदकर, मेर मंडी है तूण।।"[54] बंकनाल से होकर सुरति त्रिकुटी में प्रवेश करती है जहाँ दो दलीय कमल खिला हुआ रहता है– ''दोय पंख का कंवल त्रिकुटी, जाहा सुखमना धारा छूटी।''[55] इसे ही गगन भी कहते हैं। यहां साधक को ररंकार की धुन सुनाई पड़ती है–

"सुरत गीगन्मे पैसकर, बैठी पत का ध्यान संजोइ।
नाड़ नाड़ रुर रोम रोम, ररंकार धून होइ।।"[56]

डॉ. पारसनाथ तिवारी ने इसके 'नाभिचक्र' में सुनाई पड़ने की बात कही हैं। किंतु उपर्युक्त उद्धरण एवं अन्य संतों की वाणी में भी यह 'ररंकार ध्वनि' त्रिकुटी में ही सुनाई पड़ने की पुष्टि होती है। यह त्रिकुटी ही 'अनुभव देश' भी कहलाता है। यहीं पर आकर साधक में 'अनुभव वाणी' का आविर्भाव होता है। यहाँ पर साधक को सुख की प्रतीति होती है–

त्रिकुटी मांही अनंत सुष, दुष को नांही लेस ।
सुरत सबद ऐकै भई, वो कोई अनबै देस ।।
वो कोई अनबै देस, पेस जहां लई अमोला ।
ब्रह्म जोत दरसाय, नही कालन का झौला ।।
चैन दिवांनां कहत है, जनम मरण दुष पेस ।
त्रिकुटी मांही अनंत सुष, दुष को नाही लंस ।।[57]

त्रिकुटी साधक का गंतव्य नहीं उससे पूर्व का अंतिम पड़ाव अंतिम पड़ाव है, किंतु यहाँ तक भी विरला ही पहुँच पाता है। ब्रह्म साक्षात्कार के पश्चात् 'द्वैतभाव' समाप्त हो साधक 'ब्रह्म' हो जाता है। अतः यहाँ से साधक का पतन नहीं होता। 'त्रिकुटी' में साधक–साध्य का द्वैतभाव बने रहने से साधक का पतन संभव है – ''दरिया मन निज

मन भया, त्रिकुटी मंझ समाय। जे वां सू पाछा फिरै, तौ मन का मन होइ जाय।''[58]

त्रिकुटी के आगे शून्य समाधि घटित होती है। इसे ब्रह्मरंध अथवा दसवां द्वार कहते हैं। यहाँ सहस्रदल कमल विकसित रहने से इसे सहस्रार भी कहते हैं। त्रिकुटी तक साधक अपनी सामर्थ्य से पहुँच सकता है किन्तु 'शून्य समाधि' स्वतः घटित होने वानी एक सहज अवस्था होने के कारण यहाँ साधक का वश नहीं चलता। इसमें द्वैतभाव न रहकर सब एक हो जाते हैं। यही पारब्रह्म, ररंकार अूर अगम का देश भी है जहाँ 'सुरति– निरति' एक हो आया करती हैं अूर 'अहम्–त्वम्' का भाव समाप्त हो जाता है। संत पूरणदास ने इसी अवस्था का वर्णन करते हुए कहा है–

सुरत सुन शिखर चढ़ निरतसे नेह कर,
आदबर इसक मिल करत नेहा।
निरधूम निराकर, निरलेप निरधार तर,
प्रीत निसदिन हरि हेत गाया।
शरण दरियाव की दास पूरण कहै।
सहज दरियाव में प्राण न्हाया।।[59]

यही संतों की सहज समाधि, वेदांतियो की निर्विकल्प समाधि और चौथा पद भी है। इस प्रकार 'रेण'– रामसनेही संतों द्वारा निर्देशित साधना पद्धति में साधक को क्रमशः कंठ, हृदय, नाभि, गणपति निवास (मणिपुर), मूलचक्र, त्रिकुटी तथा शून्य समाधि (ब्रह्मरंध्र) ये छः से सात सोपान पार करने पड़ते हैं। तभी वह आत्मोपलब्धि को प्राप्त होता है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. *उत्तरी भारत की संत परंपरा , पृ. 663*
2. *स्वामी रामचरणः जीवन एवं कृतियों का अध्ययन , पृ0 83*
3. *रामसनेही सम्प्रदाय, पृ0 94*
4. *रामसनेही संतकाव्यः परम्परा और मूल्यांकन (सींथल – खेड़ापा के संदर्भ में), पृ0 47*
5. *रामसनेही संतकाव्यः परम्परा और मूल्यांकन (रेण के विशेश संदर्भ में), पृ0 26*
6. *वही , पृ0 84*
7. *वही , पृ0 26*
8. *वही*
9. *मानक हिन्दी व्याकरण और रचना, पृ0 288 , लोकोक्ति संख्या 60*
10. *कबीर , पृ0 273 , छंदांक , पृ0 255*
11. *छुटकर साखी क्र. 14 , ह. लि. ग्रंथांक 31010 (राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर)*
12. *साखी क्र. 5, सपना कौ अंग , ह. लि. ग्रंथांक 32582 वही*
13. *हिन्दी काव्य में निर्गुण संप्रदाय, पृ. 15–16*
14. *कबीर , पृ. 244*
15. *श्री रामस्नेही संप्रदाय, पृ. 101*
16. *कबीर , पृ. 244*
17. *श्री रामस्नेही संप्रदाय, पृ. 101*
18. *रामसनेही संप्रदाय, पृ. 260–261*
19. *हिन्दी की निर्गुण काव्यधारा और उसकी पृष्ठभूमि, पृ. 430*
20. *रामसनेही संप्रदाय, पृ. 262*
21. *नागौर : राजनैतिक एवं सांस्कृतिक वैभव, पृ. 84*
22. *कबीर ग्रंथावली , पृ. 13*
23. *हिन्दी की निर्गुण काव्यधारा और उसकी पृष्ठभूमि, पृ. 713*
24. *श्री रामस्नेही संतवाणी एवं भजन संग्रह ,पृ. 294*
25. *श्री दादू अनुभव वाणी ,पृ. 294*
26. *हिन्दी की निर्गुण काव्यधारा और उसकी पृष्ठभूमि, पृ. 713*
27. *ब्रह्मप्रचा कौ अंग, साखी क्र. 16, ह.लि. ग्रंथांक 31010 (राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर)*
28. *रामस्नेही अनुभव वाणी, पृ.72*
29. *श्री रामस्नेही संतवाणी एवं भजन संग्रह, पृ. 136*
30. *कुंडलिया छंदांक 22, प्रचा कौ अंग, ह.लि. ग्रंथांक (1) रामद्वारा टांकला*
31. *श्री रामस्नेही संतवाणी एवं भजन संग्रह , पृ . 94*
32. *वही, पृ . 135*
33. *श्री रामस्नेही अनुभव आलोक , पृ. 141*
34. *छंदांक 1–3, हमीरदास कृत ब्रह्म वीलास, ह. लि. ग्रंथांक (1), हमीरदास जी का रामद्वारा बाड़ीकुंआ, नागौर*
35. *श्री रामस्नेही संतवाणी एवं भजन संग्रह , पृ. 84*
36. *साखी क्रं 12, गुरूदेव कौ अंग, ह. लि. ग्रंथांक 31010 (राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर)*
37. *श्रीराम स्नेही अनुभव आलोक , पृ.139*
38. *ग्रंथ भुरकीबोध भगतमाल, ह. लि. ग्रंथांक (10) (साधां की जांगाा, डेह*
39. *हिन्दी–शब्द –सागर (सातवां भाग), पृ. 3673*
40. *वही*
41. *दरिया साहब कृत फुटकल पद क्र. 43, ह. लि. ग्रंथ , निजी संग्रहालय*

42. सुखरामदास कृत ग्रंथ 'भुरकी' , छदांक 73–74 मुद्रित वाणी संग्रह , रामद्वारा महामंदिर , जोधपुर
43. उमाराम कृत ग्रंथ 'भुरकी बोध भगतमाल' ह. लि. ग्रंथांक (10) , सांधा की जांगा , डेह
44. रामस्नेही अनुभव बाणी , पृ. 71–72
45. छंदांक 10, चैनाराम कृत प्रचा कौ अंग , ह. लि. ग्रंथांक (1), रामद्वारा टांकला
46. श्री रामस्नेही संतवाणी एवं भजन संग्रह , पृ.86
47. छंदांक 21, हमीरदास कृत ब्रह्म वीलास, ह. लि. ग्रंथांक (1), हमीरदास जी का रामद्वारा बाड़ीकुंआ, नागौर
48. श्री रामस्नेही अनुभव आलोक , पृ. 140–41
49. श्री रामस्नेही संतवाणी एवं भजन संग्रह , पृ.86
50. वही
51. रामस्नेही अनुभव बाणी , पृ. 71–72
52. श्री रामस्नेही संतवाणी एवं भजन संग्रह , पृ.86
53. छंदांक 16, चैनाराम कृत प्रचा कौ अंग, ह. लि. ग्रंथांक (1) , रामद्वारा टांकला
54. रामस्नेही अनुभव बाणी, पृ. 72
55. श्री रामस्नेही संतवाणी एवं भजन संग्रह , पृ.87
56. नादप्रचा कौ अंग, साखी क्र. 25, ह.लि. ग्रंथांक 31010 (राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर)
57. छंदांक 22, चैनाराम कृत प्रचा कौ अंग, ह. लि. ग्रंथांक (1), रामद्वारा टांकला
58. ब्रह्मप्रचा कौ अंग, साखी क्र. 5, ह.लि. ग्रंथांक 31010 राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर
59. श्री रामस्नेही संतवाणी एवं भजन संग्रह , पृ.104

विष्णु प्रभाकर की साहित्यिक यात्रा–एक विहंगावलोकन

खुशबू भार्गव
शोधार्थी, जय नारायण व्यास विश्वविद्यालय, जोधपुर

www.shodhshree.com

शोध सारांश

प्रस्तुत शोध–पत्र का आयाम व्यापकता लिए हुए है। जिसकी शोधात्मक सोच से साहित्य–जगत में नई दृष्टि से नये आयाम प्रस्तुत किये जा सकते है। विष्णु प्रभाकर का जीवन एवं साहित्य का चिंतन मनोवैज्ञानिक ढंग से परीक्षण करने में अपेक्षित रहा है। जिसके अनुसार इनकी कहानियाँ जीवन के संकुचित रूप को दर्शाने के लिए उपयोगी रही है जबकि उपन्यास समग्र एवं व्यापक रूप को दर्शाने तथा नाटक के माध्यम से जीवन को वास्तविक रूप में प्रस्तुत करने में महत्वपूर्ण भूमिका रही है। विष्णु प्रभाकर की समस्त रचनाओं से पाठक–समाज उद्‌बोधित होकर जीवन के साथ कार्य रूप में जुड़ कर समाज की प्रगति, समृद्धि में सहायक होता है। इस शोध में इन सभी बातों को उद्‌घाटित करने का प्रयास रहा है।

संकेताक्षर *: आशावादी, आस्थावादी, सौन्दर्य, सांस्कृतिक आत्मा, लोकहितवादी चेतना, भ्रष्टता, सांप्रदायिकता, वैश्विक दृष्टिकोण।*

मैं बीते युग का भटका राही, नहीं जानता मेरी मंजिल क्या है,
मैं चलता चला आ रहा हूँ, चलता चला जाऊंगा,
भोर से साँझ तक, साँझा से भोर तक,
जीवन से मृत्यु तक, मृत्यु से जीवन तक,
चिर एकांकी चिर बैरागी, गाता हुआ यह गीत गुरूदेव का,
'जदी तोर डाक सुने केऊ ना आसे,
तबे एकला चलो रे... एकला चलो रे।'

जन्म : 21 जून, 1912 को ग्राम मीरपुर, मुजफ्फर नगर, उत्तर प्रदेश।

शिक्षा : हाई स्कूल, हिंदी भूषण, प्राज्ञ, हिन्दी प्रभाकर तथा बी.ए. की परीक्षाएँ उत्तीर्ण।

विवाह : 26 वर्ष की आयु में 30 मई, 1938 को कनखल (हरिद्वार) की सुशीला देवी से हुआ।

मृत्यु : 11 अप्रैल, 2009 मे।

विष्णु प्रभाकर : जीवन और परिचय

प्रभाकरजी अपने जीवन में आशावादी और आस्थावादी व्यक्तिरहे है। स्वतन्त्र साहित्य लेख के व्यवसाय के रूप में अपनाकर घोर कठिनाईयों का सामना करते हुए उन्होनें इस रूप को निखारा है। यह उनकी आशावादी दृष्टि का ही परिणाम है कि वे वीभत्स में छिपे सौन्दर्य को देख पाते है और उसे सुरक्षित कर विकसित करने का सामर्थ्य रखते हैं। शायद कर्म प्रधान दृष्टिकोणमें ही आशा और आस्था के बीज समाये हैं तथा उनका समस्त साहित्य उनके जीवन की उसी आस्था को बुलन्द आवाज में मुखर करता है। उनके व्यक्तित्व में कर्मठता भी कूट–कूट कर भरी थी।

इसलिए वे जो कुछ लिखते अनुभव से लिखते और अनुभव प्राप्त करने के लिए कठिन परिश्रम करते। अपनी कृत्तियों की रचना करने से पहले वे अथक प्रयास करके उससे सम्बन्धित परिवेश, इतिहास, भूगोल, सभ्यता, सांस्कृतिक आदि को जान लेना चाहते थे। स्वयं विषय का सम्पूर्ण ज्ञान प्राप्त कर लेने के पश्चात ही वे कृत्ति को हाथ लगाते। विष्णु प्रभाकर हिन्दी लेखन के परिणाम के कारण ही विशिष्ट नहीं है, उन्हें हिन्दी भाषा से प्रेम था तथा हिन्दी के प्रसार में वह अपने को गौरवान्वित महसूस करते थे। प्रभाकरजी संवेदनशील कलाकार हैं और पूर्ण समर्पित भाव से भारतीय सांस्कृतिक आत्मा को उन्होनें मानवता का जामा पहनाया है। उनकी प्रकृति मैं प्रसन्नता, विनोदप्रियता, यायावरी जीवन, मिलनसारी, स्वाध्याय के माध्यम से प्राप्त व्यावहारिक जीवन की अनेक अनुभूतियों विशिष्ट गुणों के रूप में विद्यमान ही उनके लेखकीय व्यक्तित्व का एक रूप वह भी है जो सदैव लोकहितवादी चेतना का सर्जक रहा है जिसमें जीवन है, जिजिविषा है, अनवरत आस्था है, स्वाभिमान तथा कर्म की निरन्तरता हैं। लेखक की साहित्य–सेवा की भावना लेखन के मार्ग में आने वाली कठिनाईयों को उन्होनें हँस कर झेला। लेखक की पृष्ठभूमि के रूप में इन सभी ने उनकी लेखनी को संवारने का कार्य किया। व्यक्तिप्रभाकर को साहित्यिक प्रभाकर से अलग करना सम्भव नहीं। प्रभाकरजी हिन्दी साहित्य के उज्ज्वल भविष्य के लिए आशावादी रहे। वे सदैव आशावाद और आस्थावाद का सन्देश पहुँचाते रहे। वे प्रदर्शन वृत्ति से कोसों दूर रहे। उनकी लेखनी सदा सच्चाई का पक्ष लेती हुई दिखाई पड़ती है, मानवीय मर्यादा को उन्होनें आघात नहीं पहुँचाया है। वे राजनीतिक दृष्टि से भी जागरूक थे। राष्ट्रीय समस्याओं पर निडरता से लेखनी चलाई। चापलूसी उनको पसंद नहीं थी। जनता का कल्याण करना उनका आदर्श था। अपनी रूचियों के अनुसार ही साहित्य को उन्होनें नया रूप दिया। वर्तमान सामाजिक तथा राजनीतिक दशा का चित्रण देशहित में आवश्यक है। उनकी कहानियाँ, उपन्यास, एकांकी आदि वर्तमान समाज की मनोदशा का चित्रण करती है। कथाओं में राष्ट्रीयता की अभिव्यक्ति देखने का मिलती है। उनकी राष्ट्र भावना भारतीय थी। मध्यम एवं निम्न वर्ग के शोषण को अपनी रचनाओं में उभारा है। प्रभाकर जी की रचनाओं में प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष रूप से भ्रष्ट राजनीति एवं समाज का विरोध दिखाई पड़ता है। यह एक देशभक्त साहित्यकार ही कर सकता है। उनकी रचनाओं का भी एक विशिष्ट उद्देश्य रहा है तथा वही उद्देश्य उन्हें अन्य साहित्यकारों से पृथक व्यक्तित्व प्रदान करता है। उनके समकालीन साहित्यकार जहाँ मनोरंजन के लिए लिख रहे थे वही प्रभाकरजी का मुख्य उद्देश्य रहता था। उन्होने ऐसी समस्याओं की तरफ इशारा किया जो भ्रष्टता की देन है। विष्णुजी ने अपना सम्पूर्ण जीवन साहित्य को समर्पित कर दिया। उनके विचार उत्तम है। समाज की जनता की मानसिकता का उन्हे अंदाजा था। सामाजिकता का आविर्भाव उनमें समायी मानसिक एकता के माध्यम से ही संभव है। राजनीतिक प्रखरता के साथ–साथ सामाजिक प्रगतिशीलता उनके साहित्य में दिखाई पड़ती है। हालांकि अन्य पहलुओं पर भी उन्होनें लिखा है। उनकी एक विशेषता है कि साम्प्रदायिक तथा सांस्कृतिक एकता का समर्थन करते हुए उन्होनें कभी हिन्दू–मुसलमानों का विरोध नहीं किया। अपनी संस्कृति को साहित्य से जोड़ा। उनका मानना था कि साहित्य का संबंध सीधे मानव समुदाय से है। उन्होनें साहित्य के बदलते स्वरूप की चर्चा की है। वे एक कुशल साहित्यकार थे। उनकी भाषा बहुत स्पष्ट थी। वे अपने विचारों को विनोद–पूर्ण वर्णनों के अंदर ऐसा लपेटकर रखते थे कि उनका आभास होने लगता था। विषय की विविधता उनकी विशिष्ट उपलब्धि है। उनके उपन्यासों में नारी की मानसिक यातनाओं के मर्म को व्यक्त किया गया है। उनकी प्रत्येक कहानी जीवन के कड़वे–मीठे अनुभवों की साक्षात तस्वीर है। नारी मन की त्रासदी को अभिव्यक्तिदेने वाली उनकी कहानियों आधुनिक कथा–साहित्य में अपनी एक अलग पहचान रखती है। उनकी कहानियाँ समस्या प्रधान भी है। सामाजिक आपसी–प्रेम, संस्कारों की ऊब आदि के तथ्यों को उद्घाटित करती है। उनके साहित्य में सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक तथा सांस्कृतिक चेतना प्रत्येक पहलू का प्रभाव स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। साहित्य के क्षेत्र में विष्णु जी के प्रविष्ट होने का कोई एक कारण नहीं है बल्कि अनेक कारण एवं प्रोत्साहन है जो समय–समय पर उन्हें प्रेरित करते रहे हैं। साहित्य–सृजन के पीछे अपना लाभ देखना उन्हें पसंद नहीं था। यह उनके माता–पिता के ही संस्कार रहे है। साहित्य–सृजन के पीछे उनका मुख्य उद्देश्य यथार्थ–चित्रण तथा जन–कल्याण की भावना था। जीवन के प्रारम्भ में विष्णु प्रभाकरजी का कोई एक उद्देश्य नहीं रहा है। कभी रोजगार, कभी अनुरोध, कभी अवसाद से मुक्ति कभी भविष्य की चिन्ता, कभी–कभी जीवन की चुनौतियाँ उनके साहित्य की प्रेरणा और उद्देश्य रहा है।

बढ़ता साहित्यिक स्तर उनके साहित्य में निश्चयता का कारण बना उन्होनें सदैव इसी बात का प्रयास किया कि अपनी अनुभूतियों की वास्तविकताओं, शिल्प–सौष्ठव के साथ सामाजिक परिस्थितियों का चित्रण, समाज–कल्याण के लिए हो।

विष्णु प्रभारकजी का साहित्य–सृजन

एकांकी संग्रह

इंसान और अन्य एकांकी, 1947, हिन्दी ज्ञान मन्दिर, बम्बई, स्वाधीनता का संग्राम 1950, हिन्दी प्रकाशन मंदिर, इलाहाबाद, अशोक तथा अन्य एकांकी1956, राजनारायण लाल, इलाहाबाद, प्रकाश और परछाई 1956, भारतीय साहित्य प्रकाशन, मेरठ, बारह एकांकी1958, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, दस बजे रात 1959, आत्माराम एंड सन्स दिल्ली, ये रेखाएँ, ये दायरे 1963, हिन्दी ग्रंथ रत्नाकर, दिल्ली, ऊँचा पर्वत सहरा सागर 1966,अक्षर प्रकाशन, दिल्ली, मेरे प्रिय एकांकी, 1970, लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद, मेरे श्रेष्ठ रंग एकांकी, 1971, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, तीसरा आदमी1974, शब्दाकार, दिल्ली, डरे हुए लोग 1977, अतुल आलोक प्रकाशन, दिल्ली।मैं भी मानव हूँ 1982, किताब घर, दिल्ली, दृष्टि की खोज 1983, संभावना प्रकाशन, हापुड, मैं तुम्हे क्षमा करूँगा 1986, इन्द्रप्रस्थ प्रकाशन, दिल्ली।, अभया 1987, पंकज प्रकाशन, दिल्ली।

जीवन संस्मरण

जाने अनजाने 1961 विश्वविद्यालय प्रकाशन, गोरखपुर। कुछ शब्द कुछ रेखाएँ 1965, सस्ता साहित्य मंडल, एन 77, कनाट, सर्कस, नई दिल्ली। आवारा मसीहा 1974 राजपाल एण्ड सन्स, मदरसा रोड, कश्मीरी, गेट, दिल्ली–6अमर शहीद भगत सिंह1976 हिन्दी पाकेट बुक्स, शाहदरा, दिल्ली।

उपन्यास

निशिकान्त, तट के बंधन स्वप्नमयी,दर्पण का व्यक्ति, कोई तो, अर्द्धनारीश्वर, संकल्प, संस्कार।

कथा संग्रह

आदि और अंत, रहमान का बेटा, जिदंगी के थपेडे, संघर्ष के बाद, सफर के साथी, खंडित पूजा, साँचे और कला, मेरी तैतीस कहानियाँ, धरती अब भी घूम रही है, मेरी प्रिय कहानियाँ, पुल टूटने से पहले, मेरा वतन, खिलौने, मेरी लोकप्रिय, कहानियाँ, इक्यावन कहानियाँ, मेरी कहानियाँ, मेरी कथा–यात्रा, एक और कुंती, जिदंगी एक रिहर्सल, एक आसमान के नीचे, मेरी प्रेम कहानियाँ, चर्चित कहानियाँ, कर्फ्य और आदमी, आखिर क्यों, दस प्रतिनिधि कहानियाँ, मैं नारी हूँ, जीवन का एक और नाम, सपूर्ण कहानियों–आठ खंडों में, जीवन का एक और नाम, ईश्वर का चेहरा।

लघु कथा साहित्य

जीवन पराग, आपकी कृपा है, कौन जीता और कौन हारा।

नाट्य साहित्य बड़े नाटक

नवप्रभात, समाधि, डॉक्टर, युगे–युगे क्रांति, टूटते परिवेश, कुहासा, और किरण, ट्गर, चाँदिनी, सत्ता के आर–पार, अब और नहीं, गांधार की भिक्षुणी, श्वेत कमल, केरल का क्रांतिकारी, सूरदास।

पुरस्कार एवं सम्मान

1. कथा–संग्रह, 'संघर्ष के बाद' उत्तर प्रदेश सरकार द्वारा पुरस्कृत।
2. इंडियन राइटर्स एसोसिएशन द्वारा 'आवारा मसीहा' के लिए वर्ष 1974 का 'पाब्लो नेरूदा सम्मान'।
3. सन् 1975 के इंटरनेशनल ह्यूमनिस्ट अवार्ड, जो कि इंटरनेशनल ह्यूमनिस्ट सोसायटी ऑफ इंडिया द्वारा मिला।
4. उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान द्वारा 'आवारा मसीहा' के लिए सन् 1975–76 का 'तुलसी पुरस्कार'।
5. सन् 1976 में 'आवारा मसीहा' के लिए सोवियत लैंड नेहरू पुरस्कार। साथ ही दो सप्ताह के लिए सोवियत रूस के भ्रमण का निमंत्रण भी मिला।
6. स्व. दशरथ मल सिंघवी की स्मृति में सन् 1980 में राष्ट्रीय एकता पुरस्कार।
7. शब्द लोक, भारतीय लेखक संगठन द्वारा सन् 1980 में शब्द–शिल्पी की उपाधि से सम्मानित।
8. हरियाणा साहित्य अकादमी द्वारा सन् 1980–81 के लिए सूर–पुरस्कार।
9. ऑल इंडिया आर्टिस्ट एसोसिएशन, शिमला द्वारा सन् 1983 में 'भारतेन्दु हरिशचन्द्र पुरस्कार' से सम्मानित।
10. सन् 1986 में हिन्दी साहित्य सम्मेलन, इलाहाबाद की साहित्य वाचस्पति' की मानह उपाधि से सम्मानित।

11. राजभाषा विभाग, बिहार सरकार द्वारा नाटक 'श्वेतकमल' के लिए 'बेनीपुरी पुरस्कार' से सम्मानित।
12. उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान द्वारा सन् 1987 में 'सर–यान संस्थान' से सम्मानित।
13. हिन्दी अकादमी, दिल्ली द्वारा सन् 1987–88 में शलाका सम्मान से सम्मानित।
14. भारतीय ज्ञानपीठ, दिल्ली द्वारा 'सत्ता के आर–पार' नाटक के लिए मूर्ति देवी पुरस्कार से सम्मानित।
15. काफी हाउस लेखक संघ, 'दिल्ली द्वारा सन् 1990 काफी हाउस सम्मान।
16. सन् 1990–91 'महाराष्ट्र–भारती', अखिल भारतीय हिन्दी अकादमी द्वारा सम्मानित।
17. भारतीय भाषा परिषद्, कलकत्ता द्वारा उपन्यास 'अर्द्धनारीश्वर' के लिए सन् 1992 हिन्दी भाषा साहित्य पुरस्कार।
18. साहित्य अकादमी, दिल्ली द्वारा सन् 1993 के लिए उपन्यास 'अर्द्धनारीश्वर' पुरस्कृत।
19. नागरी प्रचारीणी सभा, वाराणसी द्वारा 'ताम्रपत्र'।
20. उत्तर–प्रदेश सरकार द्वारा 'धरती जब भी घूम रही है' तथा 'स्वप्नमयी' उपन्यास पुरस्कृत।
21. अन्तर्राष्ट्रीय कहानी प्रतियोगिता में दोनों 'शरीर से परे' तथा 'गृहस्थी' कहानियाँ पुरस्कृत, शरीर से परे–प्रथम पुरस्कार।
22. अखिल भारतीय बंग साहित्य सम्मेलन द्वारा दिल्ली अधिवेशन में सम्मानित।
23. 'नवप्रभात', 'देवी' तथा 'बंदिनी' आदि नाटकों के प्रदर्शनों ने अनेक पुरस्कार जीते, 'नवप्रभात' महाराष्ट्र प्रशासन द्वारा दो बार पुरस्कृत।
24. प्रौढ़ शिक्षा विभाग द्वारा 'शंकराचार्य', 'बाजी प्रभु देशपांडे', पहला सुख निरोगी कार्य तथा 'हमारे पड़ोसी' आदि पुस्तकें पुरस्कृत।
25. 'संघर्ष के बाद' और 'कुछ शब्द, कुछ रेखायें (संस्मरण) उत्तर प्रदेश सरकार द्वारा पुरस्कृत।
26. उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान द्वारा महात्मा गाँधी जीवन–दर्शन एवं साहित्य सम्मान 1995।
27. महापंडित राहुल सांस्कृत्यायन यायावरी पुरस्कार– 1995 हिन्दी संस्थान, आगरा।
28. शरत् समिति, कलकत्ता द्वारा भरत मेमोरियल मेडल–1995
29. बर्मा एजुकेशन सोसायटी, दिल्ली द्वारा अनाम देवी सम्मान– 1996।
30. रसकृति पूर्वाभा, वाराणसी (उत्तर प्रदेश) द्वारा साहित्य मार्तंड 1996 से सम्मानित।
31. बिहार राज्य हिन्दी अकादमी द्वारा राजेन्द्र प्रसाद शिखर सम्मान– 1999 से सम्मानित।

साम्प्रदायिकता एवं संस्कृति

विष्णु प्रभाकरकी रचनाओं में सांप्रदायिकता से ऊपर उठ कर मानवीय संवेदना हमें देखने को मिलती है। इनके अधिकतर पात्र संघर्षरत है। जिनका संघर्ष मूल रूप से स्वयं के लिए न होकर किसी न किसी सांस्कृतिक चेतना से अनुप्रमाणित है। लोगों में धार्मिक सहिष्णुता की भावना लुप्त होती जा रही है जिससे धर्म के नाम पर आतंक बढ़ता जा रहा है। इन्होनें अपनी रचनाओं में धर्म के नाम पर दंगे फैलाने वालों को आड़े हाथों लिया है। सम्पूर्ण लघुकथाएँ नाम से उनकी लघुकथाओं का संकलन है जिसमें मनुष्यों में आत्मीय सम्बन्धों की स्थापना पर जोर दिया गया है। वे स्नेह और सेवा को ही सर्वोपरि मानव मूल्य मानते थे। उनके उपन्यास एवं कहानियाँ भी जीवन संस्कृति और उसमें सांस्कृतिक चेतना के बदलते संदर्भो को लेकर अपने स्वरूप का निर्माण करते हैं। 'साम्प्रदायिक सद्भाव और धर्म का स्वरूप' शीर्षक निबन्ध में वे बताते है कि– ''जिज्ञासा और विचार करने की प्रवृत्ति तभी पैदा हो सकती है और तभी स्थापित स्वार्थों का, जो नाना रूपों में प्रगट होते हुए सामना किया जा सकता है। अज्ञात को समझने की कोशिश वैज्ञानिक दृष्टि से ही हो सकती है, अंधविश्वास के द्वारा नहीं।''

साम्प्रदायिक हिंसा के दौरान मनुष्य जिस प्रकार मानवीयता को हानि पहुँचाता है, ऐसे समय में अपने पतन को ही बढ़ावा देता है। वे धर्मान्धता को मानव–मूल्यों की प्रतिष्ठा में सबसे बड़ी बाधा मानते हैं क्योंकि धार्मिक कट्टरता सहानुभूति को मारकर विभेद को जन्म देती है।

देशभक्ति एवं राष्ट्रीयता

विष्णु प्रभाकर ने अपने साहित्य में सांस्कृति तत्व को स्वर प्रदान किया है तथा प्राचीन मूल्यों का चित्रण किया है। उन पर समकालीन सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक, सांस्कृतिक सभी परिस्थितियों का प्रभाव पड़ा है जिनके

आलोक में उन्होनें अपने विशाल साहित्य का निर्माण किया है। भारतीय धर्म समाज, संस्कृति तथा सभ्यताओं की पौराणिकता स्थिर रहेगी। साहित्य की सार्थकता इसी में है कि जिससे मानव के चरित्र का उत्थान हो, आन्तरिक द्वेष समाप्त हो, आपसी समानता एवं सद्भावना स्थापित हो, प्रभारक जी का साहित्य वैसा ही है। उनकी यही देशभक्तिउनके साहित्य में दिखाई पड़ती है और जहाँ तक राष्ट्रीयता का प्रश्न है उनका यही कहना है कि हमारे समाज के जो बदलाव हैं चाहे वह किसी भी प्रकार के क्यों न हो, वह राष्ट्र की प्रगति में बाधा न डालें। उनका मानना था कि राजनीति की अपेक्षा लेखकों के बीच वैश्विक दृष्टिकोण पर बहस होनी चाहिए। वर्तमान परिप्रेक्ष्य में साहित्य की आधुनिकता विषय की चयन की अपेक्षा, उन विषयों को देखने के दृष्टिकोण के नयेपन में है। वे एक संवेदनशील साहित्यकार थे। उन्होनें देश की जनता की मानसिकता का अंकन किया। जिस किसी विषय पर उन्होनें लिखा उनका दृष्टिकोण सामाजिक और राजनीतिक समस्याओं पर भी रहा है। मानवीय-मूल्यों की प्रतिष्ठा के साथ उन्होनें समस्याओं के निवारण का मार्ग दिखाया है। मानव के मूल्यों का जब विकास होगा तभी समाज में नैतिकता तथा जीवन मूल्यों की स्थापना हो पायेगी। विष्णु प्रभारक जी ने सामाजिक चेतना के साथ ही राष्ट्रीय चेतना को भी अपनाकर साहित्य रचना की है। सम्पूर्ण राष्ट्रीय चेतना को उन्होनें व्यापक दृष्टि दी। भारतीय जन-मानस में राष्ट्रीयता का विकास किया। एक जागरूक साहित्यकार समाज के प्रति अपने कर्त्तव्य को नहीं भूल पाता है, वह सदैव समाज में जागृति लाने का प्रयास करता है। सामाजिक परिवर्तनों का यदि हम आंकलन करेंगे तो पायेगें कि उनकी साहित्यिक कृत्तियों में उसकी प्रतिछाया परिलक्षित होती है।

विष्णु प्रभाकर का साहित्यिक योगदान

विष्णु प्रभाकर ने जन्म से लेकर मृत्यु तक की सभी अनुभूतियों को तथा साहित्यिक जीवन की उपलब्धियों को उन्होनें अपनी कृत्तियों के माध्यम से व्यक्तकिया है। साहित्यकार का जीवन जैसा होता है अधिकाशंतः उनकी रचनाओं में भी वह परिलक्षित होता है, जिसका विश्लेषण नहीं किया जा सकता। कृत्तित्व वह सृष्टि है जिसका प्रभाव हम पर अर्थ को समझने से पहले ही पड़ने लगता है, ऐसी रचनाएँ सर्वश्रेष्ठ होती है, जिन्हें बार-बार पढ़ने पर भी पाठक को ऊब का आभास न हो बल्कि आनन्द अथवा रस ही प्राप्त होता रहे। जहाँ भावनाएँ समाप्त होती है, वहीं साहित्य का भी स्वाभाविक अन्त है। शब्द तो लेखक के मन-मस्तिष्क की पूँजी होती है जिसमें विचारों तथा कल्पनाओं का समावेश होता है साथ ही भावों की गहनता होती है। एक सच्चे साहित्यकार का यह कर्त्तव्य है कि वह समाज में व्याप्त समस्याओं एवं उपलब्धियों को शब्द एवं रूप दें तथा राष्ट्र को उन्नति कराने में प्रेरणादायी साहित्य की रचना करें। यही उसके साहित्य की समाज को सच्ची देन होगी।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. *वृहत् हिन्दी कोष : कालिका प्रसाद।*
2. *हिन्दी नाटक कोष : डॉ. दशरथ ओझा।*
3. *हिन्दी साहित्य कोष : भाग-1 डॉ. धीरेन्द्र वर्मा।*
4. *प्रभाकर विष्णु, 'अमर निराशा', ''सम्पूर्ण कहानियाँ'', भाग-1।*
5. *प्रभाकर विष्णु, 'माँ ने कहा था', ''सम्पूर्ण कहानियाँ'', भाग-1 ।*
6. *राय गोपाल, 'हिन्दी कहानी का इतिहास', राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण-2008।*
7. *प्रभाकर विष्णु, 'जन, समाज और संस्कृति', सम्पूर्ण निबंध, भाग-1।*
8. *प्रभाकर विष्णु, 'सम्पूर्ण निबंध', भाग-2।*
9. *साहित्य संचय, डॉ मन मोहन सहगल।*

हिंदी दलित कहानी : देह-उत्पीड़न बनाम स्त्री

डॉ. नितीन गायकवाड
असिस्टेंट प्रोफेसर, सावित्रीबाई फुले पुणे विश्वविद्यालय, पुणे (महाराष्ट्र)

www.shodhshree.com

शोध सारांश

समाज में स्त्री और पुरुष दोनों को समान महत्त्व होना चाहिए, लेकिन पितृसत्तात्मक समाज और ब्राह्मणवाद, धर्म शास्त्रों में इस बात की अनुमति बिल्कुल नहीं है। ब्राह्मणवाद ने स्त्री और पुरुष के बीच भेदभाव को बढ़ावा दिया हैं। इसी कारण समाज में स्त्री-पुरुष के बीच अंतर दिखाई देता हैं। डॉ. आंबेडकर ने समाज को स्त्री जीवन के संदर्भ में समता और स्वतंत्रता की दृष्टि देने का कार्य किया है। समाज में स्त्री को सम्मान और अधिकार देने की बात कही है। स्त्रियों के विकास हेतु उन्हें शिक्षित करने का निर्णय लिया है। डॉ. आंबेडकर की विचारधारा समाज को स्त्री के प्रति सोचने-देखने की नई दृष्टि देती हैं। यह दृष्टि ज्ञान-विज्ञान और मानवीय विवेक पर आधारित रही है। वर्ण-व्यवस्था में स्त्री नैतिकता के सवाल को उसकी देह से जोड़कर देखा जाता है। स्त्री के अस्तित्व के संदर्भ में हिंदू समाज बेहद असंवेदनशील दिखाई देता है। प्राचीन काल से हिंदू धर्म में देवदासी प्रथा का प्रचलन रहा है। यह प्रथा हिंदुओं के मंदिरों में दिखाई देती है। डॉ. आंबेडकर ने वेश्यावृत्ति और देवदासी प्रथा का विरोध करके स्त्रियों को इस प्रथा से मुक्त होकर सम्मानजनक जीवन जीने की सलाह दी है। हिंदी कहानियों में दलित स्त्रियों के देह उत्पीड़न को न सहने के प्रसंगों को चित्रित करके यह संदेश दिया है कि स्त्री अब अपने अस्तित्व के प्रति सजग हुई है। वह किसी भी स्थिति में जुल्म सहने को तैयार नहीं है। बल्कि जुल्म के कारणों को खोज के उस की जड़ को मिटाने के लिए संघर्ष कर रही है।

***संकेताक्षर** : अस्मिता, शूद्र-अति शूद्र, वंशवाद, लिंगवाद, सामंतवाद, स्त्री-विमर्श, वर्णाश्रम व्यवस्था, जाति, द्विज, आंबेडकरवाद, ब्राह्मणवाद, संविधान, मातृसत्ता, पितृसत्ता।*

धर्म और समाज की दृष्टि में स्त्री का जीवन और उन के नैतिकता के सवालों का अध्ययन करना बेहद दिलचस्प रहा है। धर्म के साथ दलित तथा पिछड़ी जन-जातियों की स्त्रियों के देह-उत्पीड़न के सवाल का संबंध क्या है ? स्त्री शोषण का सब से बड़ा हथियार उस की देह ही रही है। देह के आधार पर स्त्री जन्मतः कमजोर घोषित की गई है। राजेन्द्र यादव के शब्दों में-"हजारों सालों से औरत की देह का शोषक और शासक सिर्फ पुरुष रहा है, वही उसे भोगता, प्रदर्शित करता और खरीदता-बेचता रहा है-अब उसे बताना जरूरी है कि देश, राष्ट्र और संस्कृति में हमारी भी उतनी ही हिस्सेदारी है, कि हमारी देह, हमारा जीवन हमारे अपने हैं।"[1] स्त्री शोषण की पहली सीढ़ी उसकी देह से शुरु होती है। स्त्री की देह का सवाल पवित्र और अपवित्र जैसे धार्मिक विधानों द्वारा निश्चित कर के उसे डराने और धमकाने के लिए उस की देह को निशाना बनाना पुरुषों की बहुत पुरानी आदत और साजिश दोनों दिखाई देती है।

भारतीय समाज में स्त्रियों के देह उत्पीड़न की समस्या गंभीर रही है। इस समस्या के कारण क्या हैं ? देह उत्पीड़न की समस्या अधिकांश दलित और पिछड़ी जन-जातियों की स्त्रियों से जुड़ी हुई है। इस समस्या का कारण गरीबी और जाति दोनों दिखाई देती है। समाज की प्रत्येक हिंसात्मक कार्यवाही में स्त्री को निशाना बनाया जाता है। दुनिया का कोई भी धर्म स्त्री की सुरक्षा और सुविधा देने के पक्ष में नहीं है। अर्थात स्त्री के प्रति धर्म का रवैया सकारात्मक नहीं है। यह बात स्पष्ट हुई है कि स्त्री शोषण की जड़े हिंदू धर्म में दिखाई देती हैं। स्त्री को धर्म कैसे और क्यों संचालित व नियंत्रित करता है ? इस का

तर्काश्रित विश्लेषण सीमोन द बोउवार के शब्दों में–"तमाम देशों में ईमानदार और पवित्र स्त्री को परिवार में कैद रखने के परिणामस्वरूप वेश्यावृत्ति को बढ़ावा मिला। समाज के हाशिए पर खड़ी ये स्त्रियाँ समाज को स्वस्थ रखने में महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करती हैं(ऐसा ईसाई धर्मगुरू सोचते थे। वे जघन्य थीं, पापी थीं, मगर विश्वास था कि वेश्यावृत्ति को खत्म कर दिया जाए, तो परिवारों में व्यभिचार बढ़ जायेगा, क्योंकि पुरूष स्वभाव से मनचला होता है। शहरों में वेश्याओं की उतनी ही आवश्यकता है, जितनी गंदगी और कचरा बहाने के लिए नालों की। बुर्जुआ परिवारों में चूँकि बड़ी कड़ाई से एक ही विवाह का प्रचलन था। अतः आमोद–प्रमोद के लिए पुरूष को बाहर ही जाना पड़ता था। शापेनहावर ने इन वेश्याओं के लिए कहा कि वे सर्वश्रेष्ठ पाप हैं क्योंकि वे पुण्य की संरक्षक हैं।"[2] सीमोन द बोउवार ने स्त्री की देह को लेकर समाज की मानसिकता किस प्रकार की रही है इस बात की ओर ध्यान आकर्षित किया है। समाज के विकास में स्त्रियों की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है। इस के बावजूद उस के हिस्से में उपेक्षा और अवमानना ही आयी है। जबरन देह शोषण और व्यापार दोनों कानूनन जुर्म होने के बावजूद भारतीय समाज में देह शोषण करने वालों की मानसिकता क्या रही है और देह बेचने वाली स्त्रियों की मजबूरी क्या रही है ? देह शोषण करने वाले और देह बेचने के लिए मजबूर अधिकांश स्त्रियाँ किस जाति से संबंधित दिखते हैं ?

स्त्री की देह उस की कमजोरी, मजबूरी और मजबूती भी रही है। हमेशा पुरूष स्त्री की देह को एक वस्तु की दृष्टि से देखता रहा है। वह चाहता है कि इस वस्तु का जैसा चाहे वैसा अपने हित में उपयोग किया जा सकता है। लेकिन पुरूष और दुश्मन से स्त्री अपने बचाव करने के लिए अपनी देह का हथियार की तरह उपयोग करती है। स्त्री अपने देह के शोषण के बाद किन यातनाओं से गुजरती है ? यहाँ कि सत्ता, संपत्ति, समाज, संस्कृति और धर्म ने स्त्री की देह के शोषण को समर्थन दिया है। भारतीय समाज में स्त्री की पहचान देह से क्यों जुड़ी हुई है ? स्त्री के देह की विशेषता क्या रही है ?

स्त्री को जन्मतः पराधीन बनाने की कवायद घर–परिवार से शुरू की जाती है। किसी भी स्त्री को अपना स्वतंत्र अस्तित्व बनाने और दिखाने का सब से बड़ा खतरा क्या है ? घर–परिवार और समाज इन दोनों की दृष्टि में स्त्री का अस्तित्व दूसरों पर निर्भर दिखाई देता है क्योंकि स्त्री को जन्मतः इस बात की सख्त हिदायत दी जाती है कि वह कमजोर है। उसकी कमजोरी की वजह उसकी देह बतायी जाती है। बाल्यकाल से ही स्त्री अपनी देह का भय मन में लेकर मृत्यु तक इस बात से छुटकारा पाने में असमर्थ रहती है। दलित स्त्री के शोषण का प्रमुख कारण क्या हैं ? दलित स्त्री शोषण के लिए किसे जिम्मेदार ठहराया गया हैं ? स्त्री की देह के शोषण का कारण गरीबी और निचली जाति का होना है। ब्राह्मणवाद तथा सामंतवाद ने स्त्री शोषण की एक तरह कि संस्कृति ही विकसित और घोषित की है। हिंदी दलित कहानियों में स्त्री–नैतिकता और देह–उत्पीड़न, दलित तथा पिछड़ी जनजातियों की स्त्रियों के जीवन के सच को बेनकाब करने की कोशिशें इस प्रकार की है–

ओमप्रकाश वाल्मीकि की 'अम्मा' कहानी में दलित स्त्री अम्मा उर्फ शिबु अपने इज्जत पर हाथ डालने वाले मिसेज चोपड़ा के पुरुष मित्र विनोद को सबक सिखाती है। अम्मा मिसेज चौपड़ा के घर की टट्टी साफ करने जाती थी। एक दिन मिसेज चौपड़ा बाथरूम में नहा रही थी जिसके कारण वह विनोद को अम्मा की मदद करने को कहती है। विनोद ने टट्टी में पानी डालने के बजाय अम्मा को ही दबोच लिया। अम्मा पर हुए अचानक इस हमले से वह लड़खड़ाती और हड़बड़ाती है। लेकिन तुरंत ही अपने आप को संयत करके पूरी ताकत से झाड़ू का वार सीधा उसकी कनपटी पर दे मारती है। अम्मा बेडरूम में घुस के उसे लगातार पीटते हुए कहती हैं–"भैण जी इस हरामी के पिल्ले से कह देणा...हर एक औरत छिनाल ना होवे है।... जब यह बात अम्मा हरदेई को बताती है तो वह गुस्से में कहती है, 'तू तो मूरख है नासपिट्टी, अपनी माँ के यार कू टट्टी में घसीट लेती। पहले उतरवाती उसके कपड़े कि आ तुझे करवा दूँ, मसूरी की सैर। फेर करवात्ती उस से थिगनी का नाच। झाड़ू से पीट–पीटकर साले कुत्ते कू सड़क पे लियात्ती। जुलूस लिकड़ (निकल) जात्ता चोद्दे (गाली) का, जिब गणपति को हिलाता सड़क पे दौड़ता। भूल जाता सारा इशक...और वह चौपड़ी...ऐसी लुगाइयों का इलाज मैं जाणूँ हूँ...ये ले थाम लोट (नोट)...इब कल से चोपड़ी मेरी।...साली...दो–दो बच्चों की माँ होके इशक करे है... !"[3] अम्मा के माध्यम से यह बात साफ होती है कि सम्मान और अधिकार दोनों के लिए दलित औरत अपने जिंदगी को दाँव पर लगा देती है। रोटी से ज्यादा अपनी इज्जत को संभालती है।

ओमप्रकाश वाल्मीकि की 'जंगल की रानी' कहानी में

कमली मौत को गले लगाती है लेकिन जीते–जी अपने इज्जत पर आँच नहीं आने देती है। मैट्रिक के बाद कमली 'खापरी' गाँव के स्कूल में नौकरी करती थी। गाँव के हेडमास्टर जीवन वानखेड़े ने कमली को अपनी बेटी की तरह आगे बढ़ने और भविष्य को नया रूप देने के लिए प्रोत्साहित किया था। जब डिप्टी साहब स्कूल का मुआयना करने गए तब कमली उनके दिलोदिमाग पर छा गई थी। कमली को अपने हवस की शिकार में फंसाने के लिए शिक्षा विभाग की ओर से 'ग्रामीण महिला प्रशिक्षण शिविर' का आयोजन डिप्टी साहब ने ही किया था। कमली को रात में बांधकर, मुँह में कपड़ा ठूंसकर डिप्टी साहब और एस. पी. के पास लाया गया तब उन्हे देखकर उस के भीतर का ज्वालामुखी जैसे फूट पड़ा था–"कमली के भीतर जंगल जाग उठा था वह जंगली जानवरों की मांद में फंस गई थी। उन से बचने के लिए संघर्ष करने लगी। शरीर के कपड़े चीथड़ों में बदल गए थे। चाथड़े घावों और खरौंचों को ढक पाने में असफल होने लगे थे। संघर्ष चरम सीमा पर था। डिप्टी साहब हाँफने लगे थे। कमली ने विधायकजी को पटखनी देकर फर्श पर गिरा लिया था। छाती पर चढ़कर पंजों से विधायक जी की गर्दन दबोच ली थी। विधायक जी की आँखें साक्षात् मृत्यु दर्शन कर रही थीं। वे घिघियाने लगे थे। गर्दन पर कमली की ऊँगलियाँ कसती जा रही थीं।"[4] अपनी इज्जत को सही–सलामत बचाने के युद्ध में जंगल की रानी कमली अपराजेय थी। भविष्य की उम्मीदों को साथ लेकर गाँव से शहर की ओर निकली कमली अपने बूढ़े बाप की आशा–आकांक्षाओं का सपना ही रह जाती है। लेकिन जिंदगी की अंतिम सांसों तक डिप्टी साहब, विधायक जी और एस. पी. इन तीनों आदमखोरों के साथ जूझते हुए जीते–जी लाश में बदल जाती है।

मोहनदास नैमिशराय की 'भीड़ में वह' कहानी में वेश्याओं के प्रति समाज के देखने और सोचने के तौर–तरीकों को समझाने की कोशिश की है। लालबाई नामक वेश्या की जिंदगी का बेबाक सच हमारे सभ्य कहे जाने वाले समाज की असलियत दिखाता है। दलित बस्ती से नगरपालिका के स्कूल में सभी जात–बिरादरी के बच्चे पढ़ते थे। उसी में वेश्याओं की बिरादरी से लालबाई का लड़का नक्कू पढ़ने जाता था। पेट की भूख मिटाने की मजबूरी ने लालबाई को ग्राहकों के सामने जिंदा मांस के टुकडे बनकर बिछने और जिस्म बेचने की दुनिया में बसा दिया था। उसके ये हरे जख्म सभ्य समाज द्वारा दिए हुए थे। इसलिए लालबाई को इस बाजार से बहुत गिले–शिकवे थे–"बाबू ने एक दिन तुतलाते हुए माँ से पूछ लिया था, माँ तेले लिए गिलाक (ग्राहक) ले आउँ..."[5] अपने बच्चे के इस बात पर लालबाई ने उसे खूब पीटा था। लेकिन क्या इस गलती के लिए बच्चा स्वयं जिम्मेदार था ? बच्चा जिम्मेदार नहीं था बल्कि उस के आस–पास का परिवेश जिम्मेदार था। क्योंकि–"बस्ती की जितनी लड़कियाँ यहाँ पैदा होकर बड़ी हुई, वे भी वेश्या बन गई थीं। कुछ ने अपनी माँ के साथ धंधा शुरू कर दिया था, शेष किसी अन्य स्थान पर चली गई थीं। लड़के आवारा हो गए थे। वे या तो स्मैक, चरस बेचने में लग गए या फिर वेश्याओं की दलाली करने लगे थे। इस बस्ती का कोई भी बच्चा जवान होकर जज, कलैक्टर और मुन्सिफ मजिस्ट्रेट न हुआ था। बस सभी वासना के इस भयानक जंगल में खो गए थे। लड़के दस वर्ष की उम्र के आते–आते राह चलते पुरुषों को फंसाना सीख जाते थे और लड़कियाँ बारहवें में लगते ही छज्जों पर बैठकर ग्राहकों को पटाने का गुर जान लेती थी।"[6] लालबाई अपने बच्चे को दलाल नहीं बल्कि पढ़ा–लिखाकर एक अच्छा इंसान बनाने के हक में थी। लेकिन पढ़ाई–लिखाई का रास्ता इतना आसान नहीं था। इस रास्ते में तमाम मनुवादी खड़े हैं। स्कूल के परिवेश में दूसरे द्वारा हरामी और अपनी माँ को रंडी कहने की यातना के दंश को इस छोटे से बच्चे को सहना पड़ता है। ऐसे परिवेश में अपनी शिक्षा को जारी रखकर माँ की आशा–आकांक्षाओं को पूरा करने की कोशिश करता है।

मोहनदास नैमिशराय की 'अपना गाँव' कहानी में दलित लड़की कबूतरी को नंगा घुमाया जाता है। जब भी दलित को नीचा दिखाना हो तब उनकी औरतों को निशाना बनाया जाता रहा है–"वह जुलूस सारे गाँव में निकला था। आजादी की प्रभात फेरी जैसा न था वह बल्कि सामंतों/जमींदारों की नंगई का जीता–जागता उदाहरण था। वह रो रही थी और वे हंस रहे थे, थूक रहे थे। अपनी संस्कृति की बेहयाई पर नहीं, एक अबला पर। उन के घरों में लक्ष्मी थी, सीता थी, पार्वती थी, सरस्वती थी और भी अनगिनत देवियाँ थी। अपने–अपने घरों में मिट्टी की मूर्तियों में जिनकी वे पूजा करते थे, पर रोती–बिलखती जिंदा छमिया का उपहास कर रहे थे। उनकी औरते खिड़की और दरवाजों के पास खड़ी हो स्वयं एक औरत की अस्मिता को चिंदी–चिंदी होते देख रही थी। उन के भीतर न अफसोस था और न कोई झिझक क्योंकि उन्होंने

भी अपने–आप को मर्दो की सवर्ण जात में शामिल कर लिया था।"[7] दलित स्त्री के इज्जत का चित्रण इस प्रकार किया है–"शाम होते–होते कबूतरी घर लौट आई। वैसे ही नंगे बदन। घर के दरवाजे खुले थे। ओसरे के नीचे ठंडे चूल्हे के पास उसके सास–ससुर उदासी की चादर में लिपटे बैठे थे। कच्चे आँगन में ननद ने पाँव के अंगूठे से ढेर सारी मिट्टी खोद डाली थी। देवर भीतर चारपाई पर औंधे मुँह लेटा था। और ददिया ससुर अपनी कोठरी में अभी भी आल–बवाल बड़बड़ा रहा था। खौफ खाई आँखों ने कबूतरी को भीतर आते तो देखा पर किसी की उस से निगाहें मिलाने की हिम्मत न हुई। सब की आँखे शर्म में डूबी थीं। सब के देखते–देखते गाँव में कबूतरी को नंगा कर घुमाया गया और वे कुछ न कर पाए। कहाँ गई रिश्तों की गरिमा और एक–दूसरे के प्रति सुरक्षा भाव ? सभी तमाशबीन हो गए थे। तमाशबीन होना उनकी विवशता बन गई थी।"[8] ठाकुर के हवेली से आए हुक्म को हिम्मत जुटाकर न मानने की सजा कबूतरी को गाँव में नंगा घुमाकर दी गई थी।

विपिन बिहारी की 'पहचान' कहानी में जवाहर बाबू और दशरथ दोनों बाप–बेटे कम उम्र की लाजो का यौन शोषण करते हैं। दलित स्त्री लाजो अवैध बच्चे को जन्म देकर उस के सवर्ण पिता को बच्चे के बाप का नाम देने के लिए संघर्ष करती है–"माना कि वे दलित मजूर हैं। कमाते–खाते हैं, लेकिन उनकी भी एक परंपरा है, एक संस्कृति है। उन की संस्कृति और परंपरा ये नहीं है कि कोई कुँआरी लड़की महतारी बने।"[9] जवाहर बाबू जब लाजो को छिनाल कहता है तब लाजो गुस्से में जवाब देती है–"मैं किसी के साथ नहीं हुई, बाप से पूछना कौन किसके साथ हुआ और तू भी पूछना अपनी आत्मा से। मैं गरीब–गुरबा, छोटी जात की रही। महतारी के साथ आती थी। तेरा बाप मुझे गोदी उठा लेता था और मेरी जांघ सुहराता था। फिर क्या न किया, तू भी क्या न किया। छिनार मैं कि तू कि तेरा बाप... ?"[10] दलित स्त्री के यौन शोषण का कारण क्या है ? लाजो का बाप लोकनाथ कहता है–"हरिजन–चमार की बेटी नहीं हो। जब बेटी हो तो उसका बाप किसी बाबू साहेब के घर मजूर न हो और मजूर भी हो और बेटी भी हो तो बेटी देखनगर न हो, सुंदर न हो, नहीं तो ये बबुआन सत्तर का बूढ़ा भी उसे भोगना चाहता है और बीस बरस का लौंडा–छौंड़ा भी।"[11] दलित जाति में स्त्री जन्मता शोषण की शिकार दिखाई देती है। लेकिन लाजो के द्वारा यह बात साफ हो जाती है कि दलित स्त्री जीवन भर इस शोषण को सहने के लिए बिल्कुल तैयार नहीं है। वह अपने शोषण के खिलाफ आवाज उठाती दिखती है।

विपिन बिहारी की 'पत्थर की लकीर' कहानी में दलित लड़की की इज्जत पर गैर दलित लड़के द्वारा हाथ डालने की कोशिश को चित्रित किया है। गाँव में स्कूल जाने वालों में से दुसाध–चमारों की पहली लड़की तेतर और सहोदर की बेटी सुनयना थी। स्कूल के रास्ते में गैर–दलित लड़के उसके पीछे से फब्तियाँ कसते थे। एक दिन लाखो बाबू का भतीजा अखौरी ने उसका दुपट्टा खींच लिया। जवाब में सुनयना ने कहा–"माय–बहिन नहीं है रे कुतमुँहा, चल आज तू...क्या समझता है तू, असल की न रहूँ जो... ।"[12] यह खबर जब सुनयना की माँ सहोदर तक पहुँचती है तब वह लाखो बाबू के टोले की तरफ गालियाँ देते हुए दौड़ती है–"क्या रे अखौरी, बेटचोदनावाला, मेरी बेटी क्या लगती है तुझको जो उसकी ओढ़नी खींच दी। मन फनफना रहा है तो माय–बहिन घर में है उसके साथ सुतो न रे। हम लोग तुम सब के आगे छोटे हैं, लेकिन अपने आगे तुझ से कम नहीं है। तुझ को भी हम छोट समझते है। ओ, कोई हमको खिला–पिला रहा है जो ओढ़नी खींचेगा। कमाता है कोई तब उसे बन मजूरी देते हो, ऐसे दे के देख तब जानूँ, मैं। ऐरू–गैरू मत समझो मेरी बेटी को, न तो मुँह नोंच लूँगी, देखूँगी कि तू कितना बड़का है।"[13] दूसरी बार, दिन–दहाड़े योजनाबद्ध तरीके से स्कूल के सुनसान रास्ते से सुनयना को खेत में जबरन घसीटते ले जाने की कोशिश सुनयना के दुस्साहस से नाकाम होती है। सुनयना किसी तरह बच के भागती है। यह खबर आग की तरह दलित बस्ती में फैलती है। तब सहोदर दलित बस्ती के लोगों को संगठित करके गैर–दलित बस्ती पर जा पहुँचती है। दलित स्त्री अपनी इज्जत को किसी भी कीमत पर खोने के लिए बिल्कुल तैयार नहीं है। लेकिन उसके साथ अनजाने में ऐसी दुर्घटना हो भी गई तो वह बड़े साहस के साथ मुँहतोड़ जवाब देती हुई दिखाई देती है।

राम निहोर विमल की 'आखिरी मौत' कहानी में दलित स्त्री फुलवा के उपर गणेश सिंह द्वारा हुए बलात्कार का बदला लेने के दुस्साहस को चित्रित किया है, जिस से कोई दूसरा गणेश सिंह साहस फिर न कर सकें–"औरतें तो फुलवा के बहादुर पूर्ण प्रतिशोध से उसकी प्रशंसा ही करने लगीं। नव युवतियाँ उसकी बहादुरी पर एकदम मोहित हो गयीं, उसे अपना आदर्श मानने लगीं और मन ही मन किसी भी अत्याचार, अन्याय के खिलाफ, जीवन पर्यंत जब तक जाँ में जाँ हैं, लड़ने की कसमें खाने लगीं और

फुलवा जैसा ही कुछ कर गुजरने के अवसर की प्रतीक्षा करने लगीं।...हजारों सालों से इनके हाथों पैरों में डाली गयी गुलामी की हथकड़ी बेड़ियाँ, उत्साह एवं बहादुरी की गर्मी से पिघल-पिघल कर टूटने-गिरने लगीं। इच्छित गति से दौड़ने के लिए पैर और बहादुरी के कारनामें दिखाने के लिए हाथ अब आजाद होने लगे। आँखों पर बंधी हजारों साल की पट्टी टूटकर गिर गयी गरीबी अभाव एवं तरह-तरह के दुःखों को देखने वाली पनीली आँखे, सुंदर सुनहरे सपने देखने लगीं और और हजारों सालों से गुलाम इनकी स्वामिनियाँ पंख लगाकर आजादी की दुनिया में इच्छित उड़ाने भरने लगी।"[14] पुलिस फुलवा को पकड़ के थाने में ले जाती है। लेकिन फुलवा का भाई मनोहर दलित बस्ती के लोगों से कहता है-"मौत गणेश सिंह की नहीं हुई। गणेश सिंह जैसे बलात्कारियों की मौत तो ऐसे ही कुत्तों की तरह होती रहती है। असली मौत फुलवा की हुई है, हमारी आप की हुई है। अतः आज हम को यह शपथ लेनी होगी कि भविष्य में फिर किसी फुलवा की मौत न हो। हमारी आप की इस तरह मौत न हो।"[15] दलित स्त्री में जागृत हुई चेतना का स्रोत शिक्षा रही है।

श्यौराज सिंह 'बेचैन' की 'शोध-प्रबंध' कहानी में दलित शोध-छात्रा रीना का शोध-निर्देशक प्रोफेसर प्रतापसिंह द्वारा किये गये देह उत्पीड़न को चित्रित किया है। प्रोफेसर प्रतापसिंह अपनी शोध-छात्रा को अनेक लोभ-लाभ के जाल में फंसाते हुए उस के साथ विवाहेत्तेर प्रेम-संबंध बनाकर मौज मस्तियाँ उड़ाता है। लेकिन जब शादी की बात आगे आते ही मुखर जाता है। इस से रीना के विश्वास को ठेस पहुँचती है। वह घायल शेरनी की तरह तड़पती है। बर्बाद वर्तमान का बोझ, गरीबी और जाति के अतीत में सहे दंश और अनिश्चित भविष्य की आशंकाओं से परेशान रीना कहती है-"भाड़ में जाए अब पीएच डी. और कैरियर जब जिंदगी ही दांव पर लगी है तो क्या करूँगी मैं किसी के कागजी प्रमाण-पत्र का। मेरा तो धर्म-ईमान सब चला गया। मैं नैतिक रूप से अपनी ही नजरों में गिर गई। अपराध-बोध की गिरफ्त से निकल नहीं पाऊँगी अब मैं। प्रो. का पाप मेरी मौत का सामान बन रहा है। ऐसे में शादी कर लेना, किसी व्यक्ति के साथ विश्वासघात करना होगा। क्या छिपा कर रख पाऊँगी इस आग को उम्र भर। बगैर छिपाए इस समाज में कौन अपनाएगा मुझे ? इतना साहस कहाँ है युवाओं में और मैं क्यों अपने स्वार्थ के लिए किसी के आदर्श का शोषण करूँगी ? मुझे क्या हक है किसी की प्रगतिशीलता को ललकारने का ?"[16] रीना अबॉर्शन या आत्महत्या के बारे में नहीं सोचती है बल्कि प्रोफेसर प्रतापसिंह को सबक सिखाती है। रीना प्रोफेसर को शोध-प्रबंध की जगह उसकी गोद में बच्चा और गाल पर जोरदार तमाचा जड़ देती है। प्रगतिशील कहे जाने वाले ब्राह्मणों के नजरों में दलित स्त्री की छवि कैसी है इसे इस कहानी के माध्यम से अभिव्यक्ति किया है। दलित स्त्री के शोषण का प्रमुख कारण उसकी देह रही है। इसीलिए समाज में स्त्री के आत्मविश्वास और स्वभिमान को तोड़ने के लिए उसकी देह को धर्म के हथियार से अपवित्र घोषित किया है। लेकिन स्त्री ने द्विजों और पुरुषवादी शोषण की संस्कृति को चुनौती दी है।

संक्षेप में, दलित और स्त्री इन दोनों का जीवन घर-परिवार और समाज के भीतर-बाहर हर जगह से घात तथा विश्वासघात से घिरा हुआ है। दलित अपने और पराये लोगों से बहिष्कार, तिरस्कार और दुत्कार को सहने के लिए अभिशप्त दिखाई देता है। दलितों में उभरता जाति स्तरीकरण का अंतर्विरोध दलित समाज के लिए खतरा साबित हो रहा है। दलितों में भी उँच-नीच और जाति की झूठी शान दिखाने की सोच फैलती जा रही है। ब्राह्मणवाद की यह बुराई दलितों के भीतर तक फैलने के कौन से कारण रहे हैं ? पवित्र और उत्कृष्ट कही जाने वाली वर्ण-व्यवस्था और जातिप्रथा के प्रचलन में स्त्री के प्रति सोच किस प्रकार की है ? स्त्री के प्रति वर्ण-व्यवस्था और जातिगत भेदभाव के परिवेश में यह सोच किस आधार पर स्थापित और विकसित की हुई है ? वर्ण-व्यवस्था और जातिप्रथा के प्रचलन में स्त्री का दर्जा और उसकी योग्यता का आधार क्या है ? और समाज में स्त्री-पुरुष के बीच जो संबंध और संवाद हैं उसे वर्ण-व्यवस्था और जातिप्रथा में किस दृष्टि से देखा गया है ? इन सवालों को हिंदी दलित कहानीकारों ने शब्द बद्ध किया है। अध्ययन के आधार पर यह सत्य सामने आया है कि हिंदुत्व की संस्कृति स्त्री के प्रति अमानवीय और असंवेदनशील रही है। भारतीय समाज में स्त्री के उत्पीड़न और उपेक्षा को यहाँ के द्विजों की सत्ता, संपत्ति, संस्कृति और हिंदू धर्म ने निरंतर समर्थन दिया है। इन तमाम सवालों के जरिये हिंदू धर्म को कठघरे में सिर्फ खड़ा ही नहीं किया है बल्कि उसे सिरे से खारिज भी किया है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. *यादव राजेन्द्र–आदमी की निगाह में औरत, राजकमल प्रकाशन प्रा. लि. 1–बी, नेताजी सुभाष मार्ग, नयी दिल्ली–110 002, प्रथम संस्करण–2001, पृ. 255–56*
2. *बाउवर द सिमोन–स्त्री उपेक्षिता (हिंदी अनुवाद : प्रभा खेतान), हिंदी पॉकेट बुक्स, जे–40, जोरबाग लेन, नयी दिल्ली, संस्करण–2002, पृ. 61*
3. *वाल्मीकि ओमप्रकाश–सलाम, राधाकृष्ण प्रकाशन प्रा. लि., जी–17, जगतपुरी, नयी दिल्ली–110 051, प्रथम संस्करण–2000, पृ. 116–17*
4. *वाल्मीकि ओमप्रकाश–घुसपैठिये, राधाकृष्ण प्रकाशन, प्रा. लि., जी–17, जगतपुरी, नयी दिल्ली–110 051, प्रथम संस्करण–2003, पृ. 98*
5. *नैमिशराय मोहनदास–आवाजें, समता प्रकाशन, 30/64, गली नं. 8, विश्वास नगर, शाहदरा, दिल्ली–110 032, प्रथम संस्करण–1998, पृ. 131*
6. *वही, पृ. 131*
7. *वही, पृ. 32*
8. *वही, पृ. 32–33*
9. *विहारी विपिन–आधे पर अंत, कुमार पब्लिकेशन हाउस, 52/11, ज्वाला नगर, शाहदरा दिल्ली–110 032, प्रथम संस्करण–2006, पृ. 29*
10. *वही, पृ. 37*
11. *वही, 38*
12. *वही, पृ. 49*
13. *वही, पृ. 49*
14. *विमल राम निहोर–मंकी भाई, शैवाल प्रकाशन, डी. आई. जी. आवास के सामने ढलान से नीचे चन्द्रावती कुटीर, दाउदपुर, गोरखापुर–273 001, प्रथम संस्करण–2008, पृ. 20*
15. *वही, पृ. 24*
16. *'बेचैन' सिंह श्यौराज–भरोसे की बहन, वाणी प्रकाशन, 4695, 21–ए, दरियागंज, नयी दिल्ली–110 002, प्रथम संस्करण–2010, पृ. 112*

राजस्थानी बातां मांय चित्रित लोकोत्सव : अेक दीठ

मांगीलाल
शोधार्थी, जय नारायण व्यास विश्वविद्यालय, जोधपुर

www.shodhshree.com

शोध सारांश

प्रस्तुत शोध पत्र में राजस्थानी बात सहित्य परम्परा रौ उल्लेख करतां थकां इणमें वरणित भांत-भांत लोकोत्सवां रौ चित्रण कर्‌यो गयो है। राजस्थानी संस्कृति भांत-भतीली रैयी है। तीज-तिंवार ही इणरी ओलख है। मानखै रै लोक जीवण रा सांचा चितराम आं में जोया जा सकै है। राजस्थान री पिंछाण हीज अै तीज-तिंवार है। इणांमें तीज, गणगौर, होली, दसैहरो, दिवाली आद लोकोत्सव प्रमुख रैया है।

***संकेताक्षर** : लोक जीवण, संस्कृति, विरासत, तिंवार, सावण, उत्सव, बगत, तीज, गणगौर, होली, दिवाली, असवार, अमावस, मिनख।*

राजस्थानी बातां घणी निराली अर सुहावणी रैयी है। इणांमें राजस्थानी लोक जीवण रौ भांत-भांत पख चित्रित हुयौ है। अै बातां 17 अर 18 वी सदी मांय अणूती लिखी गयी है। इणांमें रजपूती संस्कृति रा अलेखूं बरणाव जोया जा सकै है। राजस्थान अेक रंग-रंगीलौ प्रांत, संस्कृति री लूंठी विरासत वाळौ प्रदेस, अठै रा तीज-तिंवार तौ मिनख री जियाजूंण मांय यूं बस्योड़ां जांणै वै उणरां मूलभूत अंग होवै। अठांरा मिनख सारू जिती जरूरी रोटी अर बाकी सब चीजां है उणसूं भी जरूरी अठांरी संस्कृति अर तीज-तिंवार है। राजस्थान रौ मिनख भूखौ रैय सकै पण बिना तिंवार नीं रैय सकै। इण सारू अठांरौ मानखै री दैनिक क्रिया मांय तीज-तिंवार रा दरसण ठौड़-ठौड़ देखण नै मिळै। इतौ हीज नीं राजस्थान मांय तौ अैड़ो कोई दिन कोनी जिण दिन कोई न कोई तिंवार नीं होवै। अठै तौ हर दिन कोई नै कोई तिंवार जरूर ही आवै।

पण अठै हर दिन तिंवार हुया उपरान्त भी कैई तिंवार अैड़ा है जकां अनादिकाल सूं मनाया जावै। ज्यूं-होली, दिवाली, तीज, आखातीज, गिणगौर, ऊबछट, राखी, सीलसातम.....जैड़ा कैई तीज-तिंवार। पछै अपांरै राजस्थान मांय इणसूं भी बधनै और भी तिंवार मनाया जावै जिणरौ उल्लेख तौ नीं मिलै पण वै हर पल मान्या जावै। उणमें पैलो तिंवार है पति-पत्नी (प्रेम-प्रेमिका) रै मिलण रौ तिंवार अर दूजौ अगर कोई मिनख सांची बात सारू माथौ कटाय दियौ तौ 'मरण तिंवार' आपांरै अठै मरण नै मंगल मान्यौ गयौ है। इण सारू अठै मरणौ भी उत्सव रै मांय आवै अर प्रेम तौ सदियां सूं उत्सव रौ हीज विसय रैयो है।

पुराणा बगत मांय जद साधनां रौ अभाव हो। मिनख पाला चालता या साधन होवता तौ हीज घोड़ा, ऊँट, कद आद अैड़ा बगत मांय आयौ गयौ कै प्रेमी या प्रेमिका नै कद दिल लेवणौ चाहिजै। देखौ-

पंच कोसा प्यादो रहै, दस कोसां असवार।
के तो नार कुमारज्या, के रांडुल्यौ भरतार।।

अगर पालौ है तो पांच कोस जातौ रैवणौ चाहिजै अर कनै घोड़ा, ऊँट, कद-गाड़ी है तौ दस कोस भी जातौ रैवणौ चाहिजै अगर वै नीं जावै तौ या तौ लुगाई गयी बीती है या पछै धणी खुद।

राजस्थान रा प्रमुख तीज-तिंवारां मांय होळी, दिवाळी, गणगौर, तीज, राखड़ी, नागपंचमी, सकरात, नवरात्रि, दसैहरो आद

खास रैया है। राजस्थानी बातां में उल्लेखजोग तीज–तिंवारा री बणगट इण भांत है–

तीज

इणसूं बड़ी उत्सव अर तिंवार री बात कांई होवैला पण आपारै अठै लुगााायां सारू 'तीज' रौ तिंवार नै अणूंतौ हीज मोटौ तिंवार मान्यौ गयौ है अर तीज वाळै दिन अगर किणी लुगााई रौ धणी आवतौ होवै तौ उण सारू फगत लुगााई ही नीं आखा गांव वळा किण भांत राजी होवै देखौ–

''तीज रे दिन री वाट। ज्यूं–ज्यूं तीज नजदीक आवै राजाजी कंवरजी री मेहमानदारी ने खातिर री तैयारी करै। तीज रौ दिन आयो, गांव में उमंग लाग री कै जवांई सा पधारेला। हींडा घल रिया, जगां जगां पांवणा रे कपड़ा रंगवा सारू रंग री कूंडियां भर दीधी। सवारी री तैयारी व्है री। कंवराणी जी वाट देख रिया। चौक में सिनांन करण ने बाईजी बैठिया। पांच दस डावड़ियां ऊभी। कोई पीठ कर री। कोई माथो धौय री। कोई पगां रै झांवरो लगाय री। गीत गाय री। बडा उछब उमंग रै साथै सिनांन कर दिया... ...।''[1]

तीज परब रै अवसर पर लुगाईयां दिन भर व्रत–उपवास राखै अर सिंझयां री बखत पूजा–पाठ करनै चांद रा दरसण'र सातु रौ सेवन करै है। राजस्थान मांय बूंदी अर जयपुर मांय औ तिंवार विसेस उमंग रै साथै मनायो जावै है। ज्यां–

प्रोहित बूंदी परणियो, रसीयो बगसीराम।
सांयण तीजा सासरे कीनो जावण काम।।[2]

तीज परब री सबसूं मोटी विसेसता आं है कै सुरम्य प्रकृति री आड मांय क्रीड़ावां करती व्हीं रमणियां रौ उल्लास अर आमोद स्वच्छंद नीं होवै, पण धारमिक भावनावां अर मानतावां सूं बाधित होवै है। औ तिंवार धणी–लुगााई रै प्रगाढ़ प्रेम रौ प्रतीक है। इण पुनीत अवसर माथै राजस्थानी नारी रौ सील, सिणगार अर प्रेम सूं समन्वित रूप आपारै मानस पटल माथै अंकित व्है जावै है। औ अवसर राजस्थानी नारी री इण भावना कै भरतार (धणी) अर करतार (भगवान) जीवन्त प्रमाण है, जिणरी अभिव्यक्ति आं बातां में होवै है। 'पनां री वीरमदे री वारता' रौ अेक दांखलौ देखौ–

''इण भांति तीज मंडवा रो बखत आयो। आणंद को समद जाणै रांका निसिर सायौ। सहर मांहि सूं तीजण्यां निसरै छै। केसरियां कसूमल पौसाकां करियां। घणां गहणां मैं लूंमा झूंमा हुई थकी मोहोला मोहोला मां सुं नीसरी छै। राग–रंग करै छै। हिंडोला लहरियां गावै छै।''[3]

इणी तरै री बात रौ अेक उदाहरण और प्रस्तुत कर्‌यो जावै है जिणमें नायिका नायक नै तीज रै दिन निवेदन करनै बुलावौ भेजै है–

''इण भांत बातां पर बूबना आपरे महल आई। इतरै सावण रो महिनो आईयौ। तरै तीज रै दिन नैत्रा खवास नूं कही आन जलाल साहब नूं कहि आवजै तंयार रहज्यो म्हे लेवणे नूं आवा छां महल रै तले बाग छै उठे विराजे।''[4]

दसैहरो

आसोज मईना मांय दशहरा रौ तिंवार मनायो जावतो हो। राजपूती परम्परागत प्रदेस होण रै कारण राजस्थान मांय दसहरै रौ घणौ महत्व रैयो है। राजपूत वरग रौ अेक खास तिंवार है। मध्यकाल मांय जोधपुर अर कोटा मांय इण तिंवार री विसेस महत्ता ही अर सामंत वरग अर जन साधारण दोनूं हीज घणै आंणद सूं इण तिंवार रौ आयोजन करता हा। राजस्थानी बातां मांय भी इणरा उदाहरण मिलै है। 'राव मालदे री बात' रौ अेक दांखलौ इण गत है–

''जासोजी दशराहो पूजि अर मुहिम कीधी। तरहा बड़ी फौज धर मालदेजी आया गांम गांगहि जाय डेरा किया। फौज घारू ही कानी दोड़ी छै मेड़तें री रेत ससीजै छै। देशहरो छै।''[5]

'प्रतापसिंह म्होकमसिंह री बात' रौ अेक दाखलौ देखौ जिणमें होळी रै बरणाव में कवि री उन्मुक्त कल्पना किण भांत है–

''तिका नूं होळी रा दिनां मैं होळी रा ख्याल गावै छै। तिका नै पण प्याला पावै छै। अर गोलियां री लागां थका रजपूत नट कुलट पेलै छै। तिकानूं तमासा दिखावै छै। केई–केई तायफ लोग न डरै छै।.....केई केई मोटियार घणां दारू रा माता। रंग मैं राता। पराछूट हुवा।''[6]

होली–

राजस्थानी जन जीवण नै आंणदित उमंग मांय मगन करण वाला तिंवारां मांय होली रौ भी विसेस महत्व है। इण तिंवार मांय सगला जाति–वरग, लुगाईयां–मोटियार घणै आंणद सूं फाग उच्छब में भाग लैवैता हा। मध्यजुग मांय इण अवसर माथै डंडिया गैर नाच रौ आयोजन भी होवतौ हो। राजस्थानी बातां मांय भी इण परब रा उल्लेख मिलै है। ज्यां–

''इतरै होली आई नै, होली गेहर बाजण लागी। सुहाणै गढ़ गेहर बाजे, तिको ढ़ोल निपट सरसो बाजे छै। तरै वीरमदेवजी कह्यो–'जोया ठाकुरां रो ढ़ोल बोहत सखरो

बाजे छै। तेरे चाकरा कह्यो– 'महाराज जोया रे ढ़ोल आबारो छै आपणो ढ़ोल लोह रो छै तिफा मधुरो बाजै छै।''[7]

अठै परम्परागत अैड़ी प्रथा रैयी है कै होली आद तिंवार रै अवसर माथै सगलां वरगां रै स्त्री–पुरूस छोखां गाभा पैहरे अर अेक नूंवी बात जकी कै अठै रै जन जीवण मांय व्याप्त रैयी है कै बै अमल नै गाल'र लेणौ अठै री सांस्कृतिक परम्परा रौ प्रतीक मान्यौ जावै है। ज्यां 'बात मांडणसी कूंपावत री' रौ अेक दांखलौ देखौ–

''होली रो दिन छै। मांड घोड़ै चलाण नै आप कर बागो, बांथ हथीयार नै चढ़ीयो, धरां नुं कर दूदासाही केसरियो थोड़े रा कांठा गले सेर री अमल री चाक पोते मांहे छै।''[8]

गणगौर

गिणगौर रा तिंवार रा भी कैई दरसाव देखण में आवै अर बीकानेर री गिणगौर तौ उण काल मांय अणूंती चावी रैयी है जिण नै देखण सारू तौ मोटा–मोटा राजकुमार भी इच्छा राखता। इणी तरै री गिणगौर रै दरसाव 'सजनां सुजान री बात' मांय भी देखण नै मिलै देखौ–

''अेक दिन वनाधिकारी नै अेक विशालकाय नव हाथे सिंहराज रै वन में आवण री सूचना दीवी। कुमार आपरै साथियां रै साथै सिंहराज रौ शिकार करण गयो। दो दिन रै पड़ाव में शिकार व्है गयो। कुमार नै मदनगढ़ लौट'र शिकार रौ बड़ो जसौ कर्‌यो। शिकारियां नै हाथी, घोड़ा अर जागीरां दीवी गयी। कवि अर गायकां नै वांछित मोहताजां मिली। उण मजालिस में किणी कवि नै बीकानेर रै गणगौर रौ उच्छब री चरचा करी। कुमार रा साथियां नै बीकानेर री गणगौर री सवारी देखण री इच्छा व्यक्त करी। कुमार नै गणगौर माथै चालण री स्वीकृति प्रदान करी।''[9]

गणगौर रौ तिंवार चैत्र मईना में लगैटगै 16 दिनां तांई मनायो जावै है। तीजणियां इण दिन गोरी री पूजा करै है। गणगौर रै जुलूस बरणाव रौ अेक दाखलौ भलै देखौ–

''तठै बीज रो दिन संझ्या रो पूजण, नैं पाणी पीवण नै गौर काढ़ी। तठै गींदोली चकडोल बैसि गोर पाछै पांणी चाली। तठै असवार हजार दस जाबता में पातसाह दीधा। नगारा, ढोल, सहनाई वाजै छै। लुगायां गीत गावै छै।''[10]

दिवाली

अठै दिवाली जैड़ो तिंवार तौ घणां लाड कोड सूं मनायौ जावै अर उणरी पूजा करी जावै। दीवाली रा तिंवार री महिमां रौ अेक दरसाव इण भांत है–

''तरै व्यासजी कहै छै–राजा सांभल। काती वदि इग्यारस नै श्रीमहालिखमीजी जागै नै काती वदि अमावस श्री लिखमीजी रौ दिन छै। लोक घर नीपै, धकै नै ऊजलाई करै छै। जांणै–काती वदि इग्यारस नै श्री लिखमीजी जागिया छै सो मांहरै घरै पधारसी। तिण सूं लोक घर सिणगारै छै। राजा ! काती वदि अमावस आवै तद परभात रा ऊठ नै दांतण सिनांन करीजे। रोकड़ रूपइयां री पूजा कीजे। केसर कुंकम सो पूजा करिनै अरमत चढ़ाइजे। पुसब चढ़ाइजे। अगर–धूंप खेवी नै नैवेद चाढ़ीजै। मुखवास मुदरा पिण चढ़ाइजे। दांन बीड़ा चढ़ाई नै मिठाई पतासां रौ परसाद बांटीजै। घणौ उछाह करि बांमणां नूं सकति माफक टिप्पणा दीजे। तठा उपरांत भांत–भांत रा जीमण बणाय नै अेकासणौ कीजै।''[11]

इण तरै अठै कैई तरै रा तीज तिंवारां रा दरसण राजस्थानी बात साहित्य मांय आपांनै देखण नै मिलै। जकां अै तिंवार अठांरी सांस्कृतिक विरासत नै पोखण रै साथै ही साथै अेकता, भाईचारौ, प्रेम, सौहार्द्र, मिनखपणौ आद बधावण रौ काम करै तौ साथै ही साथै न्यांरा–न्यांरा धरमां रा लोगां नै अेक डोर मांय बांधण रौ भी काम करै। राजस्थान आं तिंवारां री वजै सूं ही तौ रंग–रंगीलो अर सोवणौ प्रांत हैं, जैड़ो दुनियां मांय कोई कोनी। लोक जीवण मांय हरैक अवसर माथै अेक सजीव स्फूर्ति व्याप्त ही। इण खातर इण प्रदेस रौ जीवन्त लोकोत्सवां रौ प्रदेस मान्यो जावै है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. *अनोखा कंवरजी–कै रे चकवा बात : राणी लक्ष्मीकुमारी चूंडावत, पृ. 67*
2. *राजस्थानी साहित्य संग्रह : सम्पादक नरोत्तमदास स्वामी, भाग 3, पृ. 9*
3. *पन्ना वीरमदे री वारता : ह. लि., पृ. 12–16*
4. *जलाल बूबना री बात : राज. बात संग्रह : सम्पा. नारायणसिंह भाटी, पृ. 112*
5. *राजा मालदेव री बात*
6. *प्रतापसिंह म्होकमसिंह री बात : पृ. 49*
7. *वीरवांण : सम्पा. राणी लक्ष्मीकुमारी चूंडावत, परिशिष्ट 2, पृ. 72*
8. *मांडणसी कूंपावत री बात : बातां रो झूमको पहलो : सम्पा. मनोहर शर्मा, पृ. 55*
9. *सजनां सुजान री वारता : शोध पत्रिका, वर्ष 14, अंक 1, सितम्बर 1962*
10. *राजस्थानी बातां रो झूमको, पहलो, पृ. 90*
11. *सजनां सुजान री वारता : शोध पत्रिका, वर्ष 14, अंक 1, सितम्बर 1962, पृ. 46–47*

छायावादी कवियों मे महादेवी वर्मा के काव्य की तुलनात्मक स्थिति (प्रेम और प्रकृति के सम्बंध में)

www.shodhshree.com

अलका जैन
एसोसिएट प्रोफेसर, राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, किशनगढ़

शोध सारांश

प्रकृति अपनी पूर्व सजधज के साथ छायावाद कवियों के काव्य में आई इसके वर्णन में जो भावुकता और भव्यता, सुकुमारता और सजीवता, स्निग्धता और स्वाभाविकता, कलात्मकता और कल्पनाशीलता, संवेदनशीलता और सूक्ष्म निरीक्षण की क्षमता कवि पंत की कविताओं में हम पाते है वह अन्यत्र असंभव नही ंतो उसे दुर्लभ कहना असंभव नहीं है। प्रकृति के इस बहुमुखी विकास का आधार सहृदय और स्वच्छद कवियों के अन्तस में उमड़ती हुई प्रेम और सौंदर्य की सुगम किन्तु कोमल कल्पनाएं थी। कवियों का प्रकृति से निकट निजी संबंध भी प्रकृति चित्रण की प्रवृति का सहज आधार था। कवियों की अतिवैयक्तिकता ने आत्मभिव्यक्ति के लिए प्रकृति से संबंध स्थापित करवाया। प्रकृति वर्णन की कल्पना प्रचुरता, अतिसूक्षमता और भावात्मकता का कारण पाश्चात्य साहित्य और बंगला काव्य का प्रभाव है। प्रसाद, पंत, महादेवी और निरालादि की कविताओं में इस प्रभाव के दर्शन किये जा सकते है। लेकिन महादेवी की कविताओं में प्रेम और प्रकृति का जो संश्लिष्ट चित्र मिलते है, उनके मूल में वैदिक वाड्.मय अधिक ऋणी है।

संकेताक्षर *: झकोरों, मोदमयी, निश्वासों, उत्कंठा, शुचिता, औत्सुकता, मृगमरीचिका, विकलता, कसक, हूक, पार्थिव, शैथिल्य, हितेच्छा, उत्कर्षापकर्ष ।*

महादेवीजी के काव्य में प्रेम और प्रकृति के चित्रांकन के साथ साथ उसका समसामयिक कवियों के साथ मूल्यांकन करना भी आवश्यक है। कवयित्री के समकालीन कवियों में 'प्रसाद', 'पंत' और 'निराला' का नाम लिया जा सकता है। महादेवीजी के काव्य–क्षेत्र में संचरण करने से पूर्व ही यह वृहत्त्रयी, भगवती सरस्वती को अपनी कृतियों से उपकृत कर चुकी थी। अतः उनकी काव्य प्रवृत्तियों पर इन कवियों का प्रभाव पड़ा किन्तु इसका तात्पर्य यह कभी भी नहीं है कि महादेवीजी ने उनका अंधानुकरण किया हो। साहित्य–संसार में आकर कवयित्री ने अपनी प्रतिभा और मौलिकता के बल पर अपना मार्ग प्रशस्त भी किया और उच्च स्थान भी प्राप्त किया। प्रसाद और पंत अपने साहित्य–शैशव में जिस भौतिक प्रेम को लेकर चले, बाद में उन्होंने उसका उदात्तीकरण ही किया, जो हमें महादेवीजी की कविताओं में भी उपलब्ध होता है, किन्तु कवयित्री ने इनसे भी आगे एक कदम बढ़ाकर उस प्रेम का संबंध ब्रह्म से जोड़ दिया। यह संबंध भावना निःसदेह 'निराला' की 'तुम और मैं' कविता में उपलब्ध होती है किन्तु इसमें भी संबंध मात्र ही है, प्रेम की वह उत्कटता, विरह की व्यापकता और मिलन की उत्सुकता नहीं जो महादेवीजी के गीतों का प्राण है।

इसी प्रकार प्रकृति के विविध रूपों का वर्णन महादेवीजी के साथ साथ प्रसाद, पंत और निराला के काव्य में भी उपलब्ध होता है किन्तु अपने गीतों में पग पग पर जो स्थान महादेवीजी ने प्रकृति को दिया है वह न तो प्रसाद ही दे सके और न पंत तथा न निराला ही। हां! रही प्रकृति–वर्णन के उत्कर्षापकर्ष की बात, उसमें महादेवीजी इन कवियों की तुलना में कहीं आगे निकल जाती है तो कहीं पर पीछे भी रह गई है। इन्हीं तथ्यों की विवेचना प्रस्तुत समीक्षा का मूल है।

छायावादी कवियों (प्रसाद, पंत, निराला और महादेवी) के जीवन की परिस्थितियां कुछ क्षेत्रों में समान रही है। अपने काव्य

जीवन के प्रारम्भिक दिनों मे ये सभी स्वच्छन्द, स्वतंत्र और जीवन की कुंठाओं, कुत्साओं और अभावों से अप्रभावित थे। प्रायः सभी ने अपने यौवन में प्रेम किया था और उसमें प्राप्त असफलता ने सभी के जीवन को व्यग्र और विचलित बनाया था। यह तथ्य उनके काव्य से पुष्ट किया जा सकता है। प्रसाद का निखार 'लहर' में पूर्ण यौवन के साथ हुआ है। इसमें भी असफल प्रेम की स्मृतियां उन्हें कचोटती है।

'आह रे वह अधीर यौवन–
अधर में वह अधरों की प्यास, नयन में दर्शन का विश्वास,
धमनियों में आलिंगनमयी, वेदना लिये व्यथायें नई,
टूटते जिससे सब बंधन, सरस सीकर से जीवन कन,
विखर भर देते अखिल भुवन, वही पागल अधीर यौवन।।

(जयशंकर प्रसाद, लहर पृ. 19)

इस अधीर यौवन में उनका मन मृगमरीचिका के प्रेम में भटक चुका है। आशाएं धूल में मिल गई। हृदय पीड़ा से छटपटा उठा। उपेक्षा ही उसका सर्वस्व बन गया। गरल ही सुधामय हो गया किन्तु जब वेदना असह्य हो उठी तो सहज भावनाऐं व्यक्त होने के लिए मचलने लगीं।

आचार्य वाजपेयी 'आंसू' को कवि 'प्रसाद' के जीवन की वास्तविक प्रयोगशाला का आविष्कार मानते हैं। इसमें भी कवि की ज्वालामयी जलन के स्फुलिंग भरे हुए है। एक दिन उसका हृदय–प्रदीप स्नेह से आलोकित हो रहा था किन्तु कही बाद में नैराश्य के धूम से भर गया। संयोग में प्रेम की क्रीड़ा मादक और मोदमयी थी किन्तु विरह में वह हृदय में हाहाकार मचा देती है।

'मादक थी मोदमयी थी मन बहलाने की क्रीड़ा
अब हृदय हिला देती है वह मधुर प्रेम की पीड़ा।

(जयशंकर प्रसाद, 'आंसू' पृ. 12)

प्रसाद ने प्रेम को जहां उदात्त रूप में ग्रहण किया है वहाँ उसमें उच्छृंखलता नहीं, बाह्य आकर्षण नहीं और अतृप्ति भी नहीं है। वह त्याग की अग्नि में तपा हुआ कनक रूप है। यहाँ उनके प्रेम में वासना नहीं है। असफलता पर वे सिर नहीं धुनते प्रत्युत् उस वेदना गरल को पान करके प्रसाद सही अर्थ में 'जयशंकर' बन जाते हैं। उनके लिए तो जो चला गया, उसका प्यार वेदना है। वेदना की अति पर वे यही कह उठते हैं 'हृदय की कोमल कल्पना सो जा'। जो जीवन से चला गया उसके लिए पुकार मचाना क्या तेरे लिए कोई अच्छी बात है। यही बात 'कामायनी' की श्रद्धा द्वारा उन्होंने दिखलाई है। वह अपने प्रेम के ठुकराये जाने पर वेदना को चुपचाप पीती रहती है। हृदय को हल्का करने के लिए जब रोती भी है तो एकान्त में, मानव से अलग होकर जिससे कि उसका पुत्र दुखी न हो। इस प्रकार उनकी असफलता में संयम, मर्यादा और सहनशीलता अधिक है। इसके साथ जब महादेवीजी पर हम दृष्टिपात करते है तो लेखनी यह कहते हुए नहीं हिचकती है कि उनमें प्रेम की असफलता में वह संतुलन, और संयम नहीं जो प्रसाद में है। विरह में वे सिर धुनने लग जाती हैं। उनकी निश्वासों से आंधियां चल उठती हैं। आंसुओं से प्रलय–पयोद वर्षा कर उठते है कसक बिजली चमक उठती है।

'मेरे निश्वासों से बहती रहती झंझावात,
आँसू में दिनरात प्रलय के घन करते उत्पात,
कसक में विद्युत अन्तर्धान।

(महादेवी–'यामा' पृ. 191)

किन्तु कहना न होगा कि महादेवी के गीतों में जो प्रेम–गरिमा है वह प्रसाद–काव्य में नहीं। प्रसाद के प्रेमियों के जीवन में प्रिय के अभाव की वेदना कांटा–चुभ जाने से सम्भवतः अधिक पीड़ा कारक नहीं। विरह में वेदना, विकलता, उत्पीड़न, कसक और हूक सी प्राणों में उठती है वह महादेवीजी के ही काव्य में मिल सकती है। कवि प्रसाद के काव्य में नहीं। यही तो नारी हृदय और पुरुष हृदय का अन्तर है। प्रसादजी की 'श्रद्धा' 'मनु' के अभाव में इतनी संयत और सहनशीला बन गई है मानो मनु का आगमन और अभाव उसके जीवन में एक साधारण सी घटना हुई हो। जैसा कि श्रद्धा मनु के रुठकर चले जाने पर इस प्रकार कहती है।

'विस्मृत हों वे बीती बातें, अब जिनमें कुछ सार नहीं,
वह जलती छाती न रही, अब वैसा शीतल प्यार नहीं

(जयशंकर प्रसाद–'कामयानी' पृ. 177)

किन्तु महादेवी जी को देखिए, प्रेम की असफलता में उन्हें जो पीड़ा का साम्राज्य मिला है उसे छोड़ना नहीं चाहती। पीड़ा तो उनके हृदय से भीगे अंचल की तरह लिपटी हुई है। उनका हृदय विक्षिप्त झकोरों से परिपूर्ण है। निश्वासें उसके ओठों में आकर सिमट गई है। उनका सर्वस्व इन प्रेम की दीवानी चोटों में ही तो छिपा हुआ है। वे अपने हृदय की कोमल कल्पना को सुलाना नहीं चाहती। श्रद्धा की तरह बीती बातों को भूल जाने में ही सुख नहीं

मानती। पीड़ा को भड़काकर प्राणान्त कर देने की उनमें ललक है। इसीलिए उनकी यह प्रेम पीड़ा ललाम है। जलने में उनके लिए विश्राम है और मिटने में निर्वाण है। यह है प्रेम की गरिमा, सर्वस्व निछावर कर देने की चाह, मर मर कर जीने की कामना, विरह से जूझने का साहस। यहां अपनी पीड़ा की चिन्ता नहीं प्रिय का ही ध्यान है।

'मेरी आहें सोती हैं
इन ओठों की ओटों में,
मेरा सर्वस्व छिपा है
इस दीवानी चोटों में,
चिन्ता क्या है हे निर्मम!
बुझ जाये दीपक मेरा,
हो जायगा तेरी ही
पीड़ा का राज्य अंधेरा।।

(महादेवी 'यामा' पृ. 10)

पंत का प्रेम भी प्रारम्भ में पार्थिव ही रहा था। 'ग्रन्थि' में उनके प्रणय की ग्रन्थि है। नौका के डूब जाने पर जिस बालिका ने पंत को बचाया था उसी से पंत को अनुराग हो गया। बालिका भी पंत से स्नेह करने लगी थी। प्रेम की यह पार्थिवता बुरी नहीं क्योंकि प्रेम संन्यास नहीं अतः पार्थिवता की पुकार को उसमें ठुकराया नहीं जा सकता है किन्तु देखना यह है कि यह पार्थिवता कहीं अश्लील तो नहीं बन गई। पंत के प्रेम गीत कुछ ऐसे ही है।

'मंजरित आम्रबन छाया में
हम प्रिये मिले थे एक बार
तुम मुग्धा थी अति भाव प्रवण
उकसे थे अम्बियों से उरोज
चंचल प्रगल्भ, हंस मुख उदार
मैं सलज तुम्हें था रहा खोज'

(पंत 'युगपथ' पृ. 40)

मंजरित आम्र–उपवन में कवि का प्रिया से मिलन, प्रेयसी के उरोजों की अम्बियों की तरह उठान, उसका प्रगल्भा, चंचल और हंसमुख होना प्रेम के क्षेत्र में स्वाभाविक है और काव्य में सुरूचिपूर्ण भी है किन्तु स्थूल रूप में संभोग का वर्णन करना न तो सुरूचिपूर्ण है और न अश्लील ही। हो सकता है कि कवियों को निरंकुश मानने वाले और काव्य में यथार्थ चित्रण या यौन वृत्तियों के नाम पर सब कुछ वर्ण्य मानने वाले आलोचक स्थूल संभोग चित्र की प्रशंसा के पुल बाँधने लगें किन्तु संभवतः रीतिकालीन काव्य की कटु आलोचना के कारण को भी वे जानते होंगे। काव्य की कलात्मक दृष्टि से भी सब कुछ, कह देने में ही काव्य नहीं है।

'तुमने अधरों पर धरे अधर
मैंने कोमल वयु भरा गोद,
था आत्म समर्पण सरल मधुर
मिल गये सहज माहता मोद'

(महादेवी 'यामा' पृ. 126)

इस दृष्टि से जब हम महादेवी जी को देखते हैं तो मालूम होता है कि उन्होंने भी मिलन के चित्र दिये हैं जिनमें शिष्टता है, कलात्मकता और सुरूचि–पूर्णता है। प्रिय से मिलने के पूर्व नायिका के नेत्र चंचल थे किन्तु समागम के शैथिल्य ने उसके नेत्रों की चंचलता को छीन लिया। पलकें लज्जावश नीचे झुक गई। पहले जो वह अकारण हंसती रहती थी, उसकी वह मृदु मुस्कान भी लज्जा के कारण ओठों में ही छिप गई। उसके चंचल पैर भी भरे मेघों की मन्थर गति का अनुगमन कर रहे हैं। कहने का तात्पर्य है कि महादेवी जी ने अलकों के बिखरने से, पलकों के झुक जाने से, हास्य के मंद पड़ जाने से और गति शैथिल्य से ही सम्भोग की ओर संकेत कर दिया है। इसमें उनकी कलात्मकता भी है वर्णन की सजीवता भी है। पंत की तरह इस वर्णन को हम अश्लील नहीं कह सकते। उन्होंने जिस सरल शैली में यह वर्णन किया वह दृष्टव्य है।

'सजनि तेरे दृग बाल।
चकित से विस्मित से दृग बाल–
आज खोये से आते लौट,
कहाँ अपनी चंचलता हार
झुकी जातीं पलकें सुकुमार,
कौनसे नव रहस्य के भार।

(पंत 'ग्रंथ' पृ. 31)

तुलना करने से स्पष्ट हो जाता है कि भले ही महादेवी जी के सारे स्वप्न भंग हो गये हों आशाएं विफल हो गई हों हृदय की प्यास बुझने नहीं पाई हों। उनके रूदन में सम्भवतः किराये पर रोने वालियों से भी अधिक अश्रु प्रवाह हो सकता है किन्तु पंत की सी तड़फन, एकान्त में रूदन की चाह, हृदय को मसोस डालने की कामना और अन्य प्रेमी युग्मों की हितेच्छा महादेवी में अप्राप्य है।

यह ठीक है कि पंत अपने यौवन–द्वार पर कदम रखने पर किसी सुन्दर प्रेयसी के प्रणयपूर्ण हृदय में अपने जीवन के भार को हल्का करने के लिए उत्सुक रहे हों किन्तु सदा ही

ऐसा नहीं हुआ। जीवन के विकास के साथ–साथ उनका दृष्टिकोण भी स्वस्थ और विकसित बना। नारी के रोम, प्रेम करने वाले पंत की भी भावनाएं बदली उनके स्थूल प्रेम की धारणा उदात्त बन कर सूक्ष्म किन्तु आदर्शमयी भावना से युक्त हो जाती है। भावनात्मक प्रेम में पंत का विश्वास दृढ़ होता जाता है। प्रेम की सीमा शारीरिक बंधन नहीं है। प्रेम दिव्य है। हृदय की मुक्तावस्था ही प्रेम है। प्राणों का प्राणों से परिणय ही प्रणय है जिसमें देह वेदी का कार्य करती है।

'देह नहीं है परिधि प्रणय की,
प्रणय दिव्य है मुक्ति हृदय की,
यह अनहोनी रीति,
देह बेदी हो प्राणों के परिणय की।

(पंत 'स्वर्ण किरण' कविता अवगुंठिता पृ. 38)

अन्त में यह कहा जा सकता है कि पंत की उदात्तीकृत प्रेम भावना में व्यापकता, शाश्वतता, उदारता, स्पृहणीयता, शुचिता और भावनात्मकता प्रधान हो गई है जो कि महादेवी जी की अलौकिक प्रेम भावना की विशेषताएं भी है किन्तु पंत और महादेवी के प्रेम में अन्तर इतना ही है कि पंत ने प्रेम के रहस्यवादी स्वरूप का उद्घाटन कम किया है और जो कुछ किया भी है उसमें वह विरहाकुलता और तीव्रता नहीं है जो कि महादेवी जी की कविताओं में उपलब्ध होती है।

प्रेम के क्षेत्र में जो स्थिति प्रसाद और पंत की रही वही प्रायः निराला की भी रही थी। इनका प्रेम भी प्रारम्भ में भौतिक ही रहा था जो समग्रतः और सम्भवतः महादेवी में ही सीमित था किन्तु शीघ्र ही प्रिया के चिर वियोग ने उनके मग्न प्रेमी हृदय पर भारी आघात पहुँचाया। फिर भी यह प्रेमधारा उनको इतनी प्रभावित कर चुकी थी कि वे कवि कर्म को भूल कर समाज के आदर्शो की उपेक्षा कर वैयक्तिकता से परिचालित होकर, मर्यादा को पुष्पमाला की तरह भंग करके संभोग के ऐसे चित्र प्रस्तुत कर गये कि जिनके दोष को समाज का न्यायालय कभी भी क्षम्य नहीं मान सकता। यौवन की मदिरा में उन्मत होकर कवि अपना उत्तरदायित्व भूल बैठा है।

यह इस बात की उपेक्षा कर गया है कि उसे कुछ समाज को भी देना है, उसे भी किसी सद्मार्ग पर ले जाना है। इससे मेरा मतलब यह भी नहीं है कि कवि समाज–सापेक्ष होकर, आत्मभावनाओं का दमन कर कबीर और 'मानस' का तुलसी बन जाय। सौभाग्य की बात तो यह है कि ऐसे चित्र विरल है किन्तु जो भी है वह रीतिकालीन वर्णनों से किसी प्रकार कम नहीं है।

किन्तु महादेवी जी के काव्य में जैसे कि पहले भी कहा जा चुका है स्थूल सम्भोग के वर्णन नहीं है। काव्य की दृष्टि से सम्भोग का चित्र देना भी आवश्यक है क्योंकि प्रेम संयोग और वियोग दोनों का ही सम्मिलन है किन्तु स्थूल चित्र देने से प्रेम की गरिमा, उसका महत्व एवं शालीनता नष्ट हो जाती है। इस दोष का अंश निराला की कविताओं में मिल जाता है किन्तु महादेवी जी की कविताओं में नहीं है।

प्रेम के जिस रहस्यवादी रूप का अभाव सा हमें प्रसाद और पंत में दृष्टिगोचर होता है वह निराला की कविताओं में नहीं है। निराला जी की विरहिणी आत्मा 'उस पार' जाकर ब्रह्म से मिलने के लिए उत्सुक है। वह अभिसारिका की तरह प्रिय के पास संवर कर जाती है। वह लोक लज्जा के भय को छोड़ कर अपने पथ पर बढ़ती ही जाती है।

'मौन रही हार।
प्रिय पथ पर चलती सब कहते श्रृंगार।
कण–कण कर–कंकण, किण–किण रव किंकणी।
रणन रणन नूपुर उर लाज लौट रकिंणी।।
शब्द सुना हो तो अब लौट कहां जाऊँ।
उन चरणों को छोड़ शरण और कहां पाऊँ।।

(निराला 'गीतिका' पृ. 8–9)

निराला जी के इस दिव्य प्रेम की तुलना जब महादेवी जी के प्रेम से की जाती है तो यह स्पष्ट हो जाता है कि निराला जी के प्रेम में वह गरिमा, व्यापकता, मिलनोत्कंठा विरह वेदना नहीं है जो महादेवी जी को कविताओं में उपलब्ध होती है। महादेवी जी की विरहिणी आत्मा प्रिय मिलन के लिए अत्यंन्त उत्सुक रहती है। प्रिय से मिलने के लिए वह अनेक प्रकार से दिव्य साज–सज्जा भी करती है अनेक प्रकार की मनुहारें करती है फिर भी उसका अभिनव श्रृंगार प्रिय को प्रसन्न नहीं कर पाता।

'स्मित से कर फीके अधर अरूण
गति के जावक से चरण लाल,
स्वप्नों से गीली पलक आज,
सीमन्त सजा ली अश्रु माल,

(महादेवी 'यामा' पृ. 209)

इस प्रकार सम्पूर्ण दृष्टि से देखते हुए निष्कर्ष में यह कहा जा सकता है कि महादेवी के काव्य में वर्णित प्रेम अपनी गरिमा, महिमा, व्यापकता, व्याकुलता, औत्सुक्ता,

उत्कंठा, वेदना, उत्पीड़न, कसक, टीस, और शुचिता आदि गुणों के कारण प्रसाद, पंत और निराला के प्रेम से अधिक संयत, शालीन शिष्ट, श्रेष्ठ और गौरव पूर्ण है। इतना अवश्य है कि उनके विरह में कहीं कहीं पर ऊहात्मकता सी आ गई है किन्तु क्षण भर में ही वे सम्भल जाती है।

अतः उनका विरह भी सार्वदेशिक, सार्वकालिक और सार्वजनीन बन जाता है। संभोग के जो विरल चित्र उन्होंने अंकित किये है वे प्रेमियों के गले के कंठहार है। काव्य–कला की दृष्टि से भी वे सुन्दर है और साहित्य के 'सहित' भाव की भी पुष्टि करने वाले है। कोई भी आदर्शवादी उनसे नाक भी नहीं सिकोड़ सकता। अश्लीलता के दोष से उन्हें लांछित नहीं कर सकता। अतः इस प्रकार महादेवी जी का प्रेम–वर्णन प्रसाद, पंत और निराला की तुलना में किसी भी प्रकार हीन नहीं माना जा सकता है।

प्रकृति छायावादी कवियों के काव्य का एक विशिष्ट अंग बनकर आई है। इन कवियों ने उसका विविध प्रकार काव्य में सर्व प्रथम वर्णन किया था। इन कवियों में से भी यह श्रेय सर्वप्रथम 'प्रसाद' को मिला। यद्यपि प्रसाद प्रकृति का अनेक रूपों में अत्यन्त सुन्दर वर्णन किया है किन्तु उनमें से उसका आलम्बन, उद्दीपन, मानवीकरण, अलंकार आदि रूप ही प्रमुख है। प्रकृति का आलम्बन रूप ही कहीं पर उनके काव्य में मनोभावों की पृष्ठभूमि के रूप में आता है तो कहीं पर वातावरण की सृष्टि और संश्लिष्ट रूप में। प्रसाद ने प्रकृति के आलम्बन चित्र दोनों ही प्रकार रम्य और उग्र दिये हैं। आलम्बन चित्रों में उषा, संध्या, गिरि और शस्यश्यामला भूमि आदि के ही वर्णन सुन्दर है। उषा का एक चित्र दर्शनीय है।

'बीती विभावरी जाग री
अम्बर पन घट में डुबो रही
तारा घट उषा नागरी

अधरों में राग अमंद पिये
अलकों में मलयज बन्द किये।
तू अब तक सोई है अलि
आंखों में भरे विहाग री।

(प्रसाद 'लहर' पृ. 19)

प्रातः काल का यह सुन्दर वर्णन है। रात्रि बीत रही है। उषा रूपी गौरी नायिका आकाश के पनघट में आलोक भरने के लिए तारे रूपी जल पात्र डुबो रही है। पक्षी चहचहा रहे है। किसलयों के अंचल वायु के सम्पर्क से हिल उठे है। लतिका रूपी छोकरी भी सरस और नव पुलकित पुष्पों की गगरी भर लाई है। प्रभात के इस चित्र में बिम्ब ग्राहकता है। सुन्दर, मृदु पदावली का प्रयोग है। मानवी करण ने उषा की सुषमा की ओर बढ़ा दिया है। अम्बर को पनघट बनाकर उसमें ताराघट डुबाने की मधुर कल्पना ने वर्णन में जहाँ एक और चारूता उत्पन्न कर दी है वहीं पर दूसरी ओर वर्णन भी मूर्तिमान और सजीव बन गया है। यदि शब्दों की ध्वन्यात्मकता ने चित्र को मुखरित कर दिया है तो वर्णन की प्रभावोत्पादकता में अलंकारों का योग भी स्तुत्य प्रयास है।

इसकी तुलना में महादेवी जी का प्रभात वर्णन दिया जा सकता है। प्रातः काल ज्यों ही रवि रश्मियां मृशाल–मुकुलों पर पड़ती हैं तो उनसे निकलते हुए भ्रमरों के कलकंठों से निसृत सरल गीत कलकल निनादिनी निर्झरिणी की तरह फूट पड़ते हैं। इन स्वर्णिम किरणों में अन्धकार करवटें बदलता हुआ जागता है। कुहरे से आच्छान्न सीमन्त रेखाएं प्रभातकालीन अरूणिम वातावरण में कोमल कली की कोर की तरह ईशत् लाल और श्वेत रंग की हो जाती है। विहगावलियों के मधुर राग निस्त्ब्ध वातावरण को मुखरित बना देते है। नवीन और श्वेत कुन्द कली के समान शुभ्र जलद पटल भी उषा की वर्णच्छटा से सम्पृक्तहोकर आकाश में इन्द्र धनुषी वितान से बन गये हैं कलियां चटक रही है। चिड़ियां चहक रही है। समीर परियां विहार कर रही हैं। सौरभ का केश जाल फैला हुआ है। तितलियों के कुमार पराग–पान कर रहे हैं, झूमते हुए उड़ रहे हैं। अपने स्वप्निल पंखों को फैला कर नींद भी उड़ गई। जगत् की अलसाई आँखों पर खुमार अंगड़ाई ले रहा है। कितना सरस और मोहक वर्णन है कि पढ़ते ही मन–मयूर नाच उठता है।

'इन कनक रश्मियों में अथाह,
लेता हिलोर तम सिन्धु जाग,
बुद्बुद् से बह चलते अपार,
उसमें विहंगों के मधुर राग,

प्रसाद ने मानव प्रकृति के अन्तर्गत जिन रूप चित्रों को काव्य में अंकित किया है वे भी तुलनात्मक अध्ययन की दृष्टि से विवेचनीय है। श्रद्धा का सौन्दर्य वर्णन सुन्दर है। उसका लम्बा और गोरा शरीर है। अंग, अंग में यौवन का विलास भरा है। वह नीला वस्त्र धारण किये हैं जिससे उसके अधखुले गोरे मृग इस प्रकार सुशोभित हो रहे हैं कि मानों काले मेघों के बीच में गुलाबी रंग के बिजली के फूल खिल उठे हैं। उसका मुख कंधे के पास रखा हुआ था।

उसके चारों ओर काले घुंघराले बाल बिखरे हुए थे उस समय वह मुख ऐसा प्रतीत हो रहा था कि मानो सुधाकर के पास अमृतपान की कामना से काले मेघ घिर कर आ गये हों। श्रृद्धा का सुन्दर मुख कभी ऐसा दिखलाई देता था कि मानो पश्चिमाकाश में घिरे असितमेघ मण्डल को विदीर्ण करता हुआ अरूण रवि मंडल दिखाई देता हो। लाल अधरों पर बिखरी हुई मुस्कान अरूण की एक किरण के सामान प्रतीत होती थी।

'नील परिधान बीच सुकुमार
खुल रहा मृदुल अधखुला अग,
खिला हो ज्यों बिजली का फूल
मेघ बन बीच गुलाबी रंग।

(जयशंकर प्रसाद–'कामायनी' श्रद्धासर्ग पृ. 46)

यह रूप वर्णन सचमुच सुन्दर है और अलकारों के चमत्कार ने चारूता को बड़ा दिया है। महादेवी जी ने इस प्रकार का पूर्ण चित्र नहीं दिया है। उन्होंने शरीर के विभिन्न अवयवों को भिन्न भिन्न स्थानों पर आंशिक वर्णन सा ही किया है।

इस वर्णन से किसी प्रतीक्षा में मग्न नायिका की दूरारूढ़ कल्पना कर ली जाती है किन्तु उसका रूप एक दम उस प्रकार सामने नहीं आता जिस प्रकार काली, घुघराली अलकों से घिरे हुए श्रद्धा के गोरे मुख का चित्र सा दिमाग में उतर जाता है। इस प्रकार यह वर्णन प्रसाद जी के रूप वर्णन से श्रेष्ठ नहीं कहा जा सकता है।

प्रकृति के प्रिय पुत्र पंत ने सचमुच अपनी 'मां' को महान गौरव प्रदान किया है, या यों भी कहा जा सकता है कि प्रकृति पंत को पाकर निहाल हो गई। अपनी कोमल कल्पना और सरस शब्द योजना के द्वारा पंत ने प्रकृति में उस अनुपम लावण्य को समाविष्ट कर दिया है कि लावण्य के लोभी जन आज भी पंत के प्रकृति वर्णन पर रीझ उठते है और भविष्य में भी रीझेंगे। कवि पंत ने प्रकृति को अनेक रूपों में गहराई से देखा है।

वातावरण कितना शान्त है, यह कहने की आवश्यकता ही नहीं। उसकी शान्ति पंत के नीरव शब्दों की योजना ही दे देती है। मानवीकरण से गंगा को मानवीय भावों से परिपूर्ण तो चित्रित किया है ही साथ ही उसका अन्तः बाह्य रूप उपमा और रूपक के प्रयोगों से स्पष्ट है। गंगा को तापस बाला सी कहकर कवि ने उसकी बाह्य सुगमता और शुभ्रता को व्यक्त करते हुए अन्तः शुचिका को भी प्रकट कर दिया है। दूसरे शब्दों में कवि ने गंगा में एक प्रकार से सत्यं, शिवं और सुन्दरं की प्रतिष्ठापना सी कर दी है। कितनी धूर की सूझ है यह ? यह श्रेष्ठ कवि प्रतिभा का ही तो नमूना है। वर्णन की सचित्रता, शब्दों की सुकुमारता, अहंकारों की रमणीयता, पदावली की प्रभावोत्पादकता और वातावरण की शुचिता एवं स्निग्धता सभी सहृदयों को स्निग्ध बना देती है। यह श्रेष्ठ कवि–कौशल का ही कार्य है।

महादेवी जी ने भी इस प्रकार के चित्र प्रस्तुत किये हैं। रात्रि का सर्वत्र वैभव और विलास छाया हुआ है, उसे देखकर उन्हें यह डर होता है कि प्रभात बेला में यह समस्त वैभव समाप्त हो जायगा इसलिये वे उषा को अत्यन्त मीठे शब्दों में 'मत अरूण घूंघट खोल री' कह कर मना करती है। आकाश में तारों के पुष्पवृन्त खिले है। तुहिनकणों में वे अश्रु बरसाते हुए हंस रहे हैं। रात्रि ने फूलों की हाट लगा दी है। व्यापार के लिए उसने चारों ओर चमकते हुए तरल मोती सजा रखे हैं। हे उषे! तू इनका सौदा आकर मत कर! देख। तू इनका मोल मत पूछ क्योंकि ये लजीले मोती तुझे देखते ही गल जायेंगे। निशा ने मानो अपने लिए कुंकुम–केशर के रंग में अपनी मेघों की चुनरी रंगी है। लघु लहरियों में वह झीनी–सी चमक रही है किन्तु उषे! तू अभी रूक जा नहीं तो तेरी विछलन से चंचल तरंगों में वह चुनरी की छाया भी छिप जायगी। दानी चन्द्रमा ने सभी को कलियों की प्यालियों के सितसुधा बांट दी है तू हठात् ही इन सुधासिक्तकलियों के चषक में लाल मदिरा घोलने का दुःसाहस न कर। यह जगत् अपनी पलकों की सीपियों में निद्रा का जल भर स्वप्नों के ऐसे अनुठे मोती बना रहा है जो तेरे खरीदने के लिए नहीं है क्योंकि तू सामने आकर ज्योंही खड़ी होगी तो वे स्वप्नों के मोती नींद के जल में ही खो जायेंगे।

'मत अरूण घूंघट खोल री।
निशि गई मोती सजा कर
हाट फूलों में लगाकर
लाज से गल जायेंगे
मत पूछ इनसे मोल रा।
स्वर्ण–कुमकुम में बसा कर,
है रंगी नव मेघ–चुनर,
बिछल मत घुल जायगी
इन लहरियों में लोल री।

(महादेवी 'यामा' पृ. 185)

महादेवीजी ने यह रात्रि का नीरव किन्तु वैभव पूर्ण

वातावरण प्रस्तुत कर उच्च कलात्मकता का परिचय दिया है। 'मत अरूण घूंघट खोल री।' में कवयित्री ने मना करने की जिस शालीनता, शिष्टता और मिठास का परिचय दिया है वह संभवतः उन पर बीसवीं सदी के शिष्ट–कथनों का प्रभाव है। इस प्रकार का मृदु कथन भी साभिप्राय है। महादेवीजी को यह तो ज्ञात ही है कि निशा और उषा दोनों ही रमणियाँ है, दोनों ही सुन्दर और सजी हुई है। नारियों में एक दूसरे की सुन्दरता और सजावट को देखकर स्वाभाविक ईर्ष्या होती ही है। यही ईर्ष्या संभवतः उषा में है किन्तु कवयित्री बड़े चातुर्य के साथ उसे फुसला कर मीठे वचनों से उसकी ईर्ष्या को शान्त बनाये रखती है। यह है महादेवी जी की कल्पना की पहुँच जिसे साधारण कवि की छाया भी नहीं छू सकती है। निराला जी ने भी अपने महासत्व से प्रकृति को प्राणवान बनाया है उन्होंने मानव और मानवेत्तर दोनों ही प्रकृतियों का सुन्दर वर्णन किया है। गर्मियों के दिन थे। दोपहर का समय था। चमचमाती कड़ी धूप थी। लू चल रही थी पृथ्वी झुलस रही थी जैसे रूई जलती है। सामने वृक्षों से सुशोभित सुन्दर प्रासाद खड़ा था। कुछ दूरी पर, इलाहाबाद के पथ पर, छायाहीन पेड़ से तले बैठी हुई युवती पत्थर तोड़ रही है। उसका श्यामल सलौना शरीर था जिस पर यौवन अंगड़ाइयाँ ले रहा था। नेत्र झुके हुए थे। वह अपने कार्य में तत्पर थी। हाथ में भारी हथौड़ा था जिससे वह पत्थर तोड़ती थी। उसके ललाट से श्रम स्वेद झर रहे थे। युवती का यह चित्र सचमुच सन्दर है। ग्रीष्म का दाहक वातावरण युवती का कारूणिक चित्र प्रस्तुत कर देता है। श्रम स्वेद जहाँ एक ओर उसके गुरूतर कार्य की सूचना देते हैं वहीं पर वे उसके श्यामल शरीर की शोभा को भी द्विगुणित कर देते हैं किन्तु खेद है कि महादेवी जी किसी भी मानव का ऐसा पूर्ण चित्र नहीं दे सकी है। इस क्षेत्र में वे प्रसाद और पंत से भी पीछे रह गई है। यदि उसके काव्य में से अनेक पंक्तियाँ को चुनकर एकत्र किया जाय तो सम्भवतः एक विरहिणी का चित्र खड़ा किया जा सकता है। ऐसा प्रतीत होता है कि विरह के उन्माद में मानव का रूप चित्र भी आँख, अधर, मुख, पद आदि रूप में छिन्न भिन्न होकर बिखर सा गया है।

निराला जी ने आलम्बन रूप में संध्या का वर्णन सुन्दर किया है। दिवस की अन्तिम बेला थी। आकाश में बादल छाये हुए थे। दिनकर के छिप जाने से उनमें अनेक प्रकार के रंग भर गये थे। असित अन्तरिक्ष शान्त था। ऐसे समय में परी सी सुन्दरी संध्या व्योम–पथ से चुपचाप धीरे धीरे उतर रही है। उसके अधर अरूणिम और मधुर हैं। वह शान्त और गम्भीर है। हास–विलास का उसमें नामो निशां भी नहीं। उसके काले, घुंघराले अंधियारे बालों के बीच केवल एक सितारा ही हंस रहा है जो उस राजरानी संध्या का मानों अभिषेक कर रहा है। लता की तरह अलसाई सी और कलिका की तरह कोमल संध्या अपनी सहेली नीरवता के गले में गलवैहां डालकर चली आ रही है।

दिवसावसान का समय,
मेघमय आसमान से उतर रही है
वह संध्या–सुन्दर परी–सी
धीरे धीरे धीरे।

(निराला कविता 'संध्या सुंदरी')

महादेवी जी ने भी वासंती निशा का ऐसा ही वर्णन किया है। कवयित्री उसको धीरे–धीरे आने को कहती है क्योंकि वह सजी हुई है, कहीं उसका श्रृंगार बिखर न जाय यही उन्हें डर है। उसकी श्रेणी में तारक–पुष्प गुथे हुए हैं। उसने अपने ललाट पर शशि का शीश फूल बांध लिया है। किरणों के कड़े हाथों में पहन रक्खे हैं। स्वेत जलद पट्ल का घूंघट निकाल रक्खा है। कितनी लज्जा शील है इसीलिए तो उसे धीरे धीरे आना ही शोभा देगा। उसकी एक कटाक्ष से ही ओस के मोती बिखर जाते है, पैरों में बिछुए मधुर आवाज कर रहे हैं। कटि में अलि–गुंजित कमलों की करधनी बज रही है। अलसाई गति से तरंगित सी होती हुई चल रही है। ज्योंही वह मुस्कराती है तो तरल चाँदनी छिटक जाती है।

धीरे धीरे उतर क्षितिज से
जा बसंत रजनी।

(पंत 'बसंत रजनी)

पंत ने भी संध्या का ऐसा ही वर्णन किया है। महादेवी जी का भी यह वर्णन उत्कृष्ट है। निशा को मानवीय भावों और व्यापारों से पूर्ण चित्रित तो किया ही है साथ ही श्रृंगार के उपकरण, तथा निशा का लज्जाशील होना भारतीय संस्कृति का सूचक है। इस प्रकार महादेवी जी का प्रकृति–चित्रण तुलनात्मक दृष्टि से भी न्यूनाधिक सुन्दर ही कहा जा सकता है और जहाँ उनका प्रकृति चित्रण उनके समकालीन कवियों के चित्रण की तुलना कर सकता है वहीं वह हिन्दी के अन्य कवियों से भी किसी

प्रकार हीन नहीं कहा जा सकता। प्रकृति के मनोरम चित्र जिस प्रकार महादेवी के काव्य की अद्वितीय सम्पत्ति है उसी प्रकार हिन्दी–साहित्य की भी अतुल निधि है।

मूलग्रन्थ सूची

महादेवी वर्मा कृत–निहार, रश्मि, नीरजा, सांध्यगीत, दीपशिखा (यामा)

जयशंकर प्रसाद कृत–लहर, झरना, आंसू, कामायनी, स्कन्दगुप्त, प्रेमपथिक,

पंत– युगपथ, ग्रन्थ, स्वर्णकिरण, उत्तरा, नौकाविहार

निराला–कविश्री, गीतिका

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. *महादेवी की काव्य साधना–श्री शिव मंगल सिंह चौहान*
2. *छायावाद विश्लेषण और मूल्यांकन–श्री दीना नाथ शरण*
3. *आधुनिक हिन्दी काव्य में प्रकृति चित्रण–श्री रामचन्द्र श्रीवास्तव*
4. *हिन्दी काव्य धारा में प्रेम प्रवाह–श्री परशुराम चतुर्वेदी*

ISSN 2277-5587

नारी जीवन के द्वन्द्व और संघर्ष डॉ. मधु संधु की कहानियों के सन्दर्भ में

डॉ. दीप्ति
सहायक प्रोफेसर, हिन्दू कॉलेज, अमृतसर (पंजाब)

www.shodhshree.com

शोध सारांश

आधी दुनिया यानी स्त्री अपनी संवेदना, जीवन संघर्ष, द्वन्द्व मनोविज्ञान के कारण साहित्य का केन्द्रबिन्दु रही है। प्रस्तुत शोध पत्र में आधुनिक समाज के परिप्रेक्ष्य में डॉ. मधु संधु की कहानियों के सन्दर्भ में वैश्विक चुनौतियों का सामना करती हुई आधुनिक नारी के जीवन संघर्ष और उपलब्धियों के साकारात्मक रुप को दिखाने का प्रयास किया गया है। 21वी सदी के परिप्रेक्ष्य में नारी अस्मिता, उत्थान एवं आत्मनिर्भरता के साथ-साथ अन्याय का विरोध करती नारी के सशक्त रुप का चित्रण है। यहां सजग आत्म चेता, अत्याधुनिक, बौद्धिक, शिक्षित भारतीय स्त्री का मनोविज्ञान, संघर्ष और विजय यात्रा प्रस्तुत है।

संकेताक्षर : *जीवन संघर्ष, द्वन्द्व मनोविज्ञान, महत्त्वाकांक्षी, नारी सशक्तिकरण, संघर्ष और विजय यात्रा।*

आधी दुनिया यानी स्त्री अपनी संवेदना, जीवन संघर्ष, द्वन्द्व मनोविज्ञान के कारण साहित्य का केन्द्रबिन्दु रही है। ''भारतीय स्त्री विमर्श का स्वरूप भारतीय साहित्य की लेखिकाओं में बौद्धकाल से लेकर समकालीन युग तक अनवरत रूप से प्राप्त होता है।''[1] पुरातन काल में जहां नारी का संसार घर-परिवार तक ही सीमित माना जाता था। नारी के कर्त्तव्य मात्र पारिवारिक सदस्यों की सेवा धर्म तक ही सीमित थे परन्तु आधुनिक युग में नारी ने घर और बाहर के मोर्चे जीतकर अपनी सफलता एवं उपलब्धियों से अपने आलोचकों का मुंह बन्द कर दिया है। वर्ष 2001 को भारत में महिला सशक्तिकरण के रूप में जहां घोषित किया गया, वहीं प्रत्येक वर्ष आठ मार्च को अर्न्तराष्ट्रीय महिला दिवस मनाना नारी की दिन-प्रतिदिन सशक्त होती स्थिति का द्योतक है। 'स्त्री विमर्श' आज हिन्दी साहित्यकारों की चर्चा का महत्त्वपूर्ण विषय है। निर्विवाद रूप से यह प्रमाणित सत्य है कि परमात्मा की सुकोमल रचना नारी आरम्भ से ही पुरूष की प्रेरणा रही है। पुरूष की शारीरिक आवश्यकताओं की पूर्ति करने के साथ-साथ माँ, बेटी, बहन, पत्नी रूप में ही नहीं बल्कि अपनी आत्मिक सुन्दरता से कर्म करने की प्रेरक भी रही है परन्तु नारी को पुरूष के अहं और आर्ष वर्चस्व, प्रभुत्व से जूझते हुए सदैव अपने अस्तित्व स्थापना के लिए निरन्तर संघर्ष करना पड़ा है। सामाजिक स्वतन्त्रता पाकर भी वह युगीन विषमताओं से छुटकारा नहीं पा सकी है परन्तु आज सुशिक्षित, आत्मनिर्भर आधुनिक नारी पुरुष प्रधान समाज की स्त्री विरोधी व्यवस्था, रूढ़ियों व परम्पराओं के विरूद्ध नाकारात्मक मुद्रा में खड़ी है। नारी अपने व्यक्तित्व पर पुरुष द्वारा निरन्तर प्रहार सहन करती हुई कुछ क्षणों के लिए मानसिक रूप से चाहे निर्बल एवं असमर्थ महसूस करती है परन्तु फिर अपनी जीजिविषा, अड़िग निर्णय एवं संकल्प के बल पर जीवन समर में विजय प्राप्त करती है।

आधुनिक पंजाब के हिन्दी साहित्यकारों ने नारी के अस्तित्व, अस्मिता के बारे में स्वतन्त्र रूप से चिन्तन किया है, जिनमें बहुमुखी प्रतिभा सम्पन्न डॉ. मधु संधु ने अपने 36 वर्ष के अध्यापन काल के दौरान 2 कहानी-संग्रहों, 3 सम्पादित ग्रंथों और 16 शोध-ग्रंथों की रचना के दौरान आधुनिक समाज के परिप्रेक्ष्य में नारी की युगीन स्थिति को रेखांकित किया है। प्रस्तुत शोध पत्र में 'स्वप्नदाह, निर्णय, एक और छिन्नमस्ता, पाँव तले की जमीन' कहानियों के माध्यम से नारी विमर्श के विभिन्न पहलुओं का उद्घाटन करने का प्रयास किया गया है।

लेखिका ने शोषण के चक्रव्यूह में फंसे निम्न वर्ग की स्त्री की दयनीय अवस्था का यथार्थ अंकन अपनी कहानियों में किया है। 'स्वप्नदाह' कहानी में भ्रष्ट तन्त्र से जूझ रही स्त्री की मनोव्यथा रेखांकित है। प्रस्तुत कहानी में छिंदो उस निम्न वर्ग की औरत का प्रतिनिधत्व करती है जो दिन–रात के कठिन परिश्रम के पश्चात् रोजी–रोटी की जुगाड़ करती है और पाँच मरले की जमीन मिलने के सुखद भविष्य के स्वप्न देखती है जो भ्रष्ट सरकारी तंत्र और परिस्थितियां पूरे नहीं होने देते। छिंदो के अनुसार, ''पिछली बार जब छः सौ रूपये इकट्ठे करके वह सब्ज़ी बनाने का कूकर लेने की सोच रही थी, तब हेमा का डैडी एक दिन अच्छा–भला काम से आया और खाँसते–खाँसते हाँफ गया। कुछ खून के धब्बे भी थे। ..... उसे अस्पताल ले जाया गया। दो दिन तो टैस्ट ही होते रहे और पता चला कि टी. वी. है। .....छह सौ संभाले थे और छः हजार लग गये।''[2] उसकी बेटी हेमा के पांव ठोस जमीन पर टिके है। वह दसवीं पास होकर भी स्कूल में अध्यापिका बनकर 200 रूपये कमाने की अपेक्षा घरों में काम करके एक हजार रूपया महीना कमाकर घर की आर्थिक तंगी दूर करने में विश्वास रखती है। ''अपने अस्तित्व के प्रति पूर्ण सजग युवती। न उसे बहकाया जा सकता है, न गुमराह किया जा सकता है, न उसका शोषण किया जा सकता है।''[3] वह ठोस यथार्थ की धरती पर खड़ी है। छिंदो अपनी बेटी के दहेज बनाने के लिए हेमा के घरों के पैसे अलग जमा करती है। हेमा की शादी के पश्चात् वह पैसे जोड़कर नया मकान बनाना चाहती है।

इधर गाँव में एक समाचार फैलने लगा कि "जिन लोगों को गाँव में रहते हुए दस वर्ष से अधिक हो गए है उन्हें पाँच–पाँच मरले जमीन मिलेगी। छिंदो तो यहाँ बाद में आई, किन्तु उसकी सास यहाँ पिछले पैंतीस वर्षो से रह रही थी, सरपंच ने बाईपास के साथ वाली जमीन दिलाने का वायदा किया था। बस अब सबके सुख भरे दिन आने ही वाले थे। न रिक्शा चलाओ, न तपेदिक, हो। न आँधी–पानी, धूप–गर्मी में कोठियों में काम करने जाओ। बस सड़क के किनारे की जमीन मिल जाये तो सबसे पहले छिंदो दुकान खोलेगी–राशन पानी की।"[4] छिंदो की सास और उसका पति सरपंच की बेटी की शादी में खूब काम करते है परन्तु भ्रष्ट सरपंच अन्त में अपने ही नाते–रिश्तेदारों को ज़मीन दिलवा देता है। इस प्रकार प्रस्तुत कहानी में निम्न वर्ग की छिंदो के सुखद भविष्य के स्वप्नदाह के साथ ही उसकी आकाक्षांओं का गला घुट जाने का असहनीय दर्द अभिव्यंजित है।

'पाँव तले की जमीन' में बिजनेस फैमिली से सम्बन्धित सुधी आधुनिक नारी के महत्त्वाकांक्षी रूप को प्रतिबिम्बित करती है जो उच्च शिक्षा प्राप्ति तक ही सीमित नहीं रहती बल्कि जीवन में कुछ कर गुजरने की इच्छा से सराबोर है। कहते है कि नारी को स्वाभिमाान से जीने के लिए आत्मनिर्भर बनना जरूरी है। आत्मनिर्भर होकर नारी स्वतंत्र रूप से जिन्दगी बिता सकती है। सुधी इस बात से भलीभांति परिचित है। वह पी.एच.डी. करके किसी कॉलेज में दो–तीन वर्ष पढ़ाने लगती है और उसके पश्चात् विश्वविद्यालय में अध्यापन कार्य करती है। गुणवान और विदुषी सुधी को बहुत से रिश्ते आते है परन्तु उसे कोई रिश्ता पसन्द नहीं आता है। ''वह लेक्चरर से सीनियर लेक्चरर और फिर रीडर बनी।''[5] विश्वविद्यालय में नये प्रोजैक्ट की तैयारी में ही उसे कब पाँच बज जाते उसे पता ही न चलता। ''हर महीने किसी न किसी पत्रिका में अपना कोई न कोई आलेख देख, प्रशंसा के पत्र पा, वह और भी तन्मयता से काम में लीन हो जाती।''[6]

सुधी समय के साथ–साथ बढ़ती आयु के चिन्ह अपने शरीर पर महसूस करने लगती है परन्तु उसने जैसे शादी नहीं करने का निश्चय कर रखा है। घरवालों द्वारा बहुत से रिश्ते देखे जाते है परन्तु सुधी को पैंतीस की आयु में भी कोई रिश्ता पसन्द नहीं आ रहा है। उसकी भाभियां भी मानो उसके रोब एवं दबदबे से छुटकारा पाने को छटपटाती है। अपनी बढ़ती आयु, भाभियों का बुरा व्यवहार, भाईयों की बेरूखी, पिता की चिन्ता के कारण वह शादी के लिए तैयार हो जाती है। सुधी की मध्यवित कस्बाई लड़के से शादी तय हो जाती है। भविष्य में अपनी घरेलू जिन्दगी के बारे में सोचकर वह घबरा जाती है। ''बच्चों का शोर, खरीददारी का हंगामा, दूसरी वैवाहिक हलचले उसके पास से सिर झुकाए निकल जाती। न वह प्रसन्न है, न उदास। एक तटस्थ भाव उसे घेरे रहता। पैंतीस वर्षीय उपलब्धियों का त्याग भाव उसमें वैराग्य भर रहा था, उसे निहंग कर रहा था।''[7]

विवाह के पश्चात् सुधी को ग्रामीण जीवन में असुविधा महसूस होने लगती है। अब उसे अपने मायके में मां, भाई–भाभी की यादें सताने लगती है। उसका पति अमन पत्नी की उपलब्धियों से आगे अपने आपको सिद्ध करना चाहता है। अतः वह दक्षिण में आगे की पढ़ाई के लिए एम. डी.एस. करने चला जाता है। सुधी अपनी ससुराल में अपनी बेअदब, बेकायदा, घमंडी, बेसलीका इत्यादि की

छवि से मुक्त होने के लिये बेचैन हो जाती है और वह विश्वविद्यालय में फ्लैट के लिये आवेदन देकर अपना अगला प्रोजेक्ट पूरा करने के बारे में निश्चय करती है। सुधी की यातनाओं की शुरूआत तब होती है जब एम.डी. एस. करके अमन कुमार वापिस आते है। ''डॉ॰ अमन हर सुबह–शाम दलान में, कमरे में, छत पर सौ–सौ रंग दिखाने लगे। अमन के अंदर के सौ–सौ कम्पलैक्स उभरने लगे थे।''[8] सुधी अपने पति के बदले रूप को देखकर आश्चर्यचकित हो जाती है। ''सुधी सोचती जिन्दगी के खुले रंग देखने के बाद क्या जीवन का अवसान काले रंग में ही होना था। ..... शादी के बाद पांव तले की ज़मीन की पुनः तलाश होती है, यह सुधी ने अब जाना।''[9]

'निर्णय' कहानी में जहाँ पुरुष का धूर्त रूप प्रस्तुत है, वहीं नारी के साथ हुए अन्याय से लेकर उसके अशक्त से सशक्त बनने की यात्रा चिन्हित है। प्रस्तुत कहानी में मध्यवर्गीय पुरुष के अन्यायी और धूर्त रूप के पहलू का उद्घाटन करता 'विभु' परिवार के कर्त्ता–धर्त्ता के रूप में प्रस्तुत है। ''बड़े भाई रघु को उसने पागल करार दे रखा था और उसकी मरने वाली पत्नी को दिल की रोगिणी।''[10] उसकी पहली मरने वाली पत्नी के बारे में कहा जाता है, ''विभु ने दिन पत्नी को तैयार किया और पहला फोन रो–रोकर उसी ने मरने वाली के मायके किया। कहा–शायद दिल का दौरा पड़ा था। न डॉक्टर बुलाया जा सका, न रोग–उपचार। बस चली गई बड़ी भाभी। मायके से किसी के भी आने से पहले अर्थी को शमशान घाट ले जा आग दी चुकी थी। यह मृत्यु आज भी रहस्य है।''[11] रघु एक मध्यवर्गीय परिवार को तेरह हजार की मदद देकर अपनी भाई की दूसरी शादी पलक से करवा देता है। बड़े घर की बहू बनने का सपना लेकर आई पलक ससुराल में आकर देखती है कि उससे बीस वर्ष बड़ा देवर उसके विरूद्ध खड़ा है। उसने दोनों सौतेले बच्चे अपने वश में रखे है। विवाह के पश्चात् खुशी के खूबसूरत सपने संजोकर आई पलक का ससुराल में जिन्दगी के बदसूरत पक्ष से परिचय होता है। आरम्भ में घुटकती, सिसकती इस जिन्दगी से छुटकारा पाने के लिए वह आत्महत्या जैसे घिनौने त्य के बारे में सोचने लगती है। ''पगलाया रघु कभी भी मारपीट आरम्भ कर देता। ऐसे ही उसे रिब फैक्चर झेलना पड़ा था। .....खाना खाते–खाते अचानक वह कटोरियां फेंककर अपने पुरुष होने का प्रभुत्व दिखाता। .....अचेतन के लौह–किवाड़ों पर एक ही गूंज–अनुगूंज बनकर बार–बार टकराती–मुक्ति चाहिए।''[12]

रघु की मौत के पश्चात् विभा के चरित्र का दूसरा उज्जवल पक्ष नारी सशक्तिकरण का दैदीप्यमान होता है। वह वर्कशाप के दो हिस्सों में से एक हिस्सा रघु के दोनों बच्चों और दूसरा हिस्सा अपने लिए रख लेती है। वह विभु के हेरफेर के इरादे को भी नाकामयाब कर देती है। पलक विवाह के नाम पर दी गई आहुति से छटपटाती हुई दमघोटू जीवन से मुक्ति का रास्ता ढूँढ निकालती है और हिसाब–किताब देखने के लिए नियुक्त किए मुंशीनुमा युवक से सान्निध्य बढ़ने पर शादी कर लेती है। इस प्रकार वह विभु के मुंह पर करारा तमाचा मारकर अपनी मुक्ति की सार्वजनिक घोषणा करती है। ''अब वह अट्ठारह वर्ष की टीनएजर नहीं, पच्चीस वर्षीय विवेकशील युवती थी जो दूसरों द्वारा लिए निर्णयों से मुक्त हो चुनाव करना जान गई थी। घिसटने की नियति अपनाने से उसने इन्कार कर दिया था।''[13]

'एक और छिन्नमस्ता' कहानी अपने परिवार से मिले अपमान का घूंट पीती एक मां की कहानी है। आज हर तीसरी गृहस्वामिनी कही जीने वाली नारी की यही कहानी हैं। ''पति की निरंकुशता को, गालियों की गर्द को, मेहमानों की उपस्थिति से मिलने वाले अपमान को, इन्हीं बच्चों के प्यार से झाड़–बुहार वह नित्य ताजा दम रहती।''[14] बोल्ड बहू के आने पर उसे बुढ़िया की उपाधि ओढ़नी पड़ती है। ''उसने सब छोड़ दिया। टी.वी. के एम. वी. एफ. चैनल को, थियेटर मूवी को, किटी पार्टी–ब्यूटी पार्लर को।''[15] जैसे कि अन्य वृद्धाएं करती है उन्हीं के अनुकरण पर वह बाबाओं के आश्रम की कीर्तन सभाओं में मन की शांति खोजने लगी। पर ''जल्दी ही वह जान गई कि इन बाबाओं की उत्कृष्टता का रहस्य वही है जो उसके अपने घर–परिवार का–पति–पुत्र– बहू का यानी मैटिरियलिज्म।''[16] पति के छल का शिकार वह घर में ही असुरक्षित और अकेलेपन का संत्रास झेलती जीवन जीने को विवश प्रतीत होती है।

छोटे बेटे सैनिक आदित्य के प्रेम विवाह के पश्चात् वह उनकी गृहस्थी बसाने में पूर्ण योगदान देती है। आदित्य की पोस्टिंग बदलने तथा अणिमा के मायके जाने के बाद वह बेटी के ससुराल में अस्थायी आश्रय की खोज में जाती है परन्तु बेटी के परिवार के हिस्से में आये एक ही कमरे में रहने में उसे चार–छः दिनों में ही असहज महसूस होने लगता है और वह वापिस अपमानित व रूखा व्यवहार

करने वाले पति–पुत्र के पास लौट आती है।

कारगिल युद्ध के समय टी.वी. न्यूज़ पर दर्जनों शहीद सैनिकों और भारतीय सेना की विभिन्न क्षेत्रों से घुसपैठियों को खदेड़ने की सफलता की खबरों में व्यस्त रहने लगती है। एक दिन वह टी.वी. पर ही देश के लिये बलिदान देने वाले अपने बेटे के शहीद होने की खबर सुनती है।

''हिमालय की ऊंचाईयों पर पन्द्रह शत्रुओं को मारने, एक पोस्ट पर पुनर्विजय प्राप्त करने के बाद अपने रक्त से स्वतन्त्रता का महाकाव्य लिखते हुय देश के वैभव के लिये आदित्य शहीद हुआ है, उसे गम करना चाहिए या गौरव, इस द्वन्द्व से मुक्त होने से पहले ही एक नई स्थिति उत्पन्न हो गई।''[17]

शहीद बेटे की पत्नी अणिमा को ससुराल में सास के अलावा किसी अन्य रिश्तेदार की सहानुभूति नहीं मिलती है। ''घर में ससुर, ज्येष्ठ, जेठानी सब उसे अवांछित प्राणी की तरह देख रहे थे।''[18] सब उसे आदित्य की वारिस के रूप में स्वीकार नहीं करते है और वह खुद ही आदित्य की सपंति को हड़पना चाहते है। ''बाप–बेटे ने मानवता की नियत्रंण रेखा के इस पार षडयन्त्रकारी घुसपैठ शुरू कर दी। ....अब वे इसी ताक में थे कि कुछ महीने पहले आकर आदित्य की वारिस बनने वाली अणिमा को कैसे दूध की मक्खी की तरह निकाला जाए। क्या वे प्रमाणित करें कि आदित्य अणिमा के सम्बन्ध ठीक नहीं थे ? क्या वे घोर वेदना में खाई अणिमा से धोखे से सब हस्ताक्षर करवा ले ? क्या वे वकील करके मौके का फायदा उठाएं ?''[19]

परन्तु अणिमा की सास को यह मंजूर नहीं है। उसने निश्चय किया कि वह अपनी भोली बहू के साथ अन्याय नहीं होने देगी, चाहे उसे पति–पुत्र के विरूद्ध ही क्यों न जाना पड़े। ''लगा आज उसे छिन्नमस्ता बनना ही होगा। महाशक्ति बन कलुष का नाश करना ही होगा। भले ही उसे अपना गला काटकर उसी से निकली रक्तधारा को चाटना पड़े।''[20] इस प्रकार प्रस्तुत कहानी में अन्याय के विरूद्ध आवाज़ उठाने वाली स्त्री के सशक्त रूप का चित्रण है।

लेखिका की उपरोक्त कहानियां नारी उत्पीड़न की न होकर नारी सशक्तिकरण की है। इसमें जीवन संघर्ष और उपलब्धियों का साकारात्मक रूप उभर कर आया है। प्रस्तुत कहानियां आज की उस स्त्री का स्वर है जिसे हर हालात में आगे ही देखना है, लक्ष्य को पाना है, हर कदम पर विषमताएं मिलती है, विपरीत परिस्थितियां मिलती है, आंधड और झाड़–झंखाड़ उसका रास्ता रोकते हैं, उसके मनोबल को पल–पल परास्त करने के लिए मानो षडयंत्र रचे जाते हैं किन्तु इन कहानियों की स्त्री के पास दृढ़ निश्चय है और आत्मिक शक्ति भी। झूझने और विजयी होने को उसने नियति बना लिया है। रूढ़ मानदंड, गले–सड़े रिवाज उसके लिए व्यर्थ है। अपने निर्णय लेना उसे आता है और यही उसकी शक्ति है, जीवन है, चेतना है। इन कहानियों में समाया दर्शन पाश्चात्य नारी विमर्श की देन नहीं है। यहां सजग आत्म चेता, अत्याधुनिक, बौद्धिक, शिक्षित भारतीय स्त्री का मनोविज्ञान, संघर्ष और विजय यात्रा है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. *डॉ. मालती के.एम., स्त्री विमर्श : भारतीय परिप्रेक्ष्य (नई दिल्ली : वाणी प्रकाशन), प्रथम संस्करण, 2010 (भूमिका से)*
2. *डॉ. मधु सन्धु, नियति और अन्य कहानियाँ, स्वप्नदाह, (दिल्ली : शब्द संसार प्रकाशन, 2001), पृ. 63*
3. *डॉ. मधु सन्धु, नियति और अन्य कहानियाँ, स्वप्नदाह, (दिल्ली : शब्द संसार प्रकाशन, 2001), पृ. 64*
4. *डॉ. मधु सन्धु, नियति और अन्य कहानियाँ, स्वप्नदाह, (दिल्ली : शब्द संसार प्रकाशन, 2001), पृ. 66*
5. *डॉ. मधु सन्धु, नियति और अन्य कहानियाँ, पांव तले की जमीन, .दिल्ली : शब्द संसार प्रकाशन, 2001), पृ. 89*
6. *डॉ. मधु सन्धु, नियति और अन्य कहानियाँ, पांव तले की जमीन, (दिल्ली : शब्द संसार प्रकाशन, 2001), पृ. 89*
7. *डॉ. मधु सन्धु, नियति और अन्य कहानियाँ, पांव तले की जमीन, (दिल्ली : शब्द संसार प्रकाशन, 2001), पृ. 90*
8. *डॉ. मधु सन्धु, नियति और अन्य कहानियाँ, पांव तले की जमीन, (दिल्ली : शब्द संसार प्रकाशन, 2001), पृ. 92*
9. *डॉ. मधु सन्धु, नियति और अन्य कहानियाँ, पांव तले की जमीन, (दिल्ली : शब्द संसार प्रकाशन, 2001), पृ. 92*
10. *डॉ. मधु सन्धु, नियति और अन्य कहानियाँ, निर्णय, (दिल्ली : शब्द संसार प्रकाशन, 2001), पृ. 84*
11. *डॉ. मधु सन्धु, नियति और अन्य कहानियाँ, निर्णय, (दिल्ली : शब्द संसार प्रकाशन, 2001), पृ. 84*
12. *डॉ. मधु सन्धु, नियति और अन्य कहानियाँ, निर्णय, (दिल्ली : शब्द संसार प्रकाशन, 2001), पृ. 86*
13. *डॉ. मधु सन्धु, नियति और अन्य कहानियाँ, निर्णय, (दिल्ली : शब्द संसार प्रकाशन, 2001), पृ. 87*
14. *डॉ. मधु सन्धु, नियति और अन्य कहानियाँ, एक और छिन्नमस्ता, (दिल्ली : शब्द संसार प्रकाशन, 2001), पृ. 93*

15. डॉ. मधु सन्धु, नियति और अन्य कहानियाँ, एक और छिन्नमस्ता, (दिल्ली : शब्द संसार प्रकाशन, 2001), पृ. 93
16. डॉ. मधु सन्धु, नियति और अन्य कहानियाँ, एक और छिन्नमस्ता, (दिल्ली : शब्द संसार प्रकाशन, 2001), पृ. 93
17. डॉ. मधु सन्धु, नियति और अन्य कहानियाँ, एक और छिन्नमस्ता, (दिल्ली : शब्द संसार प्रकाशन, 2001), पृ. 96
18. डॉ. मधु सन्धु, नियति और अन्य कहानियाँ, एक और छिन्नमस्ता, (दिल्ली : शब्द संसार प्रकाशन, 2001), पृ. 96
19. डॉ. मधु सन्धु, नियति और अन्य कहानियाँ, एक और छिन्नमस्ता, (दिल्ली : शब्द संसार प्रकाशन, 2001), पृ. 96
20. डॉ. मधु सन्धु, नियति और अन्य कहानियाँ, एक और छिन्नमस्ता, (दिल्ली : शब्द संसार प्रकाशन, 2001), पृ. 96

Nazir as Builders of Water Reservoirs

Prof. S. P. Vyas
Senior Research Fellow, ICHR, New Delhi

shodhshree@gmail.com

Abstract

The Mughal maintained a well-organized Harem. The Harems comprised an integral part of the mughal's household and its establishment and maintenance used to cost the Mughal a consideration amount of monetary expenses. Each Mughal emperor had several wives, all these women being daughters of aristocrats. These aristocratic women felt happy to spend their lives in seclusion and so slave men, slave girls and eunuches were employed to look after them and later for their personal needs and services. Nazir were an important institution of the medieval Muslim world, a harem without them was inconceivable. In medieval India they were known as Khawajasara and were appointed on guard duty in the seraglio. The senior eucuchs or khwajasara were called Nazirs. Each of these had a number of other eunuchs under him. Their cader was hierarchical. They were a social marginalized group of people who are considered to be beyond the social classification of the First Gender (Men) and the Second Gender (Women) i.e. the Third gender. Nazirs, the comptrollers of the Harem, they were also great builders. In Marwar, the rules of Zenani Dyodi were framed by Bhati Govinddas, in the time of Maharaja Sursingh. The Sardar, Mustasids, khawas were forbidden to enter the the female apartments. The First Nazir was appointed in the Zenani dyodi in Marwar in 1668 (V.S. 1725). There are a number of Persian records, account of foreign travelers, inscriptional evidences, regional archival materials as Bahis, Khyats, Bats, Vigat etc., which give us an account of the Nazirs, their role and their activities. Nazirs of Marwar constructed several water reserviores, A survey of these water bodies, therefore, introduces us not only to the architectural fineness, but also to the water conservation efforts of rulers, common people and Nazirs, a socially marginalized group of people. The traditional water sources which are fulfilling the needs of this historical city should be revived so that the future problems of the shortage of water to the city may be solved.

Keywords: *Nazir, Khoja, Khwajasara ,Mahalsara, Harem, Seraglio, Stepwell, Ponds, Wells, Nadi, Talab.*

The Mughal maintained a well-organized Harem. The Harems Comprised an integral part of the mughal's household and its establishment and maintenance used to cost the Mughal a consideration amount of monetary expenses.

Each Mughal emperor had several wives, all these women being daughters of aristocrats. These aristocratic women felt happy to spend their lives in seclusion and so slave men, slave girls and eunuches were employed to look after them and later for their personal needs and services. The European author Joha Fryer has described them as follow-"..... toothless old women and beardless eunuchs. They also

wait on ladies to hand them necessaries as food, water, meat and they like taking them at the door, as to prevent unlawful intruders.[1]

Nazir were an important institution of the medieval Muslim world, a harem without them was inconceivable. In medieval India they were known as Khawajasara and were appointed on guard duty in the seraglio. The senior eucuchs or khwajasara were called Nazirs. Each of these had a number of other eunuchs under him. Their cader was hierarchical. According to Manucci, "there is always on set above the rest who directs and looks after everything that goes on in the mahal".[2] They were a social marginalized group of people who are considered to be beyond the social classification of the First Gender (Men) and the Second Gender (Women) i.e. the Third gender. Their social position, Socio-economic problems, political-human rights have never been discussed. This group of humans is considered a social outcaste, whose presence is auspicious, but existence negligible. This class had proved itself as faithful and truhworthy mates of ruler of Medieval India. Many Nazirs rose to the position of Mansabdars, commanders of armies and governors of Subhadars. Not only were the Nazirs, the comtrollers of the Harem, they were also great builders. In marwar, the rules of Zenani Dyodi were framed by Bhati Govinddas, in the time of Maharaja Sursingh. The Sardar, Mustasids, khawas were forbidden to enter the the female apartments. The First Nazir was appointed in the Zenani dyodi in Marwar in 1668 (V.S. 1725).[3] There are a number of Persian records, account of foreign travelers, inscriptional evidences, regional archival materials as Bahis, Khyats, Bats, Vigat etc., which give us an account of the Nazirs, their role and their activities.Nazirs of Marwar constructed several water reserviores, which point towards their awareness and environment consoiousness.

At Bakhtawarpura the noble eunuch Bakhtawar Khan a nobleman of Auranzeb's court built a big tank for the poorer section of the society. He also built many wells and tanks nearby.[4] One eunuch Javed Khan was a great builder. He not only built one building along side river (Yamuna) and 'Matin-i-Masjid' but also a huge stepwell in Haideganj.[5] Panna Main ki Baori is a step well, located on Jaipur-Amber road and 30 feet deep, was constructed by Nazir Panna Mian during the reign of Mirza Raja Jai Singh in 17th century.[6] Panna Mian ki Baori is an ancient example of to do water harvesting and management system. In water scarce places like Rajasthan, it was a very important and crucial construction. The step well is ornamented. This step well has criss-cross steps arranged on three sides with small nichas created into the walls. The fourth side has a multi strayed balcony. The eighth storey steep well remains cool during the hoit summer afternoon and was probably used for the purpose of community gatherings. The step well has many doorways on all sides. This architectural wonder is made in such a way that the same stairs can not be used to climb up and down. Once you are down with trying this out, you can sit on the niches and take in the beauty of this step well. It seems that the water from this step well must have been used for irrigation also and drinking purpose. Ramps have been built to ensure drinking facilities for cattle.

- The famous Chand Baori (Step-well) of Jodhpur was constructed under the supervision of Nazir Chauhana Buhan, is noted in the inscription of the said Baori[7]. It is an 'L' shape baori with poles and pavilions on the turn. The poles are two Storey (gateways) high. According to the residents of the 'Mohalla' the water of the baori is good and tastey and of better quality. In early times the water used for religious purpose. The water of this baori is chiefly used by Pushkarana Brahmin men and women for bathing before and after funeral. This Baori served as resting place and community gatherings as well as a cool place to rest in to expect from the heat and dust of region. The

epicenter of the Baori ,or 'Koriya', is a circular-cylindrical shape, which collects water from the water-vines running under nelth. The Koriya is ornamented with 'Gomukhs' and other images. Previously, the water was use of consecration of Gods.

➢ Another step-well which is famous as 'Nazir ji Ki Baori' was constructed by Nazir Daulatram during the reign of Abhaysingh in V.S. 1841 i.e. (1784 A.D.)[8]. The entrance gate is quite an imposing one. It possessed a multifoliated arch resting on pillars. The baori is said to be of seven storyes. When well is flooded only the column capitals show above the water. Local residents insist the buildings and its columns are more pristine below the water line then above. The vista of stairs that melt into the water is a primary source of the step-wells misting when the water hides the ledges that connects them, the pavilions become a series of separate towers since step-wells depend on hidden water table, they make an underground aquifer. Situated presently in the Mahila Bagh area, it has been termed as 'Nazir ji Ki Duji Baori' by Muhnot Nainsi in the "Marwad Ra Paragana Ri Vigat"[9]. It is rectangular in shape, about 300 feet long and 40 feet broad, with steps loading into it for about 80 or 100 feet. Supported on pillars and pointed arches, the first two having only one storey and the third, fourth, fifth and the last – two, three, four and five storeys respectively. The roofs of the pols are connected by balconies or ledges, wide enough for a person, to reach the next pavilion. The building material is of red-sandstone popularly known as 'Ghatu ka Bhata'[10].

➢ The step-well situated in the Jalorigate, also known as 'Nazir ji Ki Baori' was built by Nazir Aandram during the reign of Bhimsingh[11]. It is besides the famous Temple of Narsinghji. It is a similar structure to that of the Nazir ji Ki Baori, which has been described above. The structure is simple and strong, made of red sandstone. The Gistern or the well, popularly known 'Koriya' is octagonal, with an 'Arahat' or Persian wheel fitted[12] above to draw water. Its water is still being used by the water-works department for public use.

➢ Several wells, locally called as 'Bera', were also built by the Nazirs for public utility and water-conservation. Nazir Harkaran has several wells to his credit. He constructed one well in the temple, erected in the memory of his guru Lal baba, the well is popularly known as Nazir ji re Mandir ro Vera. Other wells dug by Harkaran were outside the Nagaurigate[13]. Some wells were also repaired by him[14].

➢ We have references of Nazirs, who were Muslims. A Baori or Step-well was constructed by Nazir Almas Beg. It is called as 'Almas Beg ri Baori'. Detail account could not be established. Khoja Farasat was the Dewan, in the time of Maharaja Jashwant Singh I. He was a great builder. He reconstructed one step-well near the fort of Jaore, which was previously known as Jogi ri Vav, now termed as 'Farasat Vav'[15]. He also constructed one Baori in the Lake of Kaylana.

➢ Small reservoirs and large reservoirs – Nadi[16] and Talabs[17] were also constructed by the Nazirs. Kayalana, one of the largest water reservoir of Western Rajasthan in present day, had been constructed and re-constructed many a times under the supervision of several Nazirs – One Salagram initiated the expansion of this lake – कायलाणो नाजर सालगराम हस्ते तालाब भारी बंदायो।[18]

Nazir Basant constructed the famous 'Basant-Sagar', in the Mehrangarh fort[19]. He identifies the water collection area, and then constructed the lake. Nazir Harkaran constructed the Lal-Sagar lake, which still is a major source of drinking water, for the people of Surpura. He also expanded the water-intake capacity of Kaylana lake.

Khoja Farasat has several lakes to his credit. Farasat Sagar (presently non-existent in Umaid Chowk), was made by him. He reconstructed the lake Nimbasar near the wall of the fort, which was initially constructed by Rao Maldeo. The

lake now could not retain water for more than 6 months. Khoja Farasat called experts from Merta and was advised to dig 210 fast deep to retain water[20].

A survey of these water bodies, therefore, introduces us not only to the architectural fineness, but also to the water conservation efforts of rulers, common people and Nazirs, a socially marginalized group of people. The traditional water sources which are fulfilling the needs of this historical city should be revived so that the future problems of the shortage of water to the city may be solved.

References

1. *John Fryer, A new account of East-Indian and Persia being nine years travels, London, 1909 Vol. I, P.328*
2. *Manucci. II, P. 350*
3. *Dastur Bahi, P. 7, Maharaja Mansingh Pustak Pratak Prakashan, Jodhpur*
4. *Shaikh Muhammad Baga, Mirat-al-Alam, M.S.K.B.K. Library, Patna, ff251a*
5. *Gulam Ali, Imad-us-sahadat, Vol.1, P.26*
6. *Step to water, The Ancient Stepwells of India Morna Livingston, Princeton Architectural Press, Nweyork P.113*
7. *Inscription on Chand Baori as studied by me during the physical survey. The inscription says: महाराजा श्री बिजैसिंघ जी रै नाजर दरबारी बुहान बावड़ी रो पठौ ले ……."*
8. *Bhandari Kishan Mal-Re-Bahi-ri-Nakal – Book No. 15634 P. 40 (b) Rajasthan Oriental Research Institute, Jodhpur.*
9. *Muhnot Nainsi, Marwar-ra-Pargana –ri-Vigat, P 589, Vol I. Book No 101, Rajashtani Research Institute, Jodhpur 1965*
10. *1 bid, P. 572*
11. *Book No 15644, जालोरी दरवाजा माहे बावड़ी अणदराम नाजर कराई*
12. *Arhat or Persian wheel was made of wood. The device consisted of a chain of buckets or earthen pots or 'Ghadalis'. This chain was mounted on a drum and was submerged in the water to sufficient depth. Average discharge of Persian wheel is about 10000 liters per hour from a depth of line Meter with one pair of bullocks.*
13. *Muhnot Nainsi, Marwar- ra- Pargana ri Vigat, P. 576*
14. *I bid, वेरा तो आगला था तिणा री मरम्मत कराई।*
15. *I bid, P 589*
16. *Nadis are village ponds that store rainwater collected from adjoining natural catchment ares. The location of a nadi has strong bearing on its storage capacity and hence the site of a Nadi is chosen after careful deliberation of its catchment and runoff characteristics.*
17. *Tolab is reservoirs that store water for house hold consumption and drinking purposes. They may be natural or manmade.*
18. *Nainsi, P 577*
19. *बसन्त सागर नाजर बसन्त बधायों – पेला माखरो थे चौगाल रह वानी तरफ मारवार माये गढ़ ऊपर*
20. *Muhnot Nainsi, Marwar Pargana ri Vigat, P. 580*

Signs and Symbols in Rock Art

Virendra Sharma
Assistant Professor, Government Girls' College, Ajmer

shodhshree@gmail.com

Abstract

Figurers and symbols made by earlier men in their living shelters denotes his creativity of mind and thoughts. It were the experiences of that man ,who faced in his day today life and want to share with all members who living together. It shows the development of primitive society which were raising slowly all around the world. Pictures of knowing things are subject to their views but somewhere unknown things were made by that men. It is the mystery for researchers because we are sometimes unable to find exactly meaning of that, but in general there are lots of figure told about their contemporary environment.

Keywords *: Food Gathering, Hunting, Experiences, Animals, Rituals, Neolithic, Archaeological Findings, Composition.*

The human need to find food for eating. The first human communities needed skilled hunters and hunting became a more and more complex action, or even series of joint actions. Cooperation in hunting became common and important in order to have enough food. The same happened in gathering too. In order to get food they became acquainted with a great number of edible plants. An important social function which made the individuals mature for the daily fight for survival and made them more willing endure to pain, tiredness, hunger, etc. They started to live in natural shelters near river banks for their protection. In free time, the man started make some figures on the walls of living shelters' to express their emotions and experiences . Images of rock art intended to communicate (or to mean) something. it is precisely the clear usage of the sign which we deem as an important cultural historical record. To put it simply, before the hunt they drew the animal they were to hunt and then the sign of the weapon in its body (spear or arrow).

The hard work of engraving the rock of the hunting action was seen as a magic activity and at the same time it had the more ordinary function too, of communicating the practical experience of hunting to the younger generation. This usually took the form of orders in the language of pictures whether about hunting methods or about the making of a flint-spade, tradition had an extraordinary important role in material production which was filled with ritual-folklore semantic.

If we look carefully the features of the Neolithic rock art ,that is the depiction of animals and hunting scene. This art is seems typified by a lively realism. but in the Bronze age , the completely new method of images occur into existence. The meaning of the earlier figures was obscured and the early images were

used as signs, and symbols. However the analysis of the symbols of that period, an attempt to prise open their meanings raises a number of difficulties.

Mankind in the use of signs developed various types of signs successively, which was not along a simplified line of development. In other words the "invention" of the symbol can be traced back to a much earlier age than the Neolithic. Palaeolithic "realism", which includes some really marvellously faithful "drawings" in the cave paintings, can not be placed in direct contrast to the use of simple graphic signs, since in the cave arts a whole range of symbolic representations can be found. The most important of which is the hunting magic. The latest research testifies to the clear existence of sign systems the "invention" of sign systems by the early Paleolithic period.

Okladnikov and Martinov state that Siberian rock drawings used many signs which they inherited from their ancestors. They are concerned with the use of symbols at the end of the Paleolithic age and the first appearance of recognisable pictograms in the Russia on the basis of archaeological findings. He revealed scratching that recall fish shapes on the smallest objects. He believes that these drawings should not be seen as artistic activity but as part of a cognitive process . This led man to recognise the motif-character of simple zig-zag lines, and later for example that the repetition of the seasons could be well illustrated with the help of such signs. These scratching could be, according to these hypotheses, a record of the first prehistoric calendar. The common method of perception, the conscious use of symbol, the identified motifs and the repeated movements lead to the development of an ability for abstraction, and over a long period, to the formation of cave painting and rock art in Siberia.

At the same time symbolic signs were an important step in the development of human ability, the creation of symbols is one of the proofs of the capacity for abstract thought. The conscious use of signs is an important point in the intellectual development of human beings. The possibility for a semiotic interpretation emerged based on the obvious concept that the rock drawings at the time they were made are signs which, want to communicate, wish to notify something to other people, to the members of the community.

There is another approach which also contributes to the explanation of the formation of the early use of signs. Neolithic man and his ancestors and hunter successors even to today met every day with signs in their most simple form, the foot prints of the animals they were hunting. In the language of semiotics this sign type's known as an index, that is a sign which was immediately connected or connects with the sign object, namely the footprints signifies the animal itself. Naturally this goes further, these traces have extraordinary characteristics, that is they bear information about the animal to those who know how to read them (for example the weight, sex, size and age of the animal). This simple group of signs were of great iconic importance, which contributed to a great extent to the formation of sign usage, and to the recognition of the iconic character of signs.

The appearance of footprints or elsewhere handprints or drawings representing them in the rock art possibly has a magical significance too, however, that is better to see them as the development of man's cognitive capabilities . In terms of semiotics the sign is more iconic – that is, it is similar to the object in at least some details – but it has broken away from it. That is, not the whole figure is depicted but just a detail, the form or a print of a hand. This type of sign is half way to being a symbol – in other words an arbitrarily selected symbol. That this truly came about at the end of the Neolithic period, the transition period to the metal age (that is at the

turn of the first millennium B. C.) as Okladnikov and Martinov believe, but it is yet to be confirmed. According to Marge E. Landsberg's nicely condensed definition:

"The term 'semiotics' refers to the scientific analysis of signalling systems, that is, the study of signs and sign-using behaviour; the term 'language'refers to any strictly human communicative system, including speech ,gesture and writing.

According to Peirce, an icon is a non arbitrary intentional sign, a designation which is to a significant degree representational of, has some degree of isomorphism with, or bears an intrinsic resemblance to the object it designates.

The issue is multi-faceted as Andre Leroi-Gourhan the great French scholar of Western European cave art, revealed during his investigation of Franco-Cantabrian cave art. He showed that even more than twenty thousand years B. C. simple drawings appeared in addition to figural or realistic images that can be understood as signs. These include ones which are unambiguous icons of female or male features. Their meaning is clear on the one hand coming from their iconic character of the signs and on the other from the pictorial environment in which they appeared. In all cases the results is so-called realistic (iconic) and symbolic art developed together.

Apart from the earlier mentioned indexes (eg. foot print) the signs which are based on the similarity between the sign and the sign object are iconic, while the third main sign type: the symbolic are made up of completely arbitrarily selected signs, and the use of which established a preliminary (tacit) agreement among the members of the community. Clearly this supposes the most developed and conscious use of signs. This all means that this knowledge came to humanity very early. So for example the symbolic scenes of reproduction – recognisable precisely because of their iconic features – were drawn very early. With the help of these signs they believed they could ensure fertility and animal proliferation. We can say that the people of prehistory were not just "naive" materialists but conscious sign using social beings. Examining the rock paintings of the late stone age about the symbol usage of Paleolithic man as if they were the beginning of the appearance of poetic symbols. The emergence of the sun sign ,which is everywhere circle shaped and its connection with other depictions is the first obvious clue that its objective was to mediate some sort of more complicated message .

The entire composition of significance, the individual figures and signs can mean many different things that is why it is probable that the symbol group bore a comprehensible or perceptible meanings.

This is the beginning of art and at the same time language, and the period of myths and the formulation of religious concepts. These are messages from other cultures, other worlds, and we know nothing of the artists' original intentions or the transformations in meanings that the art has undergone, so light a candle than to curse the darkness, what one can certainly do is to put forward observations, interpretations, and hypotheses about the images, which can be evaluated and eventually discarded when something better comes along. There are many keys, and prehistoric art cannot be encompassed by any grand, unifying theory. Sites with rock art were probably of all kinds – the equivalent of dwellings, churches, shrines, playgrounds, schools, libraries, clubs, and meeting places. Rock art is not necessarily all sacred and mysterious. Some of it may be games or a celebration of life, narratives, or territorial boundaries. Even within the realm of the spiritual or religious, the art may have had a wide range of significance including tribal stories, myths of creation and renewal, sacred beings, rites of passage such as puberty, death, and rebirth, tribal secrets, laws, taboos, love,

sorcery and transformation, prayers for rain and fertility, astronomical markers, and animal totems"

System of symbol usage on Scandinavian rock drawings is an important historical source which can give clues to the "conceptual world" of the society at that time.It would perhaps be better to label the whole cultural phenomena as the symbol creating behaviour, because then it is possible to understand the meaning of individual symbols, while here the meaning of the myth is condensed.

References

1. *Valcamonica – In an Italian Valley, the World's Largest Gallery of Prehistoric Rock Art.1980 The Unesco Courier.*
2. *Artamonov, M. (ed.) The Dawn of Art: Paleolithic, Neolithic, Bronz Age and Iron Age Remains Found in the Territory of the Soviet Union. Leningrad: Aurora. Austin, J. L.1974*
3. *How to Do Things with Words. Oxford: Oxford University Press.1962*
4. *The Cambridge Illustrated History of Prehistoric Art. Cambridge: Cambridge Univ. Press.1998*
5. *Bednarik, R. G. The Discrimination of Rock Marking. Rock Art Research 1994*
6. *Chippindale, C. – Tacon, P. (eds.) The archaeology of rock art. Cambridge: Cambridge University Press.1998*
7. *Donald, M.Origins of the Modern Mind. Three stages in the Evolution of Culture and*
8. *Cognition. Cambridge Massachussets – London: Harvard University Press.1993*
9. *The Anthropology of Art. Cambridge: Cambridge University Press.1991*

Climate Change and Gender Equality: Women's Vulnerability and Adaptation towards Climate Change

Dr. Shalini Chaturvedi
Associate Professor, University of Rajasthan, Jaipur

Rahul Verma
Research Scholar, University of Rajasthan, Jaipur

shodhshree@gmail.com

Abstract

Climate change is a defining challenge of our time. The harmful effects of climate change will most acutely affect developing countries. Climate change exhibits a gendered element. Women and children, especially girl child, are most likely to suffer the adverse effects of the changing climate. Risks associated with climate change threaten to reinforce gender inequalities and even erode progress that has been made towards gender equality in many developing countries. This can lead to unfortunate consequences for all, as women play a unique role in the stewardship of natural resources and support to households and communities. Women are powerful agents of change and their leadership is essential. Their participation is vital for sustainable development and climate change adaptation.

Keywords: *Gender Mainstreaming, Sustainable Development, SEWA, Clean Development Mechanism.*

Climate change is a change in the statistical distribution of weather patterns when that change lasts for an extended period of time (i.e., decades to millions of years). Climate change may refer to a change in average weather conditions, or in the time variation of weather within the context of longer-term average conditions. Climate change is caused by factors such as biotic processes, variations in solar radiation received by earth, plate tectonics, and volcanic eruptions. Certain human activities have been identified as primary causes of ongoing climate change, often referred to as global warming.

Climate is all weather occurring over a long period of time in a given place. Climate includes: average weather conditions; regular weather seasons; and special weather events, such as cyclones and floods. Scientists agree that the earth's climate is now changing due to global warming. Global warming is the rise in the average temperature of the Earth's atmosphere and oceans caused by unsustainable human activity. Global warming is the cause of current observed changes in climate.

What is Gender Equality?

Gender describes the characteristics associated with being male or female. These attributes, opportunities and relationships are socially constructed and are learned behaviors, influenced not only by our biological sex, but predominantly by the society we live in. Gender is part of the broader socio-cultural context and therefore varies over different cultures and time periods. Gender equality means that women and men have equal value, rights, and opportunities to participate in every aspect of life, at every level of society. Equality does not mean that men and women will become the same, but that

women's and men's rights, responsibilities and opportunities will not depend on whether they are born male or female. Gender equality means that the interests, needs and priorities of both men and women are taken into consideration, recognizing the diversity of different groups of women and men.

Climate Change and Gender – The Linkages

Climate change is a multiplier of environmental changes and has major impacts on the lives of women and men. These impacts and consequences are not gender-neutral. Women and men have different needs, priorities and possibilities of decreasing the effect of the impact and adapting to climate change. Therefore policies on climate change and actions taken can be more effective and enhance equality if they take into account gender aspects.

Development-policy issues, particularly gender equality aspects, have long been ignored by the climate discourse. Gender equality has been paid increasing attention only since the publication of the UNDP report and that of the Intergovernmental Panel on Climate Change (IPCC) in 2007. This is surprising as the consequences of climate change are by no means gender-neutral. The gender dimension in climate change comprises primarily two aspects: women, particularly in developing countries, are more vulnerable than men to the consequences of climate change (higher vulnerability); second, men and women play different roles in dealing with climate change, whereby women are major actors in several areas of mitigation and adaptation. Women are the agents of change.

Gender-Specific Impact

The poor social groups bear the brunt of climate change not only because they are more dependent on natural resources, but also because they lack the requisite capacity to adapt to climate change. About two-thirds of the world's population living in poverty is women, which underlines their greater vulnerability to the changing climate. The differential impact of climate change on women and men is due to social norms, traditional roles and different power structures.

Women are usually responsible for providing the family with its basic nutrition, yet they rarely have access to and control over the resources required to fulfill this task when cultivation conditions deteriorate. Hence climate-induced crop failure also puts the food security of the entire population at risk. Studies have shown that women and children are 14 times more likely to lose their lives in a natural disaster. In the aftermath of natural disasters, the lack of ownership titles poses an enormous problem to women, as they are denied the right to buy a new plot of land should they have to resettle. Moreover, after a disaster, women face a heavier workload involving clean-up work, subsistence activities and nursing the sick. Consequently, not only are they left with virtually no time for income-generating activities, but they also run the risk of being exhausted and overworked. Given that women are frequently discriminated against in the distribution of resources such as food or medicine, as it is the risk of them falling ill is higher than that of men and, because of economic or cultural constraints, they are often denied access to medical facilities. Climate change also increases the frequency of heat waves and other adverse weather conditions, resulting in a higher incidence of disease; rising temperatures encourage the spread of infectious diseases such as malaria or dengue fever. In post-disaster situations, there is also a greater danger of women becoming victims of sexual violence. Climate change and its impact on the income security for the family increase the potential for domestic violence, as it shatters the image of the man as bread-winner, which can cause psychological stress.

Gender-Specific Adaptation

With regard to climate adaptation, it should be noted that women often do not have much of a say in decisions taken by the family or the community and are therefore unable to diversify cultivation. Furthermore, it is usually women who are responsible for collecting water and fuel (e.g., firewood) for the household. The scarcity of these resources induced by climate change increases a woman's workload. She is consequently left with no time for income-generating activities, education, training or participation in community decision making processes. In overall terms, climate change intensifies the existing economic and social gender disparities.

It is generally recognized that women are major actors in mitigation and adaptation measures and their role in adaptation measures in developing countries is often highlighted. Women play a particularly significant role in ensuring a family's food security. They shoulder the responsibility for this activity, have extensive knowledge about their natural surroundings, and are at the forefront in the conservation and selection of seeds of different crops. In many areas women are already adapting to the fallout of climate change and are fully aware of where their own needs and those of their families lie. Greater decision-making powers for women at the family and community level with regard to agricultural cultivation and the farming of new and more resistant crops could increase agricultural production, leading to greater food security, the production and marketing of surpluses, and ultimately to a source of income.

Gender-Specific Mitigation

The role of women in mitigation measures should not be under-estimated. Developing countries have the potential to reduce or store greenhouse gases, particularly in areas in which women are already active. Thus providing energy for the household is usually a woman's job and she often resorts to the energy-inefficient open burning of biomass, e.g., firewood. The use of efficient energy systems at the household level (e.g., special cooking stoves and ovens) could reduce emissions and harness the potential of women as actors for mitigation measures. Women worldwide are also involved in natural resource and forest conservation. The forests supply women with vital products and are used not just to gather firewood, but also to obtain other raw materials, food or medicinal plants to provide for their families and to boost their income.

Women therefore contribute directly to climate mitigation. Given their significant role in mitigation and adaptation efforts, it is imperative that women be involved in the relevant measures. Climate change manifests itself in a variety of ways; rapid-onset events may destroy property, lives, and livelihoods in a single day, while slow-onset processes change the landscape for survival gradually over time. These are not disparate processes. Both rapid-onset and slow-onset climate change impacts are occurring at the same time, and these impacts are interrelated, creating a cycle of vulnerability for women.

Flooding And Sea Level Rise- The rise in sea level and flooding can destroy crop production and cause sanitation problems, which seriously affect women's ability to provide resources for themselves and their families. Projections by the Intergovernmental Panel on Climate Change indicate that during the twenty first century, global warming will continue and will accelerate, estimating a temperature increase of three degrees Celsius by 2100. Increasing temperatures intensify the hydrologic cycle, causing dry regions to become drier and wet regions to become wetter.

Deforestation and Ocean Acidification- Individuals and communities around the world rely on natural resources found in forests and coastal areas for subsistence and shelter.

Forests and coral reefs provide food, water, and medicinal and cultural resources, and their destruction threatens the livelihoods and health of the communities that depend on those materials. Forests and coral reefs serve similar roles for communities who depend on the resources found in these natural environments, providing foundational support for entire regions. As these resources diminish, food insecurity and livelihood instability grow. Women often serve as the managers of household resources, and their burdens are likely to become significantly heavier as they must find new sources of food and resources to support their families, travelling farther and spending more time addressing the resources scarcity.

Ocean Acidification- It refers to changes in ocean chemistry that occur as a result of carbon dioxide (CO2) emissions. The oceans absorb about one quarter of the carbon dioxide released into the atmosphere every year. The CO2 absorbed by the oceans makes sea water more acidic, interfering with the formation of the hard parts of corals and some shellfish, which destroys tropical reefs. Tropical reefs support an estimated 25 percent of marine fish species, and provide food and livelihood for nearly 500 million people worldwide. Both deforestation and ocean acidification severely damage livelihoods, and threaten the ability of families and communities to provide for them. As the food, water, and other resources in forests and coastal areas decline, individuals - usually women - must find new ways to gather the resources necessary for survival.

Water Scarcity- Climate change negatively impacts water supplies around the world. Changes in temperature patterns, rainfall, solar radiation, and winds are increasing the desertification of land. Prolonged periods without adequate rainfall cause droughts, which then result in a shortage of water. In Latin America, for example, severe water shortage problems have already been identified in Bolivia, Colombia, Ecuador, and Peru. Additionally, the combination of higher temperatures and lack of water in the soil can decrease crop productivity. It is projected that tropical forests, especially in South America, will be replaced by savannas if there is an increase in regional temperatures by one to two degrees Celsius. Water scarcity can also lead to the depletion of crops and deterioration of soil properties. The impacts of desertification and drought can include the loss of livelihoods and the displacement of populations from one degraded ecosystem zone to another. For example, desertification of pastoral lands causes the death of livestock used to till the fields and forces those communities to find other mechanisms for tilling their land, which inevitably affects farming outputs.

Access to Clean Water - Lack of access to clean drinking water also disproportionately impacts women. In many communities around the world where dependable irrigation is a distant dream and clean water a precious commodity, women and girls bear the primary burden of finding water. What they are able to carry on their heads and shoulders is then rationed carefully for drinking, cooking, cleaning and other basic needs. Globally, women and children collectively spend 140 million hours per day collecting water for their families and communities, resulting in lost productive potential. This is time not spent working at income-generating jobs, caring for family members, or attending school. In sub-Saharan Africa, women and girls collectively spend a total of 40 billion hours per year collecting water for their households. Traveling long distances to search for water, especially in remote areas, also increases the risk of sexual violence for women and girls. Facilitating better access to clean water can not only help reduce the incidence of rape and abduction, but also help fulfill the productive potential of women previously lost of water collection, which could

instead be realized in educational attainment and economic participation.

Health and Sanitation- In 2015, more people are likely to have access to a mobile phone than a toilet. Modern sanitation and hygiene facilities remain rare throughout most developing countries, especially among the urban and rural poor. Water scarcity compromises hygiene, particularly for women and girls, who may need it for purposes uncommon to men, especially during pregnancy and menstruation. Lack of adequate access to safe water and sanitation is a key factor in maternal and child mortality, and is dramatically more pronounced in rural settings susceptible to the effects of climate change.

Climate-Related Migration & Displacement- Climate change will markedly affect the security and livelihoods of people around the world. In the hope of finding safer environments, more stable economic opportunities, and long-term adaptation solutions, individuals and families will move, whether voluntarily, displaced forcibly by the impacts of climate change, or as part of planned relocation. As the world becomes more mobile, it is important to understand the impacts that these different types of migration will have on women. The decision to move is influenced by many factors, and climate change-related vulnerabilities may only be one determinant of this choice. It is difficult to isolate a single cause of displacement. The economic, political, and social factors of a specific case shape the decision to migrate, in combination with environmental factors. It is important to consider these determinants, as political decisions may have exacerbated or mitigated the environmental situation, and thus the decision to migrate. In other cases, it is not a choice at all, as governments may pressure communities to move before they are affected by climate change, or some individuals may become trapped and cannot leave an area.

Women's Vulnerability to Climate Change

Climate change is not happening in isolation, but is coinciding with many other trends and stresses on livelihoods, including economic liberalization, globalization, population growth, geopolitical conflict, and unpredictable government policies. As stated above, women are vulnerable not because of natural weakness, but rather because of the socially and culturally constructed roles given to them as women. Given the severity of gender inequality, particularly in the developing world, climate change is likely only to magnify existing patterns of gender disadvantage. Several factors will exacerbate this:

Limited Access To Resources- In many poor communities, women have limited access to crucial resources such as land, livestock, tools, and credit. Access to land and security of tenure is often highlighted as an important cause of women's vulnerability. Women's access to land is gained either through the state, family (typically in Africa) or the market (typically in Asia). Often, women may have access to resources, such as land, but have limited control over it, as they do not own it and therefore cannot make decisions regarding its use. This is particularly ironic, given the central role of women in agriculture.

Dependence On Natural Resources And Sexual Division Of Labor- As the primary users and managers of natural resources, women depend on the resources most at risk from climate change. Projected climate changes such as increases in temperature and reductions in precipitation will change the availability of natural resources such as forests and fisheries and potentially affect the growth of staple crops.

Lack Of Education And Access To Information- In the developing world in particular, priority is still placed on boys' education rather than girls', and girls are thus likely to be the first ones pulled out of school when resources are short. As a result, girls typically receive fewer years of

education than boys. Without education, women are at a disadvantage, as they have less access to crucial information and fewer means to interpret that information. This can affect their ability to understand and to act on information concerning climate risks and adaptation measures. Limited educational opportunities also make it more difficult for women to gain formal, paid employment, further reinforcing their subordination relative to men.

Limited Mobility- Women are often restricted from leaving their communities, even though migration is a coping mechanism often used by men. This is due to the fact that gender roles dictate that they remain at home and carry out reproductive tasks and to the fact that, having less education, they are less likely than men to find employment. Remaining at home can leave them vulnerable in two ways: first, they stay where climate change has hit hard, and second, they miss out on the economic opportunities and enrichment of personal experience that migration affords.

Limited Roles In Decision Making- Women's voices are often muted in family and community decision making. This is particularly unfortunate, given women's close relationship with natural resources and awareness of conservation and potential adaptation measures.

Gendered Vulnerability to Disasters

Climate change projects significant changes in the frequency and magnitude of hazardous weather events, such as tropical cyclones and hurricanes. A substantial body of literature on the gendered nature of vulnerability to past hazards and disasters illuminates how women and men are differently affected. When disasters occur, more women die than men, which reflects women's social exclusion: they are less able than men to run, often have not learned to swim, and have behavioral restrictions that limit their mobility in the face of risk (not least of which is the fact that their voices often do not carry as much weight as men's in their households). On the other hand, some post-disaster analysis has shown that men suffer higher mortality rates because they take more risks trying to save themselves and their families. In the longer term rehabilitation and recovery phases after disasters, there are also gendered differences. Women and girls are particularly vulnerable in post-disaster situations, because they lack land and other assets that could help them cope. Therefore, they are more likely to face food shortages, sexual harassment, unwanted pregnancies, trafficking and vulnerability to diseases and could be forced to drop out of school or marry earlier. If gender is not taken into account, there is also a danger that post-disaster recovery grants will favor men over women, thus reinforcing gender inequalities. Nevertheless, there are gendered differences in adapting to disasters that equally apply for more incremental climate change.

Gender Dimensions of Climate Change Adaptation

In the same way that gendered roles lead to differences in vulnerability between men and women, they also create opportunities for adaptation. Women are not just victims of adverse climate effects due to their vulnerability; they are also key active agents of adaptation. This is due to their often deep understanding of their immediate environment, their experience in managing natural resources (water, forests, biodiversity and soil), and their involvement in climate sensitive work such as farming, forestry and fisheries. Women not only have roles as caregivers and nurturers, but also typically form strong social networks within their communities, thereby meeting a prerequisite for collective management of the risks posed by climate change. However, while their lives are typically closely tied up with natural resources,

women are usually excluded from decision-making processes and thus barred from contributing their unique expertise and knowledge to the struggle to adapt to climate change.

The collection of sex-disaggregated data about such issues is essential to highlight the differences between men and women and to ensure that adaptation options are gender-sensitive. If gender is overlooked in the planning of an adaptation intervention and women are not consulted, the measures may not be appropriate or sustainable. For example, women are often in charge of water management but, if they are not consulted about where to build new wells, the wells may be placed too far from the village, thereby actually increasing women's burdens. The combination of men's and women's knowledge and skills is key for designing and implementing effective and sustainable adaptation initiatives, answering to their specific needs and ensuring that both benefit equally from the development process. Since gender is a social and cultural construct, gender mainstreaming offers an opportunity to begin redefining this construct more equitably. But an approach that considers only women will not bring about this transformation: gender inequalities can be addressed effectively only if the rights, responsibilities and opportunities of both women and men are recognized and their priorities and needs considered. Thus, any effective approach to gender mainstreaming will address the situation of women and men as equal actors in the development process.

Combining Climate Change with The Economic Empowerment of Women

The discourse on climate policy is increasingly addressing the development dimension of climate change, not only because the effects of climate change can jeopardize the progress made by development, but also because mitigation and adaptation offer opportunities to both industrialized and developing countries. The latter, in particular, can benefit from the transfer of innovation, technology and funds within the scope of climate policy measures. Similarly, enhancing the economic empowerment of women is a catalyst for development, which helps boost a country's economic growth, promotes the socioeconomic development not only of women, but of the entire population, and helps reduce poverty.

Little has been done so far to address the gender-specific dimension of the climate problem. If the issue was considered at all in the discourse, the discussion has focused primarily on how women are particularly susceptible to climate change. While this is a part of the connection between climate and gender, the potential of and for women with regard to climate protection is rarely addressed. Yet mitigation or adaptation activities offer opportunities to advance the economic empowerment of women. In particular, this applies to work that is already being undertaken by women or activities in which women could assume a leading role. In developing countries, for instance, women frequently play a major role in the reforestation and afforestation of cleared land and in forest conservation. Yet they have hardly ever benefited from these environmental services, say in the form of payments for environmental services.

Similarly, the Clean Development Mechanism (CDM) defined in the Kyoto Protocol is a tool to promote emission reductions in developing countries. Small-scale projects in which the level of emission stored is low (compared with large industrial projects) could be included in Clean Development Mechanism; these would be projects in the agricultural sector, in food production, domestic energy generation, etc. This potential is, however, seldom tapped even though women could benefit from the transfer of technology, access to finances, etc., which

would contribute to their empowerment, to greater equality, the socioeconomic development in a particular society, and to climate protection. In other words, there is the potential, albeit largely untapped, to facilitate the integration of women's economic empowerment in mitigation and adaptation measures and thus be able to achieve several objectives simultaneously.

Gender main streaming can occur in a project that does not involve women, provided both sexes have participated in the process of problem identification and design. Gender main streaming does not entail that men and women necessarily have to contribute to a project in equal measure: men and women are not the same and should not be forced to be the same.

Programmes Promoting Gender Equality and Women's Rights

Natural Resource Conservation

Green Belt Movement

The Green Belt Movement is a Kenyan women's NGO that began to plant trees at the grassroots level in 1977 to tackle the problems of deforestation, soil erosion and water scarcity. The programme has since evolved into an instrument that facilitates the empowerment of women. It pursues a holistic approach, as trees (including fruit and other "commercial" trees) are planted by voluntary networks of women and their families. The participants are also trained in sustainable agriculture with the aim of diversifying their livelihoods and earning an income. They undergo comprehensive capacity building, e.g., in food production, processing and marketing, apiculture, and the planting and care of trees- activities that aim to empower women to generate an income of their own.

The programme makes an overall contribution to climate mitigation, as emissions are hindered and absorbed because existing trees are cared for and new ones planted. A contribution is also made to climate adaptation, as the communities learn about the sustainable use of scarce resources and about sustainable agricultural techniques. And finally, the Green Belt initiative also empowers women economically, as they now have alternative sources of income created by the planting and caring of trees. In 2006, the World Bank and Green Belt Movement signed an Emission Reduction Purchase Agreement under which the World Bank's Bio Carbon Fund pledged to buy the emission reductions that resulted from the cultivation of trees on land in Kenya.

Social Empowerment through Economic Empowerment

Solar energy as a catalyst

The Self-Employed Women's Association (SEWA), a trade union for independent women in the informal sector (small entrepreneurs) in India, has been striving since 1972 to improve the living conditions of its now 1.3 million members. Because of its needs-based approach, it responded to a growing demand among its members for access to electricity with Project Urja. Together with the social enterprise Selco India, a solar energy services company, the microfinance approach pursued by the SEWA cooperative bank brings energy and light to households, thus reducing health hazards, costs and CO2 emissions caused by the use of kerosene.

Additionally, women in work are also able to boost their productivity: by using solar lamps, women street vendors spend less on kerosene and reduce the risk of accidents while also increasing their income, as they can now extend the time available to them to sell their products by up to two hours. As they remain unaffected by the power outages in the overall grid, they have a competitive advantage. Women who work in horticulture or as midwives also benefit from solar energy through solar-powered headlamps.

True to SEWA's philosophy of empowering

women economically in order to boost their self-confidence and create greater respect for them within the family and in society, these lamps provide for greater mobility, make women feel more secure, and boost their self-confidence. Hence solar energy does not only mean reduced emissions because of reduced kerosene consumption, but also translates into social and economic benefits for the users.

Sustainable Energy Generation

Grameen Shakti

Grameen Shakti has set up a project in Bangladesh, which has brought together several individual and small-scale mitigation projects at the grassroots level and facilitated access to Clean Development Mechanism (CDM) funds. In concrete terms, the project trains women to install and maintain 30,000 domestic solar home systems in rural households that are not connected to the electricity network. Access to electricity allows households to cut down on their use of diesel and kerosene generators. The emissions saved are bought by the project operator in the form of Certified Emission Reductions under CDM and can be sold in the emissions trading market. Resources can thus be mobilised to reduce project costs and to keep the cost price of domestic solar home systems as low as possible. The households involved are also granted micro loans by Grameen Bank to help them purchase the domestic solar home systems.

Conclusion

Climate change affects all countries, all around the globe. But its impacts are not equally distributed among regions, generations, age classes, income groups, occupations and genders. In fact, the poor are disproportionately affected, and women account for the majority of the worlds poor. Climate change exhibits a gendered element, in that the respective vulnerabilities of men and women tend to differ, reflecting men's and women's socially and culturally defined roles and responsibilities. The gendered nature of vulnerability needs to be examined at the local level, ideally using gender analysis to yield sex-disaggregated data. Such analysis ensures that adaptation interventions take account of gender differences and thus do not inadvertently reproduce gender inequalities in vulnerability.

While there clearly is a gendered element to vulnerability, there similarly are gendered differences in adaptation. It is important to remember that women are powerful agents of change. Their local knowledge and particular experience of natural resource management and coping strategies during crisis are vitally important for the formulation of any adaptation strategies that hope to be successful. But in order to capitalize on this knowledge, there must be a gendered approach to adaptation that gives women a voice and the ability to participate within the development process.

Women should not be presented as victims – they are powerful agents of change, and their leadership is essential. This is partly due to their often deeper understanding of their immediate environment because of their experience in managing natural resources (water, forests, biodiversity and soil) as well as their involvement in climate-sensitive activities (such as farming) in most developing countries.

If women are to be empowered to take strategic decisions, it is advisable to supplement the measures at the target group level with long-term structural approaches. This becomes even more apparent when one considers that the aim is not simply to help women better fulfill their roles, but to contribute to genuine gender equality in the long term and so advance socioeconomic development in the partner countries. The combination of climate change and the economic empowerment of women create an opportunity for both fields to create mutual synergy on the path to poverty reduction and development.

References

1. *Agarwal, B., 2003. Gender and Land Rights Revisited: Exploring New Prospects via the State, Family and Market, Journal of Agrarian Change, 3, 184-224.*
2. *Aguilar, L., 2004. Climate Change and Disaster Mitigation. CIDA. Available on-line at*
3. *http://www.genderand environment.org/admin/admin_biblioteca/documentos/ Climate.pdf*
4. *Araujo, A. and Quesada Aguilar, A., in collaboration with Aguilar, L. and Pearly, R., 2007. Gender*
5. *Equality and Adaptation. http://www.generoyambiente.org/admin/admin_biblioteca /documentos/*
6. *Factsheet%20Adaptation.pdf*
7. *Banda, K., 2005. Climate Change, Gender and Livelihoods in Limpopo Province: Assessing Impact of Climate Change, Gender and Biodiversity in Bahlabela District, Limpopo Province, University of the Witwatersrand, Johannesburg.*
8. *Johnsson-Lathan, G., 2007. A Study on Gender Equality as a Prerequisite for Sustainable*
9. *Development. A Report to the Environment Advisory Council, Sweden.*
10. *Kelkar, G., 2009. Adivasi Women: Engaging With Climate Change, UNIFEM, New Delhi.*
11. *UN, 1997.The Report of the Economic and Social Council for 1997, United Nations, New York.*
12. *Available online at http://www.un.org/documents/ga/docs/52/plenary/a52-3.htm*
13. *UNDP, 2000. Gender Mainstreaming Learning Manual, UNDP, New York*
14. *http://www.undp.org/women/mainstream/*
15. *UNDP, 2003. Mainstreaming Gender in Water Management: A Practical Journey to Sustainability. A*
16. *Resource Guide, UNDP, New York. http://www.undp.org/water/docs/resource_guide.pdf*
17. *Ramani (2002), 'Energy as an Instrument of Women's Economic Empowerment', http://www.energia.org/resources/newsletter/pdf/ EN042002_ramani.pdf, p. 8-10. (18.02.2010).*
18. *Roy, M. and Venema, H., 2002. Reducing Risk and Vulnerability to Climate Change in India: The*
19. *Capabilities Approach, Gender & Development, 10, 78-83.*
20. *IPCC, 2007. Climate Change 2007 Synthesis Report: Summary for Policymakers, WMO, 20.Geneva. http://www.ipcc.ch/pdf/assessmentreport/ar4/syr/ar4_syr_spm.pdf.*
21. *keda, K., 1995. Gender Differences in Human Loss and Vulnerability in Natural Disasters: A Case*
22. *Study from Bangladesh, Indian Journal of Gender Studies, 2, 171-193.*
23. *International Strategy for Disaster Reduction (ISDR), 2008. Gender Perspectives: Integrating Disaster*
24. *Risk Reduction into Climate Change Adaptation. Good Practices and Lessons Learned, Geneva.*
25. *http://unisdr.org/eng/about_isdr/isdr-publications/17-Gender_*

    Perspectives_Integrating_DRR_CC/Gender_Perspectives_Integrating_DRR_CC_Good Practices.pdf
26. *CDM is one of the Kyoto Protocol's three flexible mechanisms (Article 12) to meet the emission-reduction commitments of industrialized countries.*
27. *Gender mainstreaming concerns the process of project design, implementation, monitoring and evaluation to ensure that women's and men's concerns have been taken into account.*
28. *SEWA is a trade union registered in 1972. It is an organisation of poor, self-employed women workers. These are women who earn a living through their own labour or small businesses.*

Rural Development in Global Discourse

Dr. Gaurav Gothwal
Assistant Professor, University of Rajasthan, Jaipur

shodhshree@gmail.com

Abstract

In the globalised world The dynamic of rural development has changed immensely. Globalization has brought about many positive and negative impact on rural development. This article try to understand the impact of globalization on rural areas. It also analyze the present scenario of essential rural sectors. The aim of this paper is to identify the commonalities and differences in approaches to rural development in global aspect.

Keywords : *Rural, Development, Globalization, Challanges.*

Rural development has emerged as a peculiar field of research and has obtain a key role in theory and practice of development right after Independence. It has been concomitant changes in the policies and approaches to rural development. The concept of development have provoked compelling questions about pattern values, method, action and choices every time there is a change in development perspective. In the Era of globalization rural development has a the central role in in international discourse. It is because of paradigm shift. Rural development emphasis on enlarging rural people choices in general. It includes attention to production. The analysis of distributional issues and therefore demands and inter disciplinary approach in which the broader social and political factors interactivity with economic processes are subjected to examination (Haris:1982)

The expression rural development is more appropriate than rural development in appreciating development issues. Rural development in new development discourse is also a core periphery issue. Ideas originate in the cores (ILO, IMF, UNDP etc.) but are imposed upon peripheries such as in third world countries and in their rural areas. Sustainable improvement in rural infrastructure is an essential factor from the Indian policy perspective. Many schemes have been implemented on a priority basis in important sector like power, transportation and irrigation during the plan period. The first five year plans (1951-56) gave utmost importance on the development of agricultural infrastructure to ensure food security.

Sixth plan (1980-85) was emphasized on immense public investment in rural infrastructure aiming at more equitable distribution of fruits of economic progress in rural areas. The eighth five year plan (1992-97) gave priority on the creation of communication , health and education, infrastructure in many small town and in rural areas to make the process of urbanization more compatible. The main thrust of 11th five year plan was on agriculture, education and infrastructure.

In almost all the plans some effectual measures were taken to improve infrastructural services. In the age of globalization the traditional concept and role of rural development has been changed with different perspectives. The concept of globalization has been generally depicted as an irresistible new force that will either wreck or save the planet.

According to Robert J. Samuelsson (2012) "Globalization is a double edged sword: a powerful vehicle that raises economic growth spreads new technology and increases living standards but also an immensely controversial process that assaults national sovereignty, erodes local culture, tradition and threats economic and social stability.

In the National context bureaucracy involves in the development process at various level and bureaucratic misunderstanding of peripheral issues affects the process itself. A balance has to be sought in the perspective of development at three level a) International development perspective b) National perspective c) practice of people at peripheral level.

Rural development paradigm is evidently new in its emphasis in approach to rural development.

The stunning economic performance in the recent years and the promising initiatives taken by the Indian government to revitalize the rural area for ensuring a decent standard of living to a large section of rural people are unquestionably helping India to become a develop Nation. Even after more than five decades of development planning promotion of rural infrastructure is overshadowed by negligence. Realizing the significance of rural infrastructure as a key driver of the nation's future prosperity. The government has initiated a number of policy measures to balance the growth process and bridge the divide between Bharat and India by strengthening the rural infrastructure services. Rural infrastructure investment help to rise the economic status of rural poor through increased income and improved consumption level(Jocelyn A. songo,2002)

Development is a value and ideological concept. It has many components ;economic, technological, communicational, socio-cultural ,ecological and influence the overall process of development. we have to take all these factors into the account for restructing and implementing the essential rural development programmes.

The context of rural development programme has been changing from time to time under the dynamics of politics as well as the impulses and forces released by the implementation of earlier programmes. Understandably the discourse on rural development over the years reflects upon the international agenda for the development of developing nations. Rural infrastructure development not only generates rural nonfarm employment but also causes income diversification (Fan and Rao,2002)

Consequently perspectives on rural development have been kept on changing and there has been emerging a sharpened broadened and holistic understanding of the issue. The issue of development in India with all its diversities is more of challenges than of oppurtunities in this era of globalistion .The growth of private capital formation and greater value addition in agro processing will brighten up the scope for agriculture, the overall impact of economic reforms and globalization would be beneficial for rural areas (Gulati,1998)

The change have been introduced in designing and implementation of rural development policies and projects are wide ranging with lots of verities across countries. These shifts in rural development have been shaped and influenced by a large number of factors not all of which are related to globalization.

The village life in India suffering exploitation and decay. The chronic poverty, illiteracy, inertia, insanitation, indifference, and

employment are the symptoms of decaying villages.

Both socialist and capitalists countries have based their actions for solving the problem on same set of values.

In spite of all initiatives and huge expenditure on rural development, we are yet to focus programmes and activities in a way that can be as follow-

- Improve the economic potential of rural areas.
- Increase the food production appreciably and
- Encourage nonfarm rural activities in the rural section

Globalization refers to the multiplication and identification of economic, political, social, and cultural linkage among people, organization and countries at global level.

The phenomena of globalization has recently attracted enormous interest , also the issue is at the heart of current world debates about its possible benefits and costs ,especially for more vulnerable population in the rural areas of developing countries. It is important to explore the linkage of globalization to issues of rural development in developing countries. The need for improvement of rural area is based on the fact that India is a large country with higher concentration of rural dewellers.

Globalization has also led to greater environmental degradation, greater displacement of indigenous population as well as worsening livelihood option for the people living in rural areas. (Roy,1997)

Conclusion and suggestions

The holistic nature of rural development is required to emphasize not only on apparent issue having bearing on participatory development but also such issues which have not yet figured prominently in rural development discourse in general. Rural development as a field has been crowded by agenda, prescriptions programmes and policies of a wide variety not merely because of multi dimensionality of the subject matter itself but also because it has remained a contested domain for a whole range of ideologies, fads and fashion. The ne w development paradigm that has gained immense legitimacy and prestige both in academic and policy making circles in recent decades. It is articulated that rural infrastructure development contribute to the overall development bothe by enhancing productivity and providing amenities which improves the quality of life. There is an escalating consensus that expansion of rural infrastructure is a must for more inclusive growth. The government has to take right initiatives to raise investments in rural areas.

Question is that the public finance which is available to rural infrastructure from the central government fund is satisfactory over time.

The present study of rural development mainly focuses on poverty alleviation, better livelihood opportunities , provision of basic amenities and infrastructure facilities through innovative programme of wage and self employment. India is country of villages so if villages perish India will perish too. The problems like poverty, hungry, illiteracy ,unemployment, diseases, lack of portable drinking water, rural indebtedness, gender bias, untouchability and cast discrimination continue to haunt and hinder rural development in India. The growth and development of urban areas have by and large been at the expense of rural areas. With the emergence of city centers the country side started getting neglected, this is much more true so far as rural population in developing countries is concerned. The efforts should be towards presentation and improvement of rural environment and rural development planning may be conceived of identifying the complex of factors which contributes to the creation change or development of a rural area or

community. The village today in our country has a complex atmosphere plagued with vested interests, castism, politics, rivalry etc. the development of rural areas requires a different wave length. Some of the area where can be focused i.e. high yielding variety ,pesticides and fertilizers, agricultural implements, health, hygiene, family planning and education, village economy, religious communication. Free trade, privatization and its concomitant competitive market forces are increasingly putting the rural economy at stake. The threats have to be coped with and opportunities have to be grasped. The scope of rural development in the country cannot be limited to some particular depressed localities. It would embrace rather the entire country and therefore no sharp distinction between genera rural development plans.

The ultimate aim of rural development should be the welfare of rural population .The preceding steps in regional planning cannot be beyond a point unless, simultaneously, there are other measures taken to improve the sociological environment of rural areas to make them more attractive as a living place. For this purpose not only material but intellectual investment is also essential. There is a shift in development paradigm along with the process of globalization that emphasizes on reversal of the approach more precisely "putting the last first" (Chamber:1983,1993)

The implication of changes for the rural economy in general and rural development policies in particular, inter alia, depend upon a whole set of micro and macro level linkage and transmission channels. The dimension of changes can be described as follow-

- Greater emphasis is being given at at the level of rhetoric on decentralization and people participations.
- The role of NGO's and civil society institutions as implementing agencies and services provides are being incorporated into the policy designs explicity.
- In many spheres there has been a shift for long term stable organizational structure s to flexible short term and contract based implementation designs.
- Revenue generation and financial sustainability are being given lots of importance while evaluating the feasibility of pragrammes.

As a result of the increasing emphasis on institutions social networks, trust and cooperation there has been significant change in the designing of rural development programmes. There is a discernible shift towards people's participation and community based management. The invocation of community, particular in the context of management and monitoring of rural works programmes and service delivery mechanism is in itself a significant development. The process of globalization has been fundamentally changing the foundation of rural development discourse in complex and diverse ways. Development policies in general and those relating to the rural sector in particular are increasingly being redesigned to suit the interest of the metropolitian capital. Without addressing the deep rooted structural inequalities in rural societies. Th e currently fashionable development strategies try to search for win-win situation, where the interest of poor can be econciled with the neo liberal agenda of privatization and deregulation.

References

1. *Barnad, A (1998,) hunter gatherers and bureaucrats: reconciling opposing world, national museum of ethnology, Osaka.*
2. *Behra, M.C(2005) globalization and rural development, commonwealth publishers, New Delhi.*
3. *Chambers ,R (1983) Rural development : Putting the last first, laungman.*
4. *Fan, shenggen and Thorat, sukhdev(2000) Government spendin, growth and poverty in rural India, American journal of agricultural economics.*
5. *Gulati, Ashok(1998) Indian agriculture in open economy : will it ? prosper, oxford university press, oxford.*
6. *Haris, John(1982) Rural development, theories of peasant economy and agrarian change, London:Hutchinson.*
7. *Roy, sumit (1997) globalization structural changes and poverty some conceptual and policy issues:EPW,vol.32,No33-34*
8. *Songco, Jocelyn, A (2002) Do rural infrastructure investment benefit the poor ? A global view, school of international and public affairs, Columbia university and the world bank, Vietnam.*

ISSN 2277-5587

Attrition : The War for Talent

Ruchika
Assistant Professor, JVMGRR College, Charkhi- Dadri (Haryana)

shodhshree@gmail.com

Abstract

Attrition is a big problem faced by most of the organizations now-a-days. Some times attrition is also called employees turnover. Employees switch over form one company to another for some reason. It is said that counter offer is the main reason for attrition but there are some other reasons also behind this turnover. Although a certain percentage of attrition is unavoidable in current global business environment but a resignation every six months is quite an obstacle in the growth of both organization and employees as well. This study focuses in knowing the reason behind leaving an organization by the employees and also suggests some retention strategies.

Keywords: *Attrition, Talent, Organizations.*

Attrition is termed as employee's voluntary decision to leave an organization. Almost all the companies, big or small in size are struggling with how to keep employees from leaving for more money or better opportunities or for something else. Attrition is not only the loss of talent but also includes the cost of training for recruits. The fast changing business environment and global competition has made the changes in the organizational structure in the form of takeover's, merger and acquisitions. A survey conducted by Hay Group identifies that the cost of each manager or professional who resigns is equal to one and half year of their salary. It also has an impact on company moral.

Rational of the Study

Attrition is a burning issue. Sometimes employees mobilize due to their familiar, social and demographic pressures but counter offers are becoming more rampant today and also the key reason for employee turnover. Here more efficient and experienced employees are influenced by other organizations with higher and charming pay packages so it becomes hard choice for employees to stay back.

All companies regardless of size are struggling with how to keep employees from leaving. Many experts believe that all the challenges may turnout to be a real dampener in the growth of any industry. This raises the responsibilities of finding the right candidate and providing a conducive working environment as well as which will be beneficial for the organization also. Excessive employee turnover is often cited as a key barrier to high quality service. Also it is not beneficial for employees to leave organizations every six months. Thus the matter of attrition is equally important for Top management, employers and employees as well.

Factors affecting Attrition

Although money is the key factor for leaving any organization but there are some other factors which influence the attrition rate. Which are:

Age Factor

It is seen that maximum attrition is taking place in the age group of 26-30 years. People in this age group have a few years of experience with them and a higher pay package from prospective employers provokes them to shift.

Location Factors

Generally, a tendency is also seen among employees that they are crazy about metro cities so they are always ready for moving from non-metros to metros. Besides people are comfortable relocating in cities Banglore, Chennai, Hyderabad because these cities are developed, have better lifestyles and throw up immense opportunities. Some people want job in their home town.

Money

No doubt money matters and is the key factor for attrition. Young employees in the age group of 25-30 are always on the lookout to enhance their monetary status.

Brand attraction

The image of the company plays an important role as people in India want themselves to be associated with the established name i.e. with the famous company.

What Employees Want

The employees today demand "Home away from Home" an atmosphere where the basic needs of the employees are met and they don't have to be bothered about the daily routine tasks. Besides various schemes like Employees welfare fund, Family oriented reward program, Family insurance schemes, Day care centre are also advocated.

Agenda Behind Last Minute Retention

The idea of last minute machination to retain an employee who has expressed his desire to quit is flawed at very conceptual level. The best time for the re-engaging and refreshing the commitment of employees is not when employee resigns but a long before that. Last minute retention strategies should chiefly be used to understand and subsequently better anticipate and address reasons for employee discontent rather than as a tool to retain employees.

Retention Strategies

In an industry where employee turnover has assumed high level, there is a widespread confusion about how to deal with the problem. Not surprisingly these organizations eventually discover that money does not necessarily buy loyalty. Research conducted by Accenture reveals that to win the war for talent, companies must adopt a new approach to retention that focuses on communication, compensation, opportunities and Perks etc. some retention strategies are

- Companies should implement such programs which create a trusting environment in which Employees feel free to ask questions, express frustration. Most motivated employees are those whose companies provide them personal as well as career development opportunities.
- Companies should provide some facilities like personal healthcare, transportation, canteen,
- Companies should provide accommodation facilities and transport facilities from home to office
- Companies can organize get together and cultural programs to provide their employees a chance to display their talent. This will refresh the minds of the employees. Some sports events can also be organized.

Conclusion

A Key business challenge for organizations is to attract and retain talent. Attrition is a bitter truth that companies have to live with and also a buzzword in today's corporate world. Therefore it is imperative for companies to take suitable measure to address the same. It has become a challenging aspect of running business today. This study reveals the fact that no two people are same in nature; their way of working also differs. Thus many factors, explained already, are taken into consideration while dealing with this problem.

Q. How often your ideas for change are given a good hearing.

Table showing responses of respondents

Option / Alternatives	Age (in years)				Service in length (in years)			
	21-30	31-40	41-50	>50	<5	5-10	10-20	>20
Never(1)	35	20			30	20	10	
Sometimes(2)	10	10	05		10	10	05	05
Often(3)		05	04	03		05	03	02
Almost always(4)			01	02				
Always(5)								

Table showing Mean and Grand Mean of responses

Option	Class	No of respondents	Mean score	Grand mean
Age (in years)	21-30	45	1.22	
	31-40	40	1.37	
	41-50	10	2.6	2.15
	<50	05	3.4	
Service in length (in years)	<5	40	1.25	
	5-10	35	1.57	
	10-20	18	2.6	2.18
	<20	07	3.3	

When employees were asked to answer how often their ideas for change are given good hearing then the contradiction was found among the various age groups. Lower age group said that generally their ideas are not given hearing whereas in upper age group often their ideas are heard. In the service length also employees having less service experience are generally not heard where as employees having more than 10 years of work experience are often consulted. The reason behind this is that the strategic planners believe more on experienced one.

Q. How much do you think that the top management of this organization is aware of the working condition of its employees.

Table showing responses of respondents

options / Alternatives	Age (in years)				Service in length (in years)			
	21-30	31-40	41-50	>50	<5	5-10	10-20	>20
Not at all aware(1)								
Very little aware(2)	15	15	03		12	10	05	
Somewhat aware(3)	25	20	05	03	20	20	10	05
Much aware(4)	05	05	02	02	08	05	03	02
Very much aware(5)								

Table showing Mean and Grand Mean of responses

Option	Class	No of respondents	Mean score	Grand mean
Age (in years)	21-30	45	2.77	
	31-40	40	2.75	
	41-50	10	2.9	2.95
	<50	05	3.4	
Service in length (in years)	<5	40	2.9	
	5-10	35	2.85	
	10-20	18	2.88	2.98
	<20	07	3.28	

By analyzing the data in the scale of 5 points using Mean and Grand Mean we find that employees averagely agree about this question i.e. the top management is generally aware about the working condition of the employees. The reason may be that with the onset of globalization of corporate word and because of media's initiatives about the importance of HR, almost all the companies have started paying attention providing favorable working environment to its employees.

Q. If anybody does his job in a more improved way than does he get proper recognition for it?

Table showing responses of respondents

options / Alternatives	Age (in years)				Service in length(in years)			
	21-30	31-40	41-50	>50	<5	5-10	10-20	>20
Almost Never(1)								
Rarely(2)								
Sometimes(3)	30	25	08	03	20	20	10	05
Usually(4)	20	10	02	02	15	10	08	02
Almost Always(5)	05	05			05	05		

Table showing Mean and Grand Mean of respondents

Options	Class	No. of respondents	Mean score	Grand mean
Age (in years)	21-30	45	4.33	
	31-40	40	3.5	
	41-50	10	3.2	3.6
	<50	05	3.4	
Service in length (in years)	<5	40	3.6	
	5-10	35	3.57	
	10-20	18	3.44	3.47
	<20	07	3.28	

By analyzing the responses we find that employees almost agree that they get proper recognition if they do work in someone improved way. Recognition rocks today it gives a positive psychological effect on the employees. It increases their moral. They start working with better efficiency resulting in increased productitivity. Thus it ultimately benefits to company also.

Q. How often are rewards such as raise in salary and promotion, given strictly on the basis of valid reasons.

Table showing responses of respondents

options / Alternatives	Age (in years)				Service in length (in years)			
	21-30	31-40	41-50	>50	<5	5-10	10-20	>20
Almost Never(1)								
rarely(2)								
Neither agree nor disagree(3)								
usually(4)	35	30	06	02	30	30	10	04
Almost always(5)	10	10	04	03	10	05	08	03

Table showing Mean and Grand Mean of responses

Options	Class	No. of respondents	Mean score	Grand mean
Age(In years)	21-30	45	4.22	
	31-40	40	4.25	4.37
	41-50	10	4.4	
	<50	05	4.6	
Service in length (in years)	<5	40	4.25	
	5-10	35	4.14	4.31
	10-20	18	4.44	
	<20	07	4.42	

According to this question we see that on the scale of 5 points the respondents have given the responses as shown in the table. Employees are moderately agreed about this question. In corporate sector it is generally found that an unbiased performance appraisal of employees is done. Thus rewards like increase in salary and promotions made on valid reasons. Only the work done by employees speaks not their position.

References

1. *Can-el Michael R.,Elbert Norbert F., Hatfield Robert D.I. strategies for Managing a Diverse and Global work , Dryden press,2002, USA .*
2. *Bernadin johan H., Human Resource Manager, Tata Mcgraw Hill,2003; New Delhi*
3. *www.google.com*
4. *Times of India; Time Ascent Dec.2006, pp vi; Feb 7 2007 pp1, May 9, 2007*

Word Accent in Punjabi

Mansi Bajaj
Research Scholar, University of Delhi, Delhi

shodhshree@gmail.com

Abstract

Punjabi speech comprises words which have one relatively more prominent syllable. The focus in the work is only on the placement of prominent syllable in word(s). This prominence of a syllable in a word has also been called word accent. It is important to understand the nature of accentuation as it throws light on the phonological aspects of Punjabi. Many scholars have studied accentuation, however, there is very little work on the experimental study of word accent. However, there is an agreement that the Punjabi speech is accentuated. The present work will make use of the recorded data from Punjabi native speakers to give the rules of accentuation. Accentuated and unaccented syllables are differentiated acoustically in Punjabi, with the accentuated syllables having greater duration and lower f0 as compared to an unaccented syllable. The location of primary word accent in Punjabi is predictable phonologically.

Keywords: *Phonology, Punjabi, Primary word accent, Acoustic correlates of accent.*

Different scholars have looked at the word accent in Punjabi differently and have given different accounts of word accent in Punjabi. Tolstaya (1981) claims that the accent is on the first syllable in bisyllabics and in trisyllabics, it is on the second syllable if it is long. Kalra (1982) proposes that the accent is on the right-most heaviest syllable but never on the ultimate syllable. Bhatia (1993) states that the accent is on first syllable in bisyllabics, if it is long, and on the last syllable if it has a consonant cluster in the end. In trisyllabics, the accent is on the second syllable if it is long, else on the first syllable. Gargesh (1999) proposes that a tripartite division of the syllables into Light (L), Heavy (H) and Extra-Heavy (EH) is needed for giving the rules of accentuation in Punjabi. It also proposes that in bisyllabics, the accent is on the ultimate syllable if it is extra-heavy, else it is on the penultimate syllable. In trisyllabics, the accent is on the penultimate if it is not light, else it is on the antepenultimate syllable. Singh (2004) has also given the same rules as given by Gargesh (1999). Bahri (2011) states that the accent is on the heavy syllable and if penultimate and ultimate, both are heavy then the penultimate syllable carries accent. Some scholars like Gargesh (1999) and Singh (2004), have used the concept of extra-heavy to give rules for the placement of accent in Eastern Punjabi, whereas scholars like Tolstaya (1981), Bahri (2011), etc have not used this concept of extra-heavy. However, there is an agreement that the Punjabi speech is accentuated. Most studies of accent in Punjabi, have focused on the phonological description of its placement in a word. A survey of the current literature reveals that the analytical examination of accent in Punjabi has not been done. Acoustic examination is significant for any language,

especially when the accounts by various scholars regarding the placement of accent on a word, are contradictory. An accentuated syllable is associated with more duration, and lower peak f0. The present work will take a look at the primary word accent in Punjabi by comparing vowels in different word positions and syllable weights with respect to duration, and peak f0. The findings of the experiment will be helpful in determining the relation of the accent with- weight of syllable, and their position in a word.

A survey of the literature reveals that there is an agreement that duration, and peak f0 are phonetic cues to accent in various languages. The studies on different languages provided evidence that duration is a cross-linguistic correlate of accent consistently (Ortega-Llebaria and Prieto, 2010; Kastrikani, 2003). Fry (1958) proved in his research that duration, and in pitch accent languages, f0 are acoustic cues to the realization of accent. According to Pierrehumbert (1980) and Ladd (1996), f0 movements are direct correlates of pitch accent. The presence or absence of a pitch accent is determined by suprasegmental features- f0, and duration.

To examine the acoustic realization of accent in Punjabi, an experiment comparing vowels in different word positions and with different syllable weights, with respect to duration, and peak f0 was run.

The paper is organized as follows. The next section talks about the methodology used for the collection, recording and analysis of data. In the result section, first the findings of the product experiment are examined. Then, the observations made with respect to the syllable weights are listed. Thereafter, in the analysis section, the rules of placement of accent in Punjabi are formulated on the basis of the observations made from the experiment findings. In the last section, the conclusion is drawn finally.

2. Data Recording and Analysis

Every word in Punjabi has one syllable accentuated, hence monosyllabics are always accentuated. In order to study the location of accent in bisyllabics and trisyllabics, a word list was prepared.

2.1. Participants: Two native speakers of Punjabi from Dugri region of Punjab volunteered for the study. The participants were a male and a female between the age of 25 to 35 and didn't report to have any speech or hearing problem. Apart from Punjabi, the participants are good speakers of English (and Hindi- only for the female participant), however their native language is Punjabi.

2.2. Word List: There were thirty members to the experimental group (seven monosyllabic, twelve bisyllabic and eleven trisyllabic words). The word list is given in the table 1 below.

Table 1 : Word list for data collection

Monosyllabics	Bisyllabics	Trisyllabics
cəl	gʊru	əmrɪkkəɳ
dəm	əgəm	divaɭi
dər	əndər	sərovər
dəs	miɭəɳ	jələndər
gəm	dərjəɳ	jəlebi
var	ʃərbət	rəsgʊlle
mal	jəɭəɳ	nəraddər
	ætvar	pəkoda

	dərbar	kirtəna
	gopal	naʃpəti
	həjar	gəɖbəɖi
	səwal	

2.3. Collection of Data: The words were rooted in a carrier phrase and written on plain white sheets. The sheets were randomly shuffled and given to the participants so they could familiarize themselves with the sentences before recording. The participants were being asked to read each sentence three times.

The variable X was replaced by different words.

pən.ja.bi	vic (~ pən.ja.bic)	X	kɛn.de	ne
Punjabi	in	X	said	is

In Punjabi, X is said

2.4. Data Recording Specifications: The data was recorded using PRAAT 6024 software. The data was recorded at medium speech rate with neutral intonation. The participant was alone in a quiet room when he/ she recorded the data and was allowed to take break(s), as and when needed. The data from the participants was collected in two sessions of about two hour each.

2.5. Annotation: The data was analyzed with the help of PRAAT 6024 software. The phoneme level annotation of all vowels of the test item in the middle sentence was done and then duration, and peak f0 were analyzed with the help of the software. The values of duration, and peak f0 are shown in the appendix section and the accent on Punjabi words is shown in the table 2 below.

2.4. Data Recording Specifications: The data was recorded using PRAAT 6024 software. The data was recorded at medium speech rate with neutral intonation. The participant was alone in a quiet room when he/ she recorded the data and was allowed to take break(s), as and when needed. The data from the participants was collected in two sessions of about two hour each.

2.5. Annotation: The data was analyzed with the help of PRAAT 6024 software. The phoneme level annotation of all vowels of the test item in the middle sentence was done and then duration, and peak f0 were analyzed with the help of the software. The values of duration, and peak f0 are shown in the appendix section and the accent on Punjabi words is shown in the table 2 below.

Table 2: Accent in Punjabi

Monosyllabics	Bisyllabics	Trisyllabics
ˈcəl	ˈgʊ.ru	əm.ˈrɪk.kəɳ
ˈdəm	ˈə.gəm	di.ˈva.ɭi
ˈdər	ˈən.dər	ˈsə.ro.vər
ˈdəs	ˈmi.ɭəɳ	jə.ˈlən.dər
ˈgəm	ˈdər.jəɳ	ˈjə.le.bi
ˈvar	ˈjər.bət	rəs.ˈgʊl.le
ˈmal	ˈjə.ɭəɳ	nə.ˈrad.dər
	ˈæt.var	ˈpə.ko.da

	dər.ˈbar	ˈkir.tə.na
	go.ˈpal	ˈnaʃ.pə.ti
	hə.ˈʃar	ˈgəɖ.bə.ɖi
	sə.ˈwal	

1. Results

The sound waves for all the words were studied with the help of PRAAT 6024 software. Duration, and peak f0 for every syllable of the entire word list was calculated, the average values were calculated and rounded off to the nearest whole numbers.

The following observations can be made from the spectrographs.

- For trisyllabics with light penultimate syllable, it is observed that the duration is greater consistently and peak f0 is lesser for the antepenultimate syllable than for the other two syllables, eg. the duration and peak f0 values for 'gəɖ' in 'gəɖbəɖi' are greater and lesser respectively than the duration and peak f0 of other syllables in the word.
- For trisyllabics with heavy or extraheavy penultimate syllable, it is observed that the duration is consistently higher and peak f0 is lesser for the penultimate syllable as compared to the other two syllables, eg. the duration and peak f0 values for 'rɪk' in 'əmrɪkkəɳ' are greater and lesser respectively than the duration and peak f0 of other syllables in the word.
- The data above shows that the penultimate syllable is accentuated except when the penultimate syllable is light. In case the penultimate syllable is light, the ante-penultimate syllable gets accentuated, irrespective of the weight of other syllables. The ultimate syllable in trisyllabics never gets the primary accent.
- For bisyllabics with extraheavy ultimate syllable and heavy or light penultimate syllable, it is observed that the duration is consistently higher and peak f0 lesser for the ultimate syllable as compared to the penultimate syllable, eg. the duration and peak f0 values for 'pal' in 'gopal' are greater and lesser respectively than the duration and peak f0 of other syllable in the word.
- For bisyllabics with non-extra heavy ultimate syllables or with both syllables extraheavy, it is observed that the duration is consistently higher and peak f0 lesser for the penultimate syllable in comparison with the ultimate syllable, eg. the duration and peak f0 values for 'gʊ' in 'gʊru' are greater and lesser respectively than the duration and peak f0 of other syllable in the word.
- In bisyllabics, the primary word accent rests on the first syllable in some cases and on the second in other. The primary accent falls on first or the penultimate syllable when the ultimate syllable is heavy or light. However, when the ultimate syllable is extra-heavy, the primary accent falls on the ultimate syllable irrespective of the type of penultimate syllable.
- For monosyllabics, it is observed that the duration, and peak f0 are slightly higher than the values for any syllable in bisyllabic or trisyllabic word.

2. Analysis

It is evident from the above data that duration, and peak f0 values are different for vowels in different syllable positions, and with different weights. Some syllables are consistently longer, and louder than the other syllables in the same word, indicating an evident durational, and f0 effects of accent in Punjabi. These results suggest that accentuated syllable in Punjabi might be systematically longer than the unaccented syllables. Hence, duration, and peak f0 are acoustic correlates of primary word accent in Punjabi.

The results confirm the following rules of placement of primary word accent in Eastern Punjabi (Malwai) are proposed:

- All monosyllabics are accentuated irrespective of the weight of syllable.
- In bisyllabics, the primary accent is on penultimate syllable. It shifts to ultimate only if ultimate syllable is extra-heavy and penultimate is not extra-heavy.
- In trisyllabics (and also in polysyllabics), the primary accent is on penultimate syllable. It shifts to antepenultimate only if the penultimate is light.

3. Conclusion

The primary word accent rules are posited above on the basis of the analytical examination of accent that accounts for the mono-, bi- and tri-syllabic words correctly. It is noted that the notion of extraheavy syllables is very important in understanding the placement of accent in Punjabi. It is a very interesting accent pattern because of its multi-layered hierarchy of weight. The accentuated syllables in Punjabi are systematically longer, and with lesser f0 than the unaccented syllables. This study can be considered an empirical proof that duration, and peak f0 are acoustic correlates of accent in Punjabi. It can be concluded from the findings of the present work that peak f0 is primary cue to accent in Punjabi and duration is secondary cue to it. These prosodic elements apply to and interact with the phonological-morphological derivation of words simultaneously. These prosodic elements also help in better understanding of the phonological problems in Punjabi. This study is an empirical proof of the rules of the placement of primary word accent in Punjabi language.

References

1. *Bahri, H. (2011). Teach yourself Panjabi. Patiala: Punjab University.*
2. *Beckman, M. E. (1986). Stress and non-stress accent. Dordrecht: Foris.*
3. *Cutler, A. (2005). Word stress. In D. Pisoni and R. Remez (Eds.), The handbook of speech perception (pp. 264-289). Malden, MA: Blackwell.*
4. *Bhatia, T.K. (1993). Punjabi: a cognitive-descriptive grammar. London: Routledge.*
5. *Fry, D. B. (1964). The dependence of stress judgments on vowel formant structure. In S. Karger Basel (Ed.), Proceedings of the 5th International Congress in Phonetic Sciences (pp. 306-311), Münster, Germany.*
6. *Gargesh, R. (1999). Tones in Punjabi and Verner's Law Revisited. Paper at The International Conference on South Asian Languages and Linguistics. Urbana Champaign: University of Illinois (USA). July 1999.*
7. *Gill, H.S. and H.A. Gleason. (1969). Reference Grammar of Punjabi. Patiala: Punjab University Press.*
8. *Kalra, A.K. (1982). Some topics in Punjabi Phonology. Ph.D Thesis. Delhi: University of Delhi (MS).*
9. *Kastrikani, A. (2003). The temporal correlates of lexical and phrasal stress in Greek, exploring rhythmic stress: Durational patterns for the case of Greek words. Master's Thesis, University of Edinburgh.*
10. *Ladd, R. (1996). Intonational phonology. Cambridge. Cambridge University Press.*
11. *Ortega-Llebaria, M and Prieto, P. (2010). Acoustic correlates of stress in Central Catalan and*

Castilian Spanish. Language and Speech, 54(I), pp 73-79.

12. *Mariapaola, D. and Rosenthall, S. (1999). Phonetics and phonology of main stess in Italian. Phonology, 16, pp 1-28.*
13. *Pierrehumbert, J. B. (1980). The phonetics and phonology of English intonation. Doctoral Dissertation, MIT.*
14. *Singh, C.S. (2004). Punjabi Prosody: The old tradition and the new paradigm. Sri Lanka: Sikuru Prakasakayo.*
15. *Tolstaya, N. I. (1981) The Punjabi Language: a Descriptive Grammar, tr. G. L. Campbell, London: Routledge and Kegan Paul.*
16. *Turk, A. and Sawusch, J. (1996). The processing of duration and intensity cues to prominence. Journal of the Acoustical Society of America, 99(6), 3782-3790.*

Political History of Mandi State During The British Raj (1846A.D.-1947A.D.)

Bhisham Gupta
Assistant Professor, Government Nehru Sanskrit College,
Phagll, Shimla (Uttrakhand)

shodhshree@gmail.com

Abstract

The present study was delved to trace out the political history of Mandi State (H.P) in the British Raj. The data is based on historical facts which was available in the form of gazetteers and other books. The findings from the mentioned sources bring out the political history of Mandi state during the British Raj. During the span of a century, a number of improvements were made in the social and economic life of the people of Mandi State. Most of these improvements werepartly the result of theforces that were unleashed by the British Raj & partly became possible because of the socio-economic, administrative and political changes made by the British. How did these changes influence the life of people, though form an interesting area of study, had not received proper attention. An attempt has been made to trace out the political history of Mandi State during the British Raj.

Keywords *: Political, History, Mandi, British, Raja.*

In this paper, an effort has been made to trace the political past of Mandi during the British Raj from 1846 A.D. to 1947 A.D., information about the earlier history of Mandi is quite sketchy, conjectural and unreliable. Grater details become available from the 15th century A.D. But as the paper deals with British period only, the discussion in the paper mainly centers around the political developments of the 19th &20thcentury.

In recent years. There has been greater emphasis on research on the political conditions of the people and varied attempts are being made to explore the political past at the National and regional levels. And in the process of building the Political past of the country, research on the regional units has assumed new dimensions as political conditions continued to vary from region to region because of the play of both natural and historical factors. Greater attention and efforts are needed to study the political similarities and dissimilarities or variations to knit a clearer picture of the life of the people at political levels. It is in the light of this that at attempt is being made to study the political conditions of the people of Mandi during the British period i.e. between 1846 AD to 1947 AD.

Sir Alexendra was the first to institute inquiries into the history of the Mandi Royal family, and the result of his researches are to be found in the reports of the Archaeological Survey, vol. XIV,p. 123. On the basis of his researches he had come to the conclusion that as regardancienthistory of Mandi state, apart from vanshavalis or genealogical rolls of the Rajas, nothing more was available in the form of writtendocument.

Whatever little is known about ancient Mandihad been constructed on the basis of vanshavalis, coins, inscriptions and monuments, and so the elements of conjecture have come to find its place here.

According to Alexendra Cunningham and J. Hutchison and Vogel, the chiefsof Mandi and Suket had descended from a common ancestry and belonged to "Atri" gotra in the chandrabansi line of Rajputs, and claimed their descent form the Pandwa family of Mahabharata.

A vernacular History of Mandi in Tankri also exists, dealing with the period from the reign of Raja AjberSen A.D. 1500 to the present period of 1948 A.D. It was compiled in A.D. 1888 by BikramKayath from Materials in the possession of an old Mandi family named Bisht.

Barselasor monuments were erected on the death of a Raja. These monuments are valuable from chronological purposes, as fixing with certainly the data of eachRaja's demise and the accession of his successors form HariSen, A.D. 1637, down to the present time, only threeBarselasare without inscriptions. These are of kesavSev, Gursen and Shiv Jann-Sen

In the reign of KesavSen, A.D. 1595, Mandi came under the Mughal control. Early in Akbar's reign all the Punjab Hill states came under Mughal rule and made a tributary, but were left entirely free in the management of their internal affairs.

But in the present project/paper we are concerned from AD. 1846 to AD. 1947 or from the reign of Raja BalbirSen to Raja Joginder Singh Sen. Mandi was under the Sikhs form the time of Maharaja Ranjit Singh who had made his power felt in the hill states, the hill country, trans-Sutlej,Suket, Mandi andKullu, had been virtuallyconquered, though not occupied by Sikh troops Mandi was a tributary to the Sikh Durbar and BalbirSen was theRaja of Mandi in 1846 A.D.

Sikhs were defeated in the battle of Sabraon. Immediately after the battle, BalbirSen and ugarSen, Raja of Suket sent confidential agent named Sidhu Pandit to Mr. Erskine, Superintendent of The Shimla Hill States, tendering their allegiance to the British government, and sought for an interview, which was readily granted on 21st Feb. 1846 AD., the two chiefs met Erskine at Bilaspur and gave in their allegiance in person. On 9th March 1846 AD., a treaty was concluded between the British Govt. and the Sikh Durbar where by, the whole of the Doab, between Sutlej and Beas was ceded in the perpetuity to the British. Mandi and Suket being within the ceded territory came directly under the British control. The hopes establishing their independence after the first Anglo Sikh war were placed under the commissioner of Jullundur.

On 24th Oct. 1846 AD., the chiefs of Mandi and suket were granted special "Sanad". Which granted to the two chiefs their respective positions with full administrative powers in perpetuity. The terms of the treaty or Sanad granted by the British government to Raja BalbirSen in 1846 A.D. are given below:-

- "Whereas by the treaty of 19th march 1846 A.D., concluded between the British and Sikhs, the hill country had come into the possession of the company, chiefs of Mandi got the state of Mandi, comprised within the same boundaries as at the commencement of the British occupation, together with full administrative powers within the same, was now granted by the British Government to him and the male heirs of his body by his Rani from Generation to generation on failure of such heirs, any other male heir who may be proved tothe British government to be next of kin to the Raja shall obtain the above state with administrative powers."
- "The British government reserved the right to remove an incapable ruler form the Gaddi" and to appoint such other

nearest relation of the Raja."

- "The Raja shall pay annually into the treasury of Shimla and sabathu one lac of rupees as tribute or "Nazrana" into two installments. The first installment on the 1st of June and the second on the 1st of November.
- "He shall construct roads within his territory not less than +2 feet in width and keep them in good condition."
- "He shall not levy tolls and duties on goods imported and exported, but shall protect bankers and traders within his state."
- "He shall pull down and level the forts of Kamlahgarh and Nantpur, and never attempt to rebuild them."
- "On the breaking out of any disturbances, he shall join the British army with his troops and hill porters and also supply provisions according to his means."
- "Any dispute which may arise between him and any other chief, will be referred to the British courts."
- "The duties on iron and salt quarries, shall be laid down after consultation with the superintendent of the Hill States."
- "Raja shall refrain from mortgaging any portion of his territories without the knowledge and prior consent of British government."
- "He shall put an end to the practice of slave dealing, sati, female infanticide and the burning and drowning of lepers which were opposed to British laws and no one in future shall venture to revive them."
- "He shall abstain from encroaching on the temitories of other chiefs and he will adopt measures for the welfare of the people."
- "Raja shall ensure the administration of justice to the people, security of roads etc."

The capital of the Mandi State also called Mandi stands on the left bank of the river Beas near its junction with the SuketiKhad. The original capital called "old Mandi" was on right bank of the river Beas. The state derived its name from its capital "Mandi" which is a Hindi word meaning "Market" and it may have derived its name from the Sanskrit word "Mandopika" meaning" An open Hall or shed."

In ancient times, the place was a center of trade on the main route form Yarkand and Ladakh to Hoshiarpur and the plains. Among the Tibetans, Mandi, was known by the name of "Zahor". It is also believed that Mandi derived its name form "Mandav Rishi", who devoted his time to meditation at Kilsar a place about one mile to the east of present Mandi town. The place was called "Mandavya" and Mandi corrupted form Mandavya.

Mandi was founded in 1527 A.D. by Raja AjberSen who may be regarded as the first Raja of Mandi. Due to its numerous temples, Mandi was known as" miniature Banaras" pointed out J.C. French. Gore, who visited Mandi town in 1895 A.D. also referred to the Mandi suspension bridge built by Raja BejaiSen in 1878 A.D. He pointed out "Mandi is a wonderfully pretty little town. The little streets of the Mandi town were well paved and well swept, though their narrowness reminded us again that we were still in a wheel- less country. On the road side there were resting places, dear to the native heart. There were carefully walled springs by the road side offering clear and cold water to the passersby.

Mandi State remained under the indirect control of the British government between 1846A.D. to 1947 A.D., when it became part of Himachal Pradesh on the 15th August, 1948 A.D.

During the span of 100 years, a number of changes occurred in the political life of the people of Mandi State. These changes were partly the result of the British Rule and partly due to the other factors including the native rulers.

Conclusion

From the preceding pages of the paper, it becomes quite evident that during a span of a century, there did take place certain significant developments in Mandi. Politically Mandi became a part of British India and began to be administered on the pattern evolved by the British. A British oriented land revenue, police and judicial administrative edifice was raised in the state. These changes encouraged the development of positive rights. Mandi was a leading hill state, standing 6th in order of precedence among the Punjab chiefs. Its Raja was entitled to a salute of 11 guns, Population wise it was 10th in respect of density of total area among all the native and first among the hill states. It possessed considerable mineral wealth. It was bordered on the north by the Palampur Tehsil of Kangra District, on the east by the Kullu state, on the south by the state of Suket and on the west by the state of Bilaspur and Hamirpur Tehsil of Kangra district. Thus, this being an importantstate of Himachal Pradesh, would form an interesting area for the study of political condition in this region.

References

1. *J. Hutchison& Vogel. "History of Punjab Hill states." vol.IInd (Lahore, Supdt. Printing Press, Punjab, 1933).*
2. *MianGoverdhan Singh." History of Himachal Pradesh (Hill states and British Paramountcy) (Delhi, Yngbodh Publishing House, 1982)*
3. *Punjab state Gazetteers, Mandi state. Vol. XII-A (Lahore, Supdt. Govt. Printing Punjab, 1920)*
4. *Rose H.A," A Glossary of the Tribes and casts of the Punjab and North-West-Forntier,vol-I*
5. *F.st. J.Gore: Lights and shades of Hill life. (Delhi, orient Publishes, 1972).*

Peace Education In Schools : A Need For Sustainable Development

Dr. Shubhra P. Kandpal
Assistant Professor, M.B.G.P.G. College, Haldwani (Uttrakhand)

shodhshree@gmail.com

Abstract

Mahatma Gandhi is the greatest apostle of peace after Buddha and Christ in the world. His notion of peace is centered on non-violence, individualism, soul-force and forgiveness. World peace is defined as an ideal of freedom, peace and happiness among and within all nations. Inner peace is the kernel of collective peace. The ability to respond justifiably and affirmatively to the needs and sufferings of others is the hallmark of authentic inner peace. Those who are at peace with themselves can be at peace with others. Peace is important because we need a better world in comparison to the modern world of hurry and worry. In the present research article, the author has tried to suggest some tips and techniques regarding peace education to the young ones. From all these ways, teachers can inculcate the value of peace in the children that is very much important for the sustainable development.

Keywords : *Peace Education , Sustainable development, Attitude, Skills, Curriculum, Learning, Values, Discussion, Discipline, Management.*

As stated, peace, as an integrative prospective for the school curriculum, is an idea whose time has come. The purpose of education goes beyond the propagation of knowledge. As Daniel Webster said, "Knowledge does not comprise all that contained in the larger term of education. The passions are to be restrained. True and worthy motives are to be inspired-and pure morality is to be inculcated in all circumstances". Again it can be said in the words of Wikipedia that it is the process of acquiring the values, the knowledge and developing the attitude, skills, with others and the with the natural environment.''

What is Peace Education : Share historically, moral instruction and value education were the precursors of education for peace. They have much in common. Religion, according to the National Curriculum Framework (NCFSE) –2000, is a source of value generation. Values and attitudes are the building blocks of the culture for peace. What, then, is unique to education for peace? Why should we bother ourselves or burden students with a new perspective?

Education for peace calls for a significant reduction, not an increase, in curriculum load. Peace embodies the joy of living. Learning, from the peace perspective, has to be a joyful experience. Joy is the essence of life. Peace is not unrelated to pace. In today's world hurry and worry sour the joy of learning and the harmony of life. This is the stark reality to which the increasing incidence of suicide among the students draws our attention.

Education for peace contextualizes learning. We live in an age of unprecedented violence: locally ,nationally and globally. It is a serious matter that school, are meant to be the nurseries of peace, become transmission points for violence. In such as violent and restless atmosphere, peace education may be called as the only hope.

Some Tips and Techniques are Suggested by the Author to Impart Peace Education to the Children in the Schools:

- **Learner Centred Approach :** It aims to develop learner autonomy and independence by putting responsibility for the learning path in the hands of students. This theory and practice are based on the constructivist learning theory that emphasizes the learner's critical role in constructing meaning from new information and prior experiences. This is in contrast to traditional learning. It requires students to be active and responsible participants in their own pace of learning. The freeship that is given by the teacher to the students gives them an energetic and creative thinking. This happy and healthy environment of class is very much associated with the feeling of co-operation and peace.
- **Use of Self Expression:** Child is a beautiful creation of God, on earth the teacher and the parents both have to work together to nurture it. Children have a great potential and energy to express their ideas. Children like to express their feelings, wishes, fancies and ideas in various forms. A good teacher can convert all these into learning activities. For example,
  - Expressing one's future wishes.
  - Getting into great character.
  - Expressing imaginary wishes and stories.
- **Use of Drama and Acting:** It is one of the most creative technique through which the heavy class room environment can be converted into healthy and entertaining as well. This leads to the ultimate peaceful and joyful state of mind of the learner as the learner can burst out their energy. For example, the teacher can give different adjectives like-happy, strong, sad etc. Firstly the teacher will do and then children will imitate. In another form of drama the teacher can set the scene by inviting a number of students for role playing. Role play develops children's skill in communication, they can help inculcation of good attitudes as well .Role play needs to be followed by reflections and discussions.
- **Use of Story Telling in Group**: Story telling is the most acceptable and effective means of teaching in India from generations. It helps in providing pleasure along with inculcating values and lessons of life among students.

To motivate creative thinking, children can sit in a circle and build a story. The first child start with a sentence, the second one adds another sentence and this process continues till the completion of the story in an acceptable form.

- **Use of Poetry and Songs**: Children can be easily motivated and guided for writing the simple and beautiful rhyming based on the theme of peace and values. This cultural activity will allow them to express their feeling before the class, this will strengthen their confidence. Their writing could be sung or recited.
- **In the Form of Group Discussion**: It is one of the most interesting form to engage the participants in a particular topic. These participants need to be well prepared. It is the duty of the

teacher that he should depute a specific student to start the group discussion in a right direction. The discussing group can sit in a circle in front of the class while the rest of the students of the class listen and observe .At the end of the discussion, the rest of the class can question and present their views on discussion. Through this smart way of interaction a value based theme can be discussed easily.

- **Use of Play and Games**: Different Psychological researchers has found that learning in a playful manner is very essential for the positive output. It can be said that along with the story telling, play and games is another beautiful form of learning for small learners.

Apart from the sheer physical development games help the children to learn skills like discipline(following the rules of a system), waiting for their turn, patience, tolerance and co-operation etc.

- **Appreciation and Affirmation by the Peer Group :** This creates self confidence and self esteem both in the child. Children express affection, positive remarks, appreciation and friendship for each other. For example in class –party or in a get-together a child is invited by name in the middle of the class room and then complimented by teacher and peer group as well. This positive feedback about himself makes him mentally and emotionally sound and peaceful. This game can be repeated with the every child of the class .
- **Teacher as a Role Model*:*** this is the era of child centred learning and the teacher has to put himself as a role model before his student. The duty of a teacher should be to observe the child in a supporting manner not to indicate towards the mistakes as it hampers the interest and lowers the respect of the teacher.

Punishment makes the child negative and destructive so it is not the ultimate solution. To create a peaceful atmosphere in the class-room the teacher should pay due respect to the children.

What Should be Done Regarding This?

To successfully implementation of any innovation, first of all the teachers need to develop *raising awareness and training*. This can be done through *in-service seminars* and school based sessions. The another aspect regarding peace education in schools is *counselling*. Counselling is one of the most important technique to handle the children. An intimate talk with the teacher can open the heart of a child easily. In today's world of hurry and worry, the problem of student's unrest is very common. *Class room management and school management* , both have to work in a systematic and planned way to maintain a peaceful atmosphere and *positive discipline* as well.

Peace Education—A Need For Sustainable Development: There are numerous United Nations declarations on the importance of peace education. Ban Ki Moon, former UN Secretary General, has dedicated the International Day of Peace 2013 to peace education in an effort to refocus minds and financing on the pre-eminence of peace education as the means to bring about the culture of peace. Koichiro Matsuura, the immediate past Director General of UNESCO, has written of peace education as being of, "Fundamental Importance to the mission of UNESCO and the UN". Peace education as a right is something which is now increasingly emphasised by peace researchers such as Betty Reardon and Douglas Roche. There has also been a recent mashing of peace education and human rights education.

Peace is often equated with the absence of violence. Gandhi ji's concept of peace is includes: The absence of tension, conflicts and all form of violence including terrorism and war. Peace implies the capacity to live together in harmony. So peace means -

1. The absence of exploitation and injustice of every kind.
2. International cooperation and understanding.
3. Peace of mind or the psycho-spiritual dimension of peace.

In the words of Gandhi ji, "By education, I mean an all-round drawing out of the best in child and man – body, mind and spirit."This 'all round development is associated specially with the inner strength of the child. It is the teacher as well parents who have to nurture the coming generation regarding this, because a sound body and mind are complementary to each other and resulted into a calm and peaceful personality.

The dream of RAM RAJYA of Gandhi ji may be possible only by providing peace education to the children in their childhood. Peace education is a right of all children, not only those living in situation of armed conflict. It is a long term process that can take place in any learning environment.

References

1. *Badheka Giju Bhai, (2001), Prathmik Vidyalaya Ki Shiksha Padhatiya, Gitanjali Prakashan, Jaipur.*
2. *Badheka Giju Bhai,(2006),Chalte Phirte Shiksha, Ankit Publication, Jaipur.*
3. *Gandhian Values in Primary Education,(1970), National Seminar On Elementry Education Series, Vigyan Bhavan,New Delhi.*
4. *Galtung, (1996),Peace by Peaceful Means: Peace and Conflict, Development and Civilization, London.*
5. *Mahalingam, K. (1992), Educational Thoughts of Gandhiji and Their Relevance To Contemporary Education, M. Phil., Education, Annamalai University.*
6. *National Curriculum Framework (2005),Position Paper, Education for Peace.*
7. *New Era Development Institute(2002), Peace Education Activities for Children: A Teacher's Guide, Panchgani.*

Administrative and Political Structure of Pakistan

Surya Prakash Sharma
Assistant Professor, R. L. Saharia Government College, Kaladera

shodhshree@gmail.com

Abstract

Pakistan faced a lot of challenges after getting independence. After lost of Muhammad Ali Jinnah and Liaqat Ali Khan in early period, emergence of conflicting occurred in Pakistan. Constitution declared Pakistan as a Federal Republic to be known as the Islamic Republic of Pakistan consists of two Houses, the National Assembly and the Senate as well as the powerful Judiciary system but The military in Pakistan has played an influential role in mainstream politics, having taken over from civilian governments several times but Major Political Parties has been proving there powerful existing time to time during general elections .

Keywords : *Democracy, Military Rule, Parliament, Senate, Political Party, Executive ,Judiciary, Federation, Shariat.*

After the first few years of its' birth of Pakistan, it faced a number of challenges. The first of two major deaths, first in 1948 of its first head of state, Muhammad Ali Jinnah, and then the assassination in 1951 of its first Prime Minister, Liaqat Ali Khan, destabilized the new country, and may have been the cause of the emergence of conflicting visions of the ideological direction the country ought to pursue. It took almost eight years (till 1956) to agree to a final constitution, establishing Pakistan. Within two years, the new parliamentary system was facing challenges, and in 1958, General Ayub Khan launched Pakistan's first military coup, declaring martial law. In 1960 Khan became President, and by 1962, Pakistan saw its' second constitution, with politics placed in the firm grip of the military. At this point, the turmoil caused by the failure to win a second war with India in 1965, mounting corruption and increasingly taxing relations with East Pakistan gradually undermined Khan's authority, finally forcing his resignation in 1969. The first election on a nationally democratic basis was conducted in 1970. The elections saw the primarily East-Pakistan based Awami League, lead by Shaikh Mujibur Rahman, gaining an overall majority. This set the stage for a new constitutional crisis where, in the period following, relations between East and West Pakistan further polarised. In March 1971 Mujibur Rahman declared an independent People's Republic of Bangladesh, setting the stage for a nine month long civil war. In December 1971, India interceded in support of East Pakistan, and the ensuing Indo-Pak war resulted in a humiliating surrender by Pakistani forces. The surrender also marked the emergence of the former East Pakistan as an independent country, Bangladesh.

General Yahya Khan resigned the presidency in the aftermath of the war, and handed over leadership to Zulfiqar Ali Bhutto, Ayub Khan's former Foreign Minister, and the founder and leader of the Pakistan

People's Party, which had won the majority of seats from West Pakistan in the elections of 1970. Bhutto became President and also the first civilian Chief Martial Law Administrator. The National Assembly approved the 1973 Constitution on April 10, 1973, and it came into effect on August 14. Bhutto took over as the Prime Minister of Pakistan from this date and FazalIlahi Chaudhry was appointed as the President of Pakistan.

The 1973 Constitution declared Pakistan as a Federal Republic to be known as the Islamic Republic of Pakistan, recognizing Islam as the religion of the state. Pakistan was to be a Federation of four federating Units, Punjab, Sindh, the NWFP and Baluchistan. The Constitution was parliamentary in nature, with a bicameral legislature at the Center consisting of two Houses, the National Assembly and the Senate.

Executive

The 1973 Constitution lay down that the President was to be the Head of the State. The President was to act on the advice of the Prime Minister of Pakistan, and could be removed on the grounds of physical or mental incapacity or impeached on charges of violating the Constitution or gross misconduct by a two-thirds vote of the members of the parliament.

The President

The President of Pakistan is chosen by a secret ballot through an Electoral College comprising the Members of the Senate, National Assembly and the Provincial Assemblies. There are certain condition to elect President like, A person who is a Muslim and not less than 45 years of age and is qualified to be elected as a Member of the National Assembly can contest the Presidential election. The President is elected for a term of 5 years and is authorized to appoint the Attorney General, Judges of Supreme Court and High Courts, and the Chief Election Commissioners. In the Provincial Government, each province was to have a Governor appointed by the President. He could be re-elected but could not hold office for more than two terms.

The Prime Minister

The Prime Minister is appointed by the President from among the members of the National Assembly, and has to demonstrate majority support in the House. The Prime Minister is assisted by the Federal Cabinet, a council of ministers whose members are appointed by the President on the advice of the Prime Minister. The Federal Cabinet comprises the ministers, ministers of state, and advisers.

Legislature

The bicameral federal legislature is the Majlis-i-Shoora (Council of Advisers), consisting of the Senate (upper house) and National Assembly (lower house).

The National Assembly

Members of the National Assembly are elected by universal adult suffrage (over eighteen years of age in Pakistan). The National Assembly has 342 seats, 272 of which are elected on a first-past-the-post basis. The candidate who gains the major number of votes in a single constituency is nominated elected member of the National or Provincial Assembly. Of the 70 remainder seats, 60 are reserved for women and ten for non-Muslim minorities; they are allocated, on the basis of proportional representation, to parties that win more than 5% of the directly elected seats. National Assembly members serve for the parliamentary term, which is five years, unless they die or resign sooner, or unless the National Assembly is dissolved.

The Senate

The Senate is a permanent legislative body with equal representation from each of the four provinces, elected by the members of their respective provincial assemblies. The chairman of the Senate, under the constitution, is next in line to act as President should the office become

vacant and until such time as a new President can be formally elected. The Federally Administered Tribal Areas (FATA) and Islamabad Capital Territory also have representatives presenting the Senate, which has a total of 100 members. The term of the members of the Senate is 6 years. However, the term of the first group of the Senators, who shall retire after completion of first 3 years of the Senate, is determined by drawing of lots by the Chief Election Commissioner.

Both the Senate and the National Assembly can initiate and pass legislation except for money bills, where the National Assembly has an edge over the Senate, legislating exclusively on money matters. Only the National Assembly can approve the federal budget and all money bills. With exception to money matters, however, both the Houses work together to legislate. The President is required to assent to bills passed by both houses within ten days. However, in all bills except the Finance Bill, the President may return the Bill to the parliament with a message requesting that the Bill be reconsidered and that an amendment specified in the message be considered. The parliament is supposed to reconsider the Bill in a joint sitting. If the Bill is passed again, with or without amendment, by vote of the majority of the members present and voting, it is presented to the President and the President is required to give his assent within ten days.

Removal of President and Prime Minister

There is a democratic procedure to remove the Prime Minister from his office if he loses the confidence of the majority of the members of the National Assembly. In such a situation, a resolution for a vote of no-confidence is moved by not less than 20% of the total membership of the National Assembly. If the resolution is passed by the majority of the total membership of the National Assembly, the Prime Minister immediately relinquishes powers.

Similarly, for the removal or impeachment of the President, not less than one-half of the total membership of either House may give in writing its intention to do so, to the Speaker of the National Assembly, or, as the case may be, to the Chairman Senate, for moving a resolution for the purpose. If, in a joint sitting of the two Houses, convened for the purpose, the resolution is passed by the votes of not less than two thirds of the total membership of the Parliament, the President ceases to hold office immediately.

In case an emergency is proclaimed, the Parliament holds the authority to extend the term of the National Assembly. Under the Constitution, the Parliament may also, on the request of the Federal Government, confer functions upon officers or authorities subordinate to the Federal Government.

Judiciary

The 1973 Constitution provided for a free and independent Judiciary. The Constitution guarantees a right to the citizens to be protected by law, and imposed two duties on them, loyalty to the Republic and obedience to the law. The Constitution conferred several kinds of fundamental rights to the people such as the right to life, liberty, equality and freedom of speech, trade and association. The Constitution also declared any laws inconsistent with or derogatory to fundamental rights as null and void.

The judiciary includes the Supreme Court, provincial high courts, and other lesser courts exercising civil and criminal jurisdiction. The Supreme Courts, the apex court in Pakistan's judicial hierarchy, the final arbiter of legal and constitutional disputes. The Supreme Court of Pakistan consists of a Chief Justice and not more than 16 other Judges appointed by the President.

The chief justice of the Supreme Court is appointed by the President. The chief justice and judges of the Supreme Court may remain in

office until age sixty-five. The Supreme Court has original, appellate, and advisory jurisdiction. Judges of the provincial high courts are appointed by the President after consultation with the chief justice of the Supreme Court, as well as the governor of the province and the chief justice of the high court to which the appointment is being made. High courts have original and appellate jurisdiction.

In 2007, for the first time in Pakistan's history, the sitting Chief Justice was suspended by the government on charges of abuse of power. The Chief Justice was given the option to resign, but upon his refusal to comply with this "order," he was removed under a series of charges, including violating the norms of judicial propriety, corruption, seeking favours and misbehaving with senior lawyers. In response, the Chief Justice, Iftikhar Muhammad Choudhary, decided to challenge his suspension in the Supreme Court of Pakistan. The Chief Justice's suspension was followed by widespread protests on the part of the legal community, civil society, and almost all political parties in the country. On 20 July 2007, Justice Choudhary was reinstated to his position as Chief Justice in a ruling by the thirteen-member bench of the Supreme Court headed by Justice Khalilur Rehman Ramday. All thirteen of the sitting justices agreed that General Musharraf's action had been illegal, and ten of the thirteen ordered the reinstatement and ruled that he "shall be deemed to be holding the said office and shall always be deemed to have been so holding the same." After having been elected as President for second term by the Parliament, General Musharraf, in November 2007 pre-empted an impending court decision against his re-election, suspended the constitution, and declared a state of emergency. Justice Choudhary convened a seven-member bench which issued an interim order against this action. He and other judges were again removed from their offices and put under house arrest along with his family members. Justice Choudhary was reinstated only in 16 March 2009, seven months after the resignation of General Musharraf as President, and only after another protracted protest on the part of a number of groups. While the first phase of protests had focused on the unconstitutional action of General Musharraf, the post August 2008 protests were focused on the apparent reluctance of the then newly elected government to reinstate the Chief Justice.

The Federal Shariat Court constitutes another key pillar of the judiciary and consists of eight Muslim judges, including a chief justice appointed by the President. Three of the judges are *ulema*, that is, Islamic Scholars, and are supposed to be well versed in Islamic law. The Federal Shariat Court has original and appellate jurisdiction. This court decides whether any law is repugnant to the injunctions of Islam. The court also hears appeals from decisions of criminal courts under laws relating to the enforcement of *hudood* laws that is, laws pertaining to such offenses as intoxication, theft, and sexual intercourse outside marriage.

In addition, there are special courts and tribunals to deal with specific kinds of cases, such as drug courts, commercial courts, labour courts, traffic courts, an insurance appellate tribunal, an income tax appellate tribunal, and special courts for bank offenses. Appeals from special courts go to high courts, with the exception of labour and traffic courts, which have their own forums for appeal. Appeals from the tribunals go to the Supreme Court.

Within the constitution, the office of *Wafaqi Mohtasib*or Ombudsman is provided for, as established in many early Muslim states, to ensure that citizens had a forum on which to register complaints against public officials. Appointed by the President, the Mohtasib holds office for four years. The term cannot be extended or renewed. The Mohtasib's purpose is to institutionalize a system for enforcing administrative accountability, through

investigating and rectifying any injustice done to a person through maladministration by a federal agency or a federal government official. This institution is designed to bridge the gap between administrator and citizen, to improve administrative processes and procedures, and to help curb misuse of discretionary powers.

Military

The military in Pakistan has played an influential role in mainstream politics, having taken over from civilian governments on four occasions. Military governments were led by (in the 1960s) General Ayub Khan and General Yahya Khan, (in the late 1970s and 1980s) General Zia-ul-Haq, and (from 1999 to 2008), General Pervez Musharraf. In total, military or military backed civilian regimes have been in power for half of the years of the country's existence.

The influence of the military extends far beyond its constitutional role even in times of civilian rule. The military high command has on occasion acted as a mediator between the government and other state actors, and between political leaders. In addition it has exerted strong behind the scenes influence on foreign policy, particularly with regard to relations with India and Afghanistan. The military also has economic interests in Pakistan which it seeks to protect.

Elections

Pakistan's electoral history is characterised by the eternal tussle between the civilian and military regimes, with almost half of its existence being characterized by outright military, or military sponsored rule. Nevertheless, an analysis of election trends since 1970 showing that there are four clusters of voters in Pakistan, namely the PPP cluster, the Muslim League(s) cluster (i.e. the various factions of the party), the Religious Parties Cluster and the Regional Parties cluster (PILDAT 2008).

In terms of political stability, the past decade has been a tumultuous one for the country. The 1990s were characterised by coalition politics dominated by the Pakistan Peoples Party and Muslim League. India.s nuclear test .Pokhran-II. triggered Pakistan to conduct two nuclear tests in Balochistan in May of 1998. The following year, the Kargil conflict was followed by a coup d.état by General Pervez Musharraf, ousting Prime Minister Nawaz Sharif. In 2001, Musharraf become the President and after the 2002 parliamentary elections, Musharraf transferred executive powers to the newly elected Prime Minister Jamali, who was succeeded in the 2004 prime-ministerial election by Shaukat Aziz.

On 15 November 2007, the National Assembly, for the first time in Pakistan's history, completed its tenure and new elections were called. The exiled political leaders Benazir Bhutto and Nawaz Sharif were permitted to return to Pakistan. However, the 2008 Pakistani election was dealt a great shock on 27 December 2007 when Benazir Bhutto was assassinated while leaving a rally in Rawalpindi, leading to nationwide riots. The Pakistani Election Commission announced after a meeting in Islamabad that the election would take place on 18 February, after a five week delay. The PPP then decided to name Bhutto's son, Bilawal Bhutto Zardari, the new party leader with his father Asif Ali Zardari as co-chairman.

Local government

Prior to 2001, the sub-provincial tier of government was composed of 26 divisions, with two further tiers (districts and tehsils) administered directly from the provincial level. Under the 2001 Local Government Ordinance (LGO), the divisions were abolished and a new three-tiered system of local government came into effect, comprising districts, tehsils and union councils, with an elected body at each tier.

At present, Pakistan is still a two-tiered federal

state, not incorporating the local governments as a constitutionally recognised third level of government. The 17th Constitutional Amendment offered the local government system six years of protection (roughly from 2002 to 2009), during which the changes to the local government legislation could not be made by the provinces without the approval of the President (ADB et. al, 2004). The LGO, however, lapsed in the end of 2009, existing local governments ceased to hold office, and each provincial government is now supposed to finalize its own local government plan, and get appropriate legislation approved by its provincial assembly. This process is at various stages across the four provinces. There are currently 113 districts in Pakistan-proper, each with several tehsils and union councils.

Provincial Governments

Each province has a governor, a Council of Ministers headed by a chief minister appointed by the governor, and a provincial assembly. Members of the provincial assemblies are elected by universal adult suffrage. Provincial assemblies also have reserved seats for minorities. After the passage of the 18th Amendment to the Constitution, there is now a well-defined division of responsibilities between federal and provincial governments. Most of the services in areas such as health, education, agriculture, and roads, for example, are provided by the provincial governments.

Major Political Parties

Pakistan Peoples Party Parliamentarians (PPPP)-

The Pakistan Peoples Party is a center-left political party, which originally campaigned on a socialist platform, but is now considered more centrist. The party was founded in 1967, by Zulfikar Ali Bhutto. The party gained much popularity and support prior to Pakistan's split with Bangladesh, winning the bulk of seats in West Pakistan in the elections of1971 with its pledge of providing *"Roti, Kapra aurMakaan"* (food, clothing and shelter) to the people. The Pakistan Peoples Party Parliamentarians (PPPP) is a party formed in 2002 by the PPP for the purpose of complying with electoral rules governing Pakistani parties, which did not allow the original PPP to contest elections. The Pakistan Peoples Party (PPPP) is a mainstream political party in Pakistan, which was led by Bhutto's daughter Benazir until 2007 when she was assassinated. The Bhutto dynasty continues with Benazir's son Bilawal 'inheriting' Chairmanship of the party, with his father Asif Ali Zardari as co-chairman and current President. The PPP has held government four times since its formation, and is the largest political party of Pakistan.

Pakistan Muslim League Nawaz (PML-N)

The Pakistan Muslim League is a center-right party which has also held power on two occasions. The party was founded in 1962 as a successor to the previously disbanded Muslim League, and gained the (Nawaz) or (N) label in 1993 for its leader, Nawaz Sharif. PML-N is the second biggest party in Parliament. Mian Nawaz Sharif the leader of the party, has been elected Prime Minister on two occasions, but on neither instance was the party able to complete its term.

Pakistan Muslim League (PML-Q)

PML-Q is another centrist political party, and was formed in 2001, when the Pakistan Muslim League split into several factions on the removal of the Nawaz Sharif government by General Musharraf. The party supported former President Pervez Musharraf and was in power, as the lead member of a coalition, from 2002 to 2007.

Muttahida Qaumi Movement (MQM*)*

The MQM began life as a party formed for the Urdu speaking Mohajir community based in Karachi and Hyderabad. It was founded and is currently led by Altaf Hussain, who has lived in self-imposed exile in London since 1992. The

party originated as an ethnic student organization in 1978 from the University of Karachi. The organization maintains liberal, progressive and secular stances on many political and social issues. In 1997, the MQM officially removed the term Mohajir (or refugee, which denotes the party's roots of Urdu-speaking Muslims) from its name, and replaced it with Muttahida (meaning "United"), in an attempt to widen its appeal outside urban Sindh.

Awami National Party (ANP)

The Awami National Party (ANP) is a leftist, secular political party, with a long history in Khyber Pakhtunkhwa under different names. The current leadership are descendants of Pakhtun leaders who were affiliated with the Congress Party in pre-partition India.

Pakistan Tehreek-e-Insaf (PTI)

In 1997, former cricketer Imran Khan started a socio-political movement in Pakistan known as Movement for Justice (Urdu: Tehreek-e-Insaaf). As the fastest growing political party in Pakistan, PTI is establishing itself as one of the country's mainstream national parties, and is said to have made tremendous strides in gaining support in the last two to three years.

Other than the parties listed above, the religious parties, Muttahida Majlis- e- Amal or MMA mainly the Jamaat-i-Islami and the Jamiat Ulema- e- Islam (Fazlur Rehman group) have been represented in parliament.

References

1 *HACKETT, J. (Eds.). The Military Balance 2010. International Institute for Strategic Studies. London, 2010.*

2 *MEZZERA, M., AFTAB, S. Pakistan State–Society Analysis. Netherlands Institute for International Relations, Conflict Research Unit, Clingendael. The Hague, January 2009.*

3 *SIDDIQA, Ayesha. Military Inc: Inside Pakistan's Military Economy. Oxford University Press. 2007.*

4 *US LIBRARY OF CONGRESS. A Country Study: Pakistan. 1995*

5 *ASIAN DEVELOPMENT BANK. Devolution in Pakistan: Overview of the ADB/DfID/World Bank Study. Department for International Development, World Bank (2004).*

Demonitazation In India : 2016

Dr. Pooja Metha
Assistant Professor, H.H.M.H.S. Memorial Girls College, Jodhpur

shodhshree@gmail.com

Abstract

In 2016, the Indian government decided to demonetize the 500- and 1000- rupee notes, the two biggest denominations in its currency system; these notes accounted for 86% of the country's circulating cash. With little warning, India's Prime Minister Narendra Modi announced to the citizenry on Nov. 8 that those notes were worthless, Active immediately – and they had until the end of the year to deposit or exchange them for newly introduced 2000 rupee and 500 rupee bills. The government's goal (and rationale for the abrupt announcement) was to combat India's thriving underground economy on several fronts: eradicate counterfeit currency, fight tax evasion (only 1% of the population pays taxes), eliminate black money gotten from money laundering and terrorist financing activities, and to promote a cashless economy. Individuals and entities with huge sums of black money gotten from parallel cash systems were forced to take their large-denomination notes to a bank, which was by law required to acquire tax information on them. If the owner could not provide proof of making any tax payments on the cash, a penalty of 200% of the owed amount was imposed.

Keywords: *Demonitazation, Currency system, Economy, Black Money, Cashless System.*

Demonetization is the act of stripping a currency unit of its status as legal tender. It occurs whenever there is a change of national currency: The current form or forms of money is pulled from circulation and retired, to be replaced with new notes or coins. Sometimes, a country completely replaces the old currency with new currency. On 8 November 2016, the Government of India announced the demonetisation of all ₹500 and ₹1000 banknotes of the Mahatma Gandhi Series. It also announced the issuance of new ₹500 and ₹2000 banknotes in exchange for the demonetised banknotes.[2] The government claimed that the action would curtail the shadow economy and reduce the use of illicit and counterfeit cash to fund illegal activity and terrorism.

The announcement of demonetisation was followed by prolonged cash shortages in the weeks that followed, which created significant disruption throughout the economy. People seeking to exchange their banknotes had to stand in lengthy queues, and several deaths were linked to the rush to exchange cash. According to a 2018 report from the Reserve Bank of India, approximately 99.3% of the demonetised banknotes, or ₹15.30 lakh crore of the ₹15.41 lakh crore that had been demonetised, were deposited with the banking system. The banknotes that were not deposited were only worth ₹10,720

crore, leading analysts to state that the effort had failed to remove black money from the economy. The BSE SENSEX and NIFTY 50 stock indices fell over 6 percent on the day after the announcement. The move reduced the country's industrial production and its GDP growth rate.

Initially, the move received support from several bankers as well as from some international commentators. The move was also criticised as poorly planned and unfair, and was met with protests, litigation, and strikes against the government in several places across India. Debates also took place concerning the move in both houses of parliament.

Content

- Dramatic Examples Of Demonetization
- Background
- Demonetisation Process
  - Preparation And Announcement
  - Cash exchange and withdrawal
  - Ordinance And Act
- Objective And Out Come
  - Back Money
  - Evasion
  - Digital Payment
  - Banknotes in circulation
  - Terrisiom And Internal Security
- Other Effect
  - Cash Shortage
  - Transportation
  - Stock Market
  - Industrial Output
  - Agriculture
  - Welfare Scheme
  - Death

Dramatic Examples of Demonetization

The Coinage Act of 1873 demonetized silver as the legal tender of the United States, in favor of fully adopting the gold standard. Several coins, including two-cent piece, three-cent piece, and half dime were discontinued. The withdrawal of silver from the economy resulted in a contraction of the money supply, which subsequently led to a five-year economic depression throughout the country. In response to the dire situation and pressure from farmers and silver miners and refiners, the Bland-Allison Act demonetized silver as legal tender in 1878.

An example of demonetization for trade purposes occurred when the nations of the European Union began to use the euro as their everyday currencies in 2002. When the physical euro bills and coins were introduced, the old national currencies, such as the German mark, the French franc and the Italian lira were demonetized. However, these varied currencies remained convertible into Euros at fixed exchange rates for a while to assure a smooth transition.

In 2015, the Zimbabwean government demonetized its dollar as a way to combat the country's hyperinflation, which was recorded at 231,000,000%. The three-month process involved expunging the Zimbabwean dollar from the country's financial system and solidifying the U.S. dollar, the Botswana pula and the South African rand as the country's legal tender in a bid to stabilize the economy.

Background

The Indian government had demonetised bank notes on two prior occasions—once in 1946 and once in 1978—and in both cases, the goal was to combat tax evasion via "black money" held outside the formal economic system. In 1946, the British Raj government removed notes of 500, 1000, and 10,000 from circulation. In 1978, the Janata Party coalition government demonetised banknotes of 1000, 5000 and 10,000 rupees, again in the hopes of curbing counterfeit money and black money.

In 2012, the Central Board of Direct Taxes recommended against demonetisation, saying in a report that "demonetisation may not be a solution for tackling black money or shadow economy, which is largely held in the form of benami properties, bullion and jewellery." According to data from income tax probes, black money holders kept only 6% or less of their wealth as cash, suggesting that targeting this cash would not be a successful strategy. The Bharatiya Janata Party (BJP) had previously expressed opposition to demonetisation. BJP spokesperson Meenakshi Lekhi had said in 2014 that members of the public who were often illiterate and had no access to banking facilities would be adversely affected by such a policy.

Demonestisation Process

Preparation and Announcement

The plan to demonetise the ₹500 and ₹1000 banknotes was initiated between six and ten months before it was announced, and was kept confidential. In April 2016, a report by the State Bank of India analysed possible strategies and effects demonetisation. In May 2016, the Reserve Bank of India had started preparing for new banknotes and confirmed the design of₹2000 banknotes in August 2016. The printing of new banknotes started in October when the news stories of forthcoming new banknotes appeared in the media. On 27 October 2016, the Hindi daily Dainik Jagran published a report quoting RBI sources speaking of the forthcoming of ₹2000 banknotes alongside withdrawal of ₹500 and ₹1000 banknotes. On 21 October 2016, The Hindu Business Line had also published a report on forthcoming ₹2000 banknote.

The Union cabinet was informed about the plan on 8 November 2016 in a meeting in the evening called by the Indian Prime Minister Narendra Modi. Soon after the meeting, Modi announced the demonetisation in an unscheduled live national televised address at 20:15 IST. He declared circulation of all ₹500 and ₹1,000 banknotes of the Mahatma Gandhi Series as invalid effective from the midnight of the same day, and announced the issuance of new ₹500 and ₹2,000 banknotes of the Mahatma Gandhi New Series in exchange for the demonetised banknotes.

Cash Exchange And Withdrawal

The Reserve Bank of India stipulated that the demonetised banknotes could be deposited with banks over a period of fifty days until 30 December 2016. The banknotes could also be exchanged for legal tender over the counter at all banks. The limit for such exchange was ₹4,000 per person from 8 to 13 November, was increased to ₹4,500 from 14 to 17 November, and reduced to ₹2,000 from 18 to 25 November.

Cash withdrawals from bank accounts were restricted to ₹10,000 per day and ₹20,000 per week per account from 10 to 13 November. This limit was increased to ₹24,000 per week from 14 November 2016.RBI increased the withdrawal limit from Savings Bank account to ₹50,000 from the earlier ₹24,000 on 20 February 2017 and then on 13 March 2017, it removed all withdrawal limits from Savings Bank Accounts. A daily limit on withdrawals from ATMs was also imposed varying from ₹2,000 per day till 14 November, and ₹2,500 per day till 31 December. This limit was increased to ₹4,500 per day from 1 January,and again to ₹10,000 from 16 January 2017.From 17 November, families were allowed to withdraw ₹250,000 for wedding expenses. Farmers were permitted to withdraw ₹25,000 per week against crop loans.

Ordinance and Act

The Specified Bank Notes (Cessation of Liabilities) Ordinance, 2016 was issued on 28 December 2016, ending the liability of the government for the demonetised banknotes. The ordinance also imposed fines on people

found carrying out transactions with them after 8 November 2016, or holding more than ten of them after 30 December 2016. It provided for the exchange of the banknotes after 30 December for people who had been outside India between 9 November and 30 December. The Specified Bank Notes (Cessation of Liabilities) Act, 2017 was notified on 1 March 2017, replacing the ordinance.

Objectives and Outcome

The government said that the main objective of the exercise was curbing black money which included income which had not been reported and thus was untaxed; money gained through corruption, illegal goods sales and illegal activities such as human trafficking; and counterfeit currency. Other stated objectives included expanding the tax base and increasing the number of taxpayers; reducing the number of transactions carried out by cash; reducing the finances available to terrorists and radical groups such as Maoists and Naxalites; and integrating the formal and informal economies.

Black Money

The government had estimated that ₹3 lakh crore, or approximately 20%, of the demonetised banknotes would be permanently removed from circulation. However, according to a 2018 report from the RBI, approximately 99.3% of the demonetised banknotes, or ₹15.30 lakh crore of the ₹15.41 lakh crore that had been demonetised, were deposited with the banking system. The banknotes that were not deposited were only worth ₹10,720 crore. Commentators concluded that the government failed in its aim of purging black money from the economy.

Evasion

There have been reports of people circumventing the restrictions imposed on exchange transactions by conducting multiple transactions at different bank branches and also sending hired people, employees and followers in groups to exchange large amounts of demonetised banknotes at banks. In Gujarat, Delhi and many other major cities, sales of gold increased post-demonetisation, with an increased 20 to 30% premium surging the price as much as ₹45,000 (US$630) from the ruling price of ₹31,900 (US$440) per 10 grams (0.35 oz). The Enforcement Directorate raided several forex establishments making backdated entries. Money laundering using backdated accounting was carried out by co-operative banks, jewellers, sellers of mobile phones, and several other businesses.

The cash deposited into hundis, or cash collection boxes in temples and gurudwaras are exempted from inquiry by the tax department which is sometimes misused to launder money. After the demonetisation, there was a spike in donations in the form of the demonetised banknotes in temples. People had booked large number of railway tickets to dispose unaccounted cash. It came to notice of the Indian Railways authorities which imposed restrictions to check evasion.

Digital Payments

The push for the digital payments was one of the stated intention of the demonetisation. There was immediate and sharp jump in the digital payments in November–December 2016 owing to shortage of cash. The debit card point of sale transactions was twice the size of value suggested by trend before the demonetisation. The value of credit card increased but no sharp growth was seen. The mobile wallet transactions picked immediately after the demonetisation followed by dip in mid-2017 due to easing cash shortage.

Banknotes In Circulation

Before demonetisation (November 2016), there were banknotes worth ₹17.97 lakh crore in the market. The demonetised banknotes constituted 86.4% of it. By March 2018, there were banknotes worth ₹18.03 lakh crore in the market; increase of 9.9%. New banknotes of

₹2000 and ₹500 constitute 80.6% of it. So there was only 5.8% increase in small domination banknotes.

Terrorism and Internal Security

Initially there was a decrease in the activities and attacks by Maoist and Naxalite radical groups which was attributed to lack of finance following demonetisation. The surrender rate had reached its highest. The activities returned within few months. There was a decrease in the terror activities in Jammu and Kashmir.

Other Effects

Cash Shortage

The scarcity of cash due to demonetisation led to chaos, and people faced difficulties in depositing or exchanging the demonetised banknotes due to long queues outside banks and ATMs across India. The ATMs were short of cash for months after demonetisation.

During the demonetisation, the unaccounted money worth ₹610 crore were seized by the police and tax officials across India which included ₹110 crore in new banknotes.

Transportation

The All India Motor Transport Congress claimed that about 800,000 truck drivers and conductors were affected with shortage of cash, with around 400,000 trucks stranded at major highways across India. While major highway toll junctions on the Gujarat and Delhi-Mumbai highways also saw long queues as toll plaza operators refused the demonetised banknotes.

Stock Market

As a combined effect of demonetisation and US presidential election, the stock market indices dropped to an around six-month low in the week following the announcement. The day after the demonetisation announcement, BSE SENSEX crashed nearly 1,689 points and NIFTY 50 plunged by over 541 points. By the end of the intraday trading section on 15 November 2016, the BSE SENSEX index was lower by 565 points and the NIFTY 50 index was below 8100 intraday. There was a marginal effects on stock market during November–December 2016. A data study (July 2016 - February 2017) of 54 companies across 13 sectors listed with the NSE showed that companies in cement, cotton and rubber sectors showed an increase in total trades while companies in automotive, clothing, foods, paper, real estate, retail, steel, sugar, tea and textiles sectors showed a decrease in total trades after demonetisation. Demonetisation had a negative impact on stock market returns evidenced from NIFTY 50 and other NIFTY sectoral indices.

Industrial Output

There was a reduction in industrial output as industries were hit by the cash shortage. The Purchasing Managers' Index (PMI) fell to 46.7 in November 2016 from 54.5 in October 2016, recording its sharpest reduction in three years. A reading above 50 indicates growth and a reading below shows contraction. This indicates a slowdown in both, manufacturing and services industries. The PMI report also showed that the reduction in inflation in November 2016 was due to shortage in money supply.

Agriculture

Transactions in the agriculture sector are heavily dependent on cash and were adversely affected by the demonetisation. Due to scarcity of the new banknotes, many farmers have insufficient cash to purchase seeds, fertilisers and pesticides needed for the plantation of rabi crops usually sown around mid-November.

The shortage of cash led to plunge in demand which in turn led to a crash in the prices of crops. Farmers were unable to recover even the costs of transportation from their fields to the market from the low prices offered.

Welfare Schemes

Demonetisation negatively impacted the Midday Meal Scheme due to shortage of funds.

Deaths

Several people were reported to have died from standing in queues for hours to exchange their demonetised banknotes. Deaths were also attributed to lack of medical help due to refusal of demonetised banknotes by hospitals. By the end of December 2016, political opposition leaders claimed that over 100 people had died due to demonetisation. In March 2017, the government stated that they received no official report on deaths connected to demonetisation.

References

1. *India's Demonetisation Kills 100 People Apparently - This Is Not An Important Number"*
2. *"Withdrawal of Legal Tender Status for 500 and 1000 Notes: RBI Notice (Revised)"· Reserve Bank of India. 8 November. Retrieved 8 November.*
3. *"Here is what PM Modi said about the new Rs 500, Rs 2000 notes and black money". India Today. 8 November. Retrieved 9 November.*
4. *"Notes out of circulation" The Times of India. 8 November. Saikia, Bijoy Sankar (18 November). "Demonetisation may drag India behind China in GDP growth, rob fastest-growing economy tag". The Economic Times. Retrieved 5 January.*
5. *"The dire consequences of India's demonetisation initiative" The Economist. 3 December. Retrieved 5 January .*
6. *"Demonetization Announcement Anniversary | Onmanorama". OnManorama. Retrieved 7 November.*
7. *"India demonetisation: Chaos as ATMs run dry"*
8. *Al Jazeera. 9 November. Retrieved 9 November.*
9. *"Demonetisation: Chaos grows, queues get longer at banks, ATMs on weekend" Indian Express. 12 November .*
10. *"100 days of demonetisation: Stories of hardship" . Al Jazeera.*

Shodh Shree

(A Peer Reviewed International Refereed Journal)

ISSN 2277-5587 RNI No. RAJHIN / 2011 / 40531

54A, Jawahar Nagar Colony, Tonk Road, Jaipur - 302018
Shodhshree@gmail.com

Individual Subscription Form

Name .....

Designation .....

Name of Organization .....

.....

Address .....

.....

District .....

State

.....

Pin .....

Tel. No. (R) .....

Mobile .....

e-mail .....

Date (Signature)

Frequency	:	Shodh Shree is Published four time in a year (Quarterly) i.e. January, April , July & October.
Mode of Payment	:	Subscription fee can be deposit through online Banking.
Bank Details	:	Virendra Sharma, OBC Bank, Adarsh Nagar, jaipur SB A/C No. 06722151002965, IFSC Code ORBC 0100672, MICR Code 302022005 Subscription Fees - 1800 Rs.

Membership No. ..... Date .....

(For Office Use only)

DECLARATION FORM FOR CONTRIBUTORS

I.....

hereby declared that the paper entitled'.....

.....'is unpublished original paper which is not sent any where for publication.

This paper is prepared by me/jointly with.....

.....which is exclusively for your journal entitle 'Shodh Shree'.

I/We will not demand any honorarium for the same expect one copy of the Journal in which this paper will appear. Please send copy of the Journal at the address of author whose name is appeared at first,

Copy right of matter is with Shodh Shree. I/We will not reproduce it in any other journal of book except prior permission of the Chief Editor.

Signature .....

Name .....

Designation .....

Official Address .....

.....

Residential Address .....

.....

.....

Phone No. ..... Pin No. .....

e-mail Address .....

Shodh Shree

(A Peer Reviewed International Refereed Journal)

ISSN 2277-5587 RNI No. RAJHIN / 2011 / 40531

54A, Jawahar Nagar Colony, Tonk Road, Jaipur - 302018
Shodhshree@gmail.com

Institutional Membership Form

The Editor
Shodhshree
Jaipur

Dear Sir
I want to become a member of this Journal for -

☐ 1 year	☐ 2 years	☐ 3 years
(Rs. 1000/-)	(Rs. 1800/-)	(Rs. 2500 /-)

I am sending here with Rs..... through online banking/cash for membership of your Journal.

Name of Institution .....

.....

Address.....

..... Pin Code.....

Phone/Mobile No. .....

E-mail ID .....

Date: Signature

For Office Use Only

Membership No. _____ Date _____

Frequency : Shodhshree is Published four time in a year(Quarterly) i.e. January, April, July, October.

Mode of Payment : Subscription fees can be deposit through online Banking.

Bank Details : Cheque /DD must be in Favor of Virendra Sharma ,OBC Bank, Adarsh Nagar, Jaipur
SB A/C NO.06722151002965
IFSC Code ORBC0100672, MICR Code 302022005

Guidelines for the Contributors

1. All research paper must be typed in Microsoft Word and use KRUTI DEV 010 font for Hindi or Times New Roman Font for English can submit by C.D. or through e-mail.

2 All manuscripts must be accompanied by the brief abstract, Abstract including Keywords must not exceed more then 150 words.

3. A separate list of references should be given at the end of the paper and not at each page. Footnotes may be given on the same page if any technical term needs some explanation.

4. Table, Model, Graph or Chart should be on separate pages and numbered serially with appropriate heading.

5. Maximum word limit of research paper up to 2500 words.

6. Special care must be taken to avoid spelling errors and grammatical mistakes in the paper, otherwise it will not be accepted for publication.

7. The author(s) should certify on a separate page that the manuscript is original and it is not copyrighted.

8. The copyright is Reserved for 'Shodhshree' for All Research papers and Book Reviews, published in this journal.

9. Publication of research paper would be decided by our editorial board or subject specialist.

Book Review : For Book Review to be included in this journal only reference books and research publications are considered. One copy of each such publication must be submitted to the Editor.

Note : Shodh Shree have copyright on papers published in the journal therefore, prior permission is necessary for reproduction of paper, anywhere by author or other person. However, papers published in the journal may be freely quoted in further study. All disputes are subject to jaipur jurisdiction.

Research Paper may be sent to our e-mail: shodhshree@gmail.com
For any assistance, Please Contact Dr. Ravindra Tailor - 09413224134

To,

प्रिन्टेड मैटर
If undelivered please return to :

शोध श्री (त्रैमासिक)
54-ए, जवाहर नगर कॉलोनी
टोंक रोड, जयपुर-302018

स्वात्त्वाधिकारी, मुद्रक, प्रकाशक, प्रधान सम्पादक – वीरेन्द्र शर्मा के लिए मुद्रित व 54–ए,
जवाहर नगर कॉलोनी, टोंक रोड, जयपुर–302018 मो. 9460124401 से प्रकाशित।